बालरोग चिकित्सा

जिसमें
बालकों के समस्त रोगों की अनुभूत चिकित्सा
जैसे ज्वर, खांसी, दस्त, तुतलाना, दांत
निकलना, मुखपाक, चेचक
(माता) मसूरिकाप्रभृति
रोगों का अनेकानेक
अनुभूतोपचार

लेखक
श्री०पंडित महावीरप्रसादजी मालवीय वैद्य "वीर"
भूतपूर्व सम्पादक मनोरमा तथा अनेकानेक
पुस्तकों के रचयिता

प्रकाशक
वैद्य बांकेलाल गुप्त सम्पादक धन्वन्तरि
जनरल मैनेजर श्रीधन्वन्तरि कार्य्यालय
विजयगढ़ जिला अलीगढ़

प्रथम वार १००० प्रति | सन् १९२६ | मूल्य ॥=)

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन है

धन्वन्तरि प्रेस विजयगढ़ में
मुद्रित

भूमिका

प्राचीन काल में भारतीय ललनाएं विदुषी एवम् वीरा होती थीं वेदज्ञान तक का उपदेश दिया करती थीं। पतिप्राणा सीता, पार्वती और कैकेयी आदि के चरित्रों की ओर दृष्टि-पात कीजिये। प्रहलाद को गर्भ ही में ज्ञानोपदेश मिला था। अष्टावक्र और राजा शान्तनु के सातों पुत्र अपनी माता ही के उपदेश से तत्व ज्ञानी हुए थे। कणाद, कपिल, गौतम, भरद्वाज और वशिष्ठादि सरीखे महापुरुषों को उत्पन्न करने वाली माताएँ इसी भारत भूमि ही पर उत्पन्न हुई थीं। यदि उन माताओं को आयुर्वेद का रहस्य भली भांति विदित न होता तो कदापि सम्भव नहीं था कि ऐसे विद्वान प्रतिभाशाली सन्तानों को उत्पन्न कर सकतीं।

वर्तमान में हमारे देश की अधिकांश स्त्रियों का धात्री शिक्षा से सर्वथा कोरी रहना ही उनके सन्तान के अधःपतन का मूल कारण हो रहा है। अनपढ़ी स्त्रियां न तो सन्तान का यथार्थ भरण पोषण कर सकती हैं और न अपनी ही स्वास्थ्य रक्षा का ज्ञान रखती हैं। इसीसे उनकी सन्तति मेधावी तथा आयुष्यमान नहीं होती, अतः अपने सन्तान की भलाई के निमित्त भारतीय स्त्रियों का धात्री शिक्षा में व्युत्पन्न होना नितान्त आवश्यक है।

हर्ष का विषय है कि कुछ महानुभावों का ध्यान स्त्री शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ है और इसके लिये उद्योग भी आरम्भ हो गया है। राजधानी दिल्ली में स्वर्गीया लेडी हार्डिञ्ज महोदया की कृपा से स्त्रियों को वैद्य विद्या सिखाने के लिये एक संस्था भी खुल गयी है। वैद्य सम्मेलन के उदारता सज्जनों को इस सम्बन्ध में विशेष रूप से भाग लेकर आन्दोलन करना चाहिये। जिससे स्त्री समुदाय अपनी खोई हुई सम्पत्ति (आर्य्य चिकित्सा) को पुनः प्राप्त कर अपने भावी सन्तान को दीर्घजीवी बनाने में समर्थ हो।

बाल रोगों के लिये इस पुस्तक में हमने अपने अनुभूत प्रयोग, सामयिक वैद्यक के पत्रों और आर्षग्रन्थोंसे संग्रहकरके हिन्दी पाठकों के सामने उपस्थित करने का उद्योग किया है यदि इससे जनता का कुछ भी उपकार होसकेगा तो हम अपने परिश्रम को सार्थक समझेंगे।

मिती श्रावण कृष्णा ६ शुक्रवार
सम्वत् १९८३ विक्रमाब्द

सज्जनों का कृपाकांक्षी—
महावीरप्रसाद मालवीय वैद्य
'वीर' ज्ञानपुर-बनारस स्टेट

विषयसूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
बाल रोग चिकित्सा……	१	उदरशूल	१५
दूषित दुग्धपान के लक्षण	१	अजीर्ण रोग	१५
विशेष उपद्रव	२	बालकों की घुट्टी	१६
स्तन रोग की चिकित्सा	२	दुग्धवमन	१८
बालकों का घृतपान	३	विशूचिका (हैजा) रोग	२०
उबटन और स्नान	४	विशूचिकांतकवटी	२१
औषधि प्रयोग	५	बालामृत शरबत	२१
औषधि की मात्रा	५	तृषा रोग	२२
उपवीर्य की औषधियां	६	हिचकी रोग	२२
बालकों के रोग	६	प्लीहा-यकृत	२३
बालरोगों का परिज्ञान	६	अधिक रोना	२४
बालोपयोगी नियम	७	शय्यापर मूतना	२४
अन्नप्राशन	६	हिकलाना वा तुतलापन	२५
पारिगर्भिक रोग	१०	तालुकण्टक रोग	२६
मृत्तिका भक्षण	११	घुघण्टीकी सरल परीक्षा	२७
कृमिरोग	१२	नवीन अनुभव	२८
आनाह(अफारा वा कोष्ठवद्ध) रोग	१२	महामरिचादि तैल	२८
		ममरखी की अन्यान्य चिकित्सा	२६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
नेत्र रोग	३१	लवङ्गादिवटी	५०
आंख का उठना	३२	लाक्षादितैल	५०
कुकूणकरोग	३३	ज्वरातीसार रोग	५१
रोहुवा (खुतुआ) रोग	३४	खांसी रोग	५१
फूलीरोग	३७	कण्टकार्यावलेह	५५
दन्तोद्भेदक रोग	३८	कासान्तकावलेह	५५
सदन्त बालक का जन्म	३८	लवङ्गादि अवलेह	५६
दांत निकलने का समय	३६	शृंगी अवलेह	५६
दन्तोद्गम की चिकित्सा	३६	कासकन्दन वटी	५६
मुखपाक	४१	दाडिमादि वटी	५६
नाभिपाक	४२	कुकुरखांसी	५७
गुदपाक	४३	कौआ लटकने की खांसी	५८
दुर्बलता नाशक योग	४४	पसली रोग	५६
अष्टमङ्गल घृत	४५	पलुवादिवटी	६१
कुमार कल्याण घृत	४५	दिग्वान कषाय	६१
ज्वर रोग	४६	अतीसार रोग	६२
बालज्वर में विशेषता	४६	शोधनी वटी	६४
ज्वर में जलपान	४७	आमातीसार	६४
ज्वर में लंघन निषेध	४७	रक्तातीसार रोग	६४
ज्वर की चिकित्सा	४७	ग्रहणी रोग	६५
बालसंजीवन चूर्ण	४८	ग्रहणी कपाट वटी	६६
ज्वरघ्नी वटी	४६	बालग्रहणी वटी	६६
बालामृत वटी	४६	मूर्छारोग	६७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मृगीरोग	६८	नेत्रपाक का उपाय	८४
मृगी की चिकित्सा	६८	वेगनाशक प्रयोग	८४
मूत्राघात और पथरीरोग	७१	ज्वर संहारक योग	८५
बालकों का शोथ	७२	महापंचक घृत	८५
अजगल्ली रोग	७२	पथ्यापथ्य	८६
पामा (खुजली) रोग	७३	मसूरिका रोग	८७
विसर्प रोग	७४	मसूरिका की चिकित्सा	८८
व्रण(फोड़ा-फुन्सी)रोग	७५	ग्रहोपसर्ग के लक्षण	८९
शीतला रोग	७५	ग्रहों की उत्पत्ति और उनके नाम	८९
शीतला के उपद्रव	७६	ग्रहबाधा का कारण	८९
शीतला का पूर्वरूप	७६	ज्ञाता उपचारक	९०
शीतला के घातक लक्षण	७७	ग्रहबाधा नाशकघृत	९१
शीतला की टीका	७७	चन्दनादि तैल	९२
चिकित्सा की उपेक्षा	७९	मूत्राष्टक तैल	९३
शीतला से रक्षा का यत्न	८०	स्नानार्थं कषाय	९३
शीतला की चिकित्सा	८२	बालग्रह निवारक धूप	९४
गले और मुख का घाव	८४		

बालरोग चिकित्सा

श्री०पं०महावीरप्रसादजी मालवीय (वीर)

धन्वन्तरि प्रेस विजयगढ़

श्रीधन्वन्तरये नमः

बालरोग-चिकित्सा।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभय वर्त्तनः।
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः॥

प्रथम केवल दूध पीने वाले, दूसरे दुग्धान्न के भोगी और तीसरे अन्न के खाने वाले बालक तीन प्रकार के होते हैं। दूषित दूध वा अन्न के सेवन से रोगों की उत्पत्ति होती है और अदूषित दूध तथा अन्न से वे आरोग्य रहते हैं।

दूषित दुग्ध पान के लक्षण।

वात से दूषित हुआ दूध पान करने से बालक वातरोग से पीड़ित होते हैं। प्रायः उन शिशुओं का शरीर दुर्बल, स्वर क्षीण, मलमूत्र में रुकावट और अधोवायु का अवरोध होजाता है। पित्त से दूषित दूध के पीनेसे पित्त के रोगों से पीड़ित होते हैं, शरीर गरम रहता है, पतला दस्त होता है, प्यास अधिक लगती और पसीना आता है। कफ से दूषित दूध को पीने वाले बालक कफ के रोगों से दुखी होते हैं। वमन आती है, मुख से लार टपका करती है, शरीर में सूजन और शिथिलता उत्पन्न होती है तथा आँखें श्वेत होकर ढँकी सी रहती हैं।

विशेष उपद्रव ।

स्तनों का दूध दूषित होने पर बालकों को पचता नहीं, उससे गुठली गुठला युक्त दुर्गन्धित पतला किम्वा गाढ़ा दस्त होने लगता है। मूत्र का रंग पीला, लाल, वा स्वेत और गाढ़ा होजाता है, इसके अतिरिक्त ज्वर, प्यास, वमन, अजीर्ण, कम्प, भ्रम और मुखपाक आदि तरह २ के रोग उत्पन्न होतेहैं। बालकों के लिये यह प्राणनाशक बड़ा ही भयङ्कर रोग है ।

स्तन्य रोगकी चिकित्सा ।

(१) आँवला, कालीमिर्च, जामुनकी छाल, देवदार, पाढ़ी, पीपरि, बहेड़ा, बेर की छाल, मुर्रा, सरसों, सोंठ और हर्रें एक एक तोला लेकर कपड़छान चूर्ण बनाले। मात्रा तीन माशे से छःमाशे पर्यन्त। दोनों समय मधु के साथ बालक की माता अथवा दूध पिलाने वाली धाय को एक मास सेवन कराते रहने से स्तन्य दोष अर्थात् दूषित हुआ दूध शुद्ध होजाता है।

(२) अनन्तमूल, इन्द्रयव, कुटकी, गुर्च, चिरायता, देवदार, नागरमोथा, पाढ़ी, मुर्रा और सोंठ दो दो तोले लेकर अधकुट करके बीस मात्रा बनाले। एक मात्रा पाव भर पानी में पकावे और चौथाई जल रहने पर छान कर मधु मिला सेवन कराने से स्तनों के दूध का विकार निस्सन्देह नष्ट होता है। स्तन्य रोग की यह परमोत्तम औषधि है ।

(३) अतीस, कुट, कुटकी, नागरमोथा और पाढ़ी का

उपर्युक्त रीति से क्वाथ तैयार कर मधु के साथ दोनों समय एक मास पर्यन्त सेवन कराने से दूषित दूध शुद्ध होताहै और बालकों को उत्पन्न हुआ दूषित दूध पीने का विकार शमन होजाता है।

औषधि सेवन कराने के पूर्व बालक की माता व धाय को वमन कराकर कोष्ठ की शुद्धि करना परमावश्यक है।

बालकों को घृतपान।

दूध पीने वाले बालकों को दूध और मधु के साथ मात्रानुसार थोड़ा घृतपान कराना अत्यन्त लाभदायक है। इससे कोष्ठबद्ध नहीं होता और अग्नि बलवान होतीहै तथा सहसा रोगोंका आक्रमण नहीं होने पाता।

(१) अनन्तमूल, अपामार्ग, कुट, जटामासी, दुधियां पीपरि, पीली सरसों, बालबच, ब्राह्मी, शतावर, सेंधानोन और हल्दी दो दो तोले। गाय का घी एक सेर। बारहों औषधियों को कूट पानी के साथ सिलपर पीस कर लुगदी बनाले फिर घी, लुगदी और एक सेर पानी कड़ाही में डाल धीमी आंच से पकावे और सिद्ध होजाने पर वस्त्र से छान ले। दूध पीने वाले वालक को तीन चार बून्द से एक माशे पर्यन्त दूध मधु के साथ एक बार वा दोनों समय पिलाने से बालक आरोग्य रहतेहैं और बल,बुद्धि तथा आयु की वृद्धि होती है। किसी प्रकार का उदर विकार नहीं उत्पन्न होने पाता।

(२) असगन्ध एक पाव। गोघृत १ सेर। गाय का दूध ८ सेर। उपर्युक्त रीति से घृत तैयार करके सेवन कराने से बालक आरोग्य, बलवान और पुष्ट होते हैं।

(३) दूध-अन्न खाने वाले बालकों को निम्न प्रकार से घृत तैयार करके सेवन कराना चाहिये। आंवला, चीता, पीपरि, बहेड़ा, बालवच, मुलहठी और हड़ तीन तीन तोले। गाय का घी एक सेर। पूर्वोक्त प्रकार घृत सिद्ध कर के सेवन कराने से बालक आरोग्य रहकर पुष्ट और बली होते हैं।

(४) केवल अन्न खाने वाले बालकों को अरणी की छाल, कालीमिर्च, खम्भारी की छाल, तगर, दुधिया, देवदार पाढ़ी, पिठवन, बड़ा गोखुरू, बनभाँटा, वायविड़ङ्ग, बेलकीछाल ब्राह्मी, भटकटैया, मुनक्का, मुलहठी, सरिवन और सोना पाठा की छाल एक एक तोला। गाय का घी १ सेर। गोदुग्ध ४ सेर। प्रथम कही हुई विधि के अनुसार घृत तैयार करके बालकों को सेवन कराने से लाभ होता है।

उबटन और स्नान।

कुट, जौ का आटा और श्वेत चन्दन को पानी से महीन पीस उसमें थोड़ा कडुआ तेल मिला गरम कर बालक के शरीर पर उबटन करे; अथवा भुनी सरसो और चिरौंजी का उबटन करके खस और गोरखमुंडी के काढ़े से स्नान करा कर साफ वस्त्र से पोंछ कर दुग्ध पान कराना चाहिये।

(२) काकड़ासिंगी और बकायनके क्वाथ से स्नान कराना लाभकारी है।

(३) पीपरामूल, पीपरि, वनभांटा और भटकटैयाके क्वाथ में घी पकाकर उस घृत का मर्दन करना हितकारी है।

(४) ऊँट, गदहा, गौ, घोड़ा, बकरी, भेड़ और भैंस का मूत्र और तेल समान भाग लेकर पकाले। इस तेलका मर्दन करके वकायन के काढ़े से स्नान कराने पर बालकों की ग्रह-बाधा और सौरीरोग (जमुआ) से रक्षा होती है।

(५) आँवला, तगर, पालक का बीज, बालवच और हरैं चार २ तोले। मदिरा १ पाव। तिलका तेल १ सेर। बकरे का मूत्र दो सेर। तेल सिद्ध करके बालकों के शरीर पर प्रति दिन मर्दन करने से ग्रहबाधा का भय नहीं रहता और बालक आरोग्य रह कर बलवान होता है।

औषधि प्रयोग।

दूध पीने वाले बालक के रुग्न होने पर उसकी माता अथवा धाय को औषधि सेवन कराना और पथ्य से रखना चाहिये। दूध-अन्न के खाने वाले बालक के रोगी होने पर बालक और माता दोनों को औषधि सेवन और पथ्य से रखना चाहिये। अन्न खाने वाले शिशु की माता को औषधि न खिला कर केवल बालक कोही औषधि सेवन करानी चाहिये।

औषधि की मात्रा।

एक मास पर्यन्त के बालक को एक रत्ती औषधियों की मात्रा देनी चाहिये, फिर प्रति मास एक २ रत्ती एक वर्ष पर्यन्त बढ़ाते जाना चाहिये और एक वर्ष के उपरान्त प्रति वर्ष में सोलह वर्ष तक एक १ माशे बढ़ाना चाहिये।

उग्रवीर्य की औषधियां ।

काष्ठौधियों के अतिरिक्त भस्म और कस्तूरी आदि उग्रवीर्य की रासायनिक औषधियां बालकों को स्वल्प मात्रा में देनी चाहिये। ज्वरादि रोगमें जो जो औषधियां बड़े मनुष्यों को दीजाती हैं वे सब बालकों को अल्प मात्रा में देने योग्य होती हैं।

बालकों के रोग ।

ज्वर, खांसी, अतिसार आदि जो२ रोग पुरुषों को होते हैं वे सब बालकों को भी होते हैं, किंतु बालकों को कुछ ऐसे रोग भी होते हैं जो पुरुषों को नहीं होते जैसे–पारिगर्भिक दन्तोद्भेद, तालुकण्टक और रोहुवा आदि।

बाल रोगों का परिज्ञान ।

जो बालक बोलता नहीं उसके रोग का ज्ञान बालक के रोने हीसे कियाजाता है। वह जिस अङ्ग को बार २ स्पर्श करता हो अथवा उस स्थान पर किसी अन्य के हाथ लगने से रोपड़ता हो तो उसीको पीड़ा का स्थान समझना चाहिये। यदि जीभ को ओठों से दबाता हो, ऊँची श्वास लेता हो और हाथकी मुट्ठी बांधता होतो पेटमें पीड़ा, नेत्र बन्द करने से मस्तिष्क में पीड़ा और मल मूत्र के अवरोध से गुदा में पीड़ा जाननी चाहिये। कम रोने से स्वल्प और अधिक रोने से विशेष पीड़ित अनुमान करना चाहिये। इसी प्रकार

मुख, नेत्र नाक, हाथ, पांव आदि अंगों को वारम्वार निरीक्षण करके वालकों के रोग का निश्चय करना चाहिये ।

बालोपयोगी नियम ।

(१) बालक को अत्यन्त हलके हाथसे उठाना और लिटाना चाहिये जिससे उस के कोमल शरीर पर थोड़ा भी आघात न पहुंचने पावे ।

(२) सोते हुए बालक को सहसा न जगाना चाहिये। क्योंकि इससे भयभीत होकर वह रोग ग्रस्त हो सकता है।

(३) प्यार करते समय बालक को नीचे ऊंचे न उछालना चाहिये और शिर नीचे करके पांव पकड़ कर कदापि न उठावे, इससे बालक डर जाता है तथा वायु का प्रकोप होता है ।

(४) छोटे बालक को जब तक उस में बैठने की शक्ति न आजाय तब तक उसको कदापि बैठाने का प्रयत्न न करना चाहिये, इससे कुबड़ापन होने का डर रहता है।

(५) छोटे २ खिलौने को पाकर अथवा जो वस्तु बालक के हाथ में आती है स्वभावतः उसको वह मुख में डालता है इस लिये उसके हाथ में कोई ऐसी छोटी वस्तु न देनी चाहिए जो गले के भीतर जासके, इससे श्वासरुकने उपस्थित होने का भय रहता है।

(६) बालक को मधुर वचनों से सदा प्यार करना

और प्रिय वस्तु खिलौने आदि से प्रसन्न रखना चाहिये।

(७) बालक को निर्जन स्थान, ऊंची नीची जगह में, कुआं, गड्ढा, तालाव, नदी के समीप सूने घर में, लता वृक्ष के नीचे न छोड़ना चाहिये। तीक्ष्णवायु, घाम, विजली की चमक, अग्नि, पानी, धुंआं, शीत और लूं आदि से बचाना चाहिये।

(८) पलङ्ग अथवा गोदी, जहां रहने से बालक को प्रसन्नता हो उसको उसी प्रकार रखना चाहिये; किंतु जहां तक सम्भव हो पलंग पर रखना श्रेष्ठ है, क्योंकि गोदी में अधिक रखने से बालक का उदर संकुचित होता है।

(९) हाथ पाँव हिलाते रहने से बालक प्रसन्न रहता है और उसकी पाचनशक्ति बढ़ती है। उसको पालने में लिटा कर हिलाते रहने से वह प्रसन्नता पूर्वक हाथ पैर चलाता हुआ राजी रहता है।

(१०) बालकों का श्रेष्ठ आहार माता का दूध है, यदि माता के स्तनों में दूध की न्यूनता हो तो दिन में कई बार थोड़ा २ गाय वा बकरी का दूध पिलाना श्रेष्ठ है।

(११) यदि रबड़दार शीशी द्वारा बालक को दूध पिलाया जाय तो दूध पिलाने के अनन्तर हर बार शीशी को गरम पानी से अच्छी तरह धोडालना चाहिए। शीशी

गन्दी रहने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

(१२) यदि दूध पीने वाला बालक ऐसे रोग में ग्रसित होजाय जिसमें उपवास कराना अनिवार्य हो तो भी उसको लंघन न करावे वरन् उसकी धाय को हलका भोजन देकर पथ्य से रखना चाहिये।

(१३) दूध पीने वाले बालक के रोगी होने पर उसकी माता के स्तनों पर औषधियों का लेप कराकर सूख जाने पर धो डाले, फिर बालक को दुग्धपान कराना चाहिये।

(१४) प्रायः गंवार स्त्रियां बालकों को चुप कराने के लिये भयानक जन्तुओं का नाम लेकर अथवा परछांही आदि दिखा कर डराती हैं, इससे बालक के डरपोक और रोगी होने का अन्देशा रहता है।

(१५) गृहकार्य के सुभीतार्थ कितनी ही स्त्रियां बालकों को सुलाने के लिये अफीम का सेवन कराती हैं। जिससे वह नशे में सोया करता है, किंतु उनकी इस मूर्खता का बालक के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क बिगड़ जाता है और अफरा आदि रोग घेर लेते हैं। जिससे उसका जीवन संकट मय हो जाता है।

अन्नप्राशन।

जब बालक की अवस्था छः मास की हो जाय तब उसको पतली खीर जो शीघ्र पच कर पुष्ट कारक हो चटानी चाहिये, इस प्रथम अन्नदान को अन्नप्राशन कहते हैं।

परिगर्भिक रोग।

मातुः कुमारो गर्भिण्यास्तन्यं प्रायः पिवन्नपि।
कासाग्निसादवमथु तन्द्रा कार्श्यारुचिभ्रमैः॥
युज्यते कोष्ठवृद्धया च तमाहुः परिगर्भिकम्।
रोगं परिभवाख्यश्च तत्र युञ्जीत दीपनम्॥

माता के गर्भिणी होने पर जब बालक स्तनपान करता है तब निश्चय ही उसको खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा दुर्बलता, अरुचि, भ्रम और पेट का निकल आना (कोष्ठ वृद्धि) होता है उसको परिगर्भिक (दुधकटा) रोग कहते हैं। इस रोग में माता का दूध पीना बालक का बन्द कराकर अग्नि को दीपन करने वाली औषधियों का सेवन कराना हितकारी है।

(१) अजवाइन, अमिलतास की गूदी, गुड़ पुराना, गुलाब का फूल, चौकिया सोहागा, छोटी हर्रें, पसरवन्दा, बालबच, मुनक्का, वायविडंग, श्वेत जीरा, सनाय की पत्ती, सौंफ की जड़ और हर्रा के फल का छिलका दोदो तोले। सबको अधकुट करके रखले। छः मास के बालक को डेढ़ माशे, एक वर्ष के को तीन माशे और तीन वर्ष की अवस्था वाले को छः माशे की मात्रा देनी चाहिये। एक मात्रा उबलते पानी में डाल कर पकावे, आधा जल रहने पर उतार कर छान ले, उसमें दो रत्ती सोंचरनोन का चूर्ण मिलाकर पिलादे। इसी प्रकार दोनों समय पिलाने से परिगर्भिक रोग तो नष्ट होता ही है उसके अतिरिक्त अजीर्ण

उदरपीड़ा, आनाह, प्लीहा आदि पेट के रोग निर्मूल होते हैं। ज्वर खांसी से रक्षा होती है, और बालक पुष्ठ बली होता है। गृहस्थमात्र को यह पाचन काढ़ा निरन्तर आरोग्यावस्था में बालकों को पिलाते रहने से उन्हें कोई रोग नहीं होता, सेवन कराने योग्य है।

मृतिका भक्षण।

कोई कोई बालक मिट्टी खाने लगते हैं, जिससे पेट निकल आता है, और उदर में भिन्न भिन्न रोग मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि उत्पन्न होते हैं।

(१) पक्का केला और मधु साथ ही सेवन कराने से मिट्टी खाने का विकार दूर होता है।

(२) केशर, निसोत, पीपरि और मुलहठी के क्वाथ में पोतनी मिट्टी सान कर घाम में सुखा डाले। इसी प्रकार चार बार गीली करके सुखाने पर वह मिट्टी बालक को खिलावे तो खाई हुई पेट की मिट्टी दस्त से बाहर निकल जाती है, और उसका विकार नष्ठ होता है।

(३) काली मिर्च, गदहपुन्ना की जड़, दारूहल्दी, नागरमोथा, पाढ़ी, पीपरि, वायविडंग, बिछुआ का फल, (इसका वृक्ष बैंगन के समान होता है और बिच्छू के आकार का उसमें काला फल लगता है) बेल की छाल, भारंगी, सोंठ और हल्दी डेढ़ डेढ़ तोला। गायका घी एक सेर। सब औषधियों को कूट कर पानी के साथ सिल पर पीस दो सेर जल में घोलकर घी के साथ धीमी आंच से पकावे

और सिद्ध हो जाने पर वस्त्र से छान ले। इस घी का सेवन कराने से बालकों के मिट्टी खाने का दोष नष्ट हो जाता है। यह योग अष्टाङ्गहृदय का है।

कृमिरोग।

जब बालकों के पेट में कृमि (केंचुआ और सूत के समान पतले छोटे छोटे कीड़े) उत्पन्न होते हैं, तब वह दिनों दिन शरीरसे खिन्न होता जाता है, मन्दाग्नि और पेटमें मीठी पीड़ा हुआ करती है। प्रायः निद्रावस्था में बालक दांत चबाया करता है और कृमियों की अधिकता से कभी कभी मृगी के समान मूर्छा भी होती है।

(१) प्याज का रस निकाल कर चार रत्ती से तीन माशे पर्यन्त, दोनों समय एक सप्ताह पिलाने से कृमि नष्ठ होते हैं।

(२) बायविडंग का चूर्ण मधु के साथ चटाने से कृमियों का नाश होता है।

(३) ककरासिंगी और सागवन का पत्ता दूध में पका कर उस दूध को हाथ पांव के तलुवों पर एक सप्ताह निरन्तर दिन में दो तीन बार मलने से सोने में दांत चबाना बन्द होता है।

आनाह रोग।

आमं शकृद्वानिचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन।
प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाह मुदाहरन्ति॥

आम (अपक्वरस) अथवा मल क्रम से संचित होकर दुष्ट वायु के बन्धन से सूख कर अपने मार्ग से नहीं निकलते, उसको आनाह, अफारा, बद्धकोष्ठ आदि कहते हैं। बार बार वायु का चक्कर नाभि से उठकर ऊपर को जाता है उसको उदावर्त कहते हैं। आनाह और उदावर्त में पेट का फूलना, मलमूत्र का अवरोध, शूल, मस्तिष्क में पीड़ा, तृषा, शरीर में भारीपन, वमन और मूर्छा आदि उपद्रव होते हैं।

(१) हर्रे ३ माशे। मुनक्का ६ माशे। दोनों को पानी में पीस थोड़े जल में घोल छान कर थोड़ा थोड़ा तीन चार बार पिलाने से कोष्ठबद्ध दूर होता है।

(२) छोटी इलायचीका दाना, फुलाई हुई तलाव हींग, भारङ्गी, सेंधा नोंन और सोंठ समान भाग लेकर चूर्ण बनाले। मात्रा एक रत्ती से डेढ़ माशे पर्यन्त गरम पानी के साथ दो२ घण्टे पर तीन बार पिलाने से अफरा उदावर्त, पेट का फूलना, पीड़ा और कबजियत बालकों की दूर होती है।

(३) छः माशे गुलकन्द दो तोले गरम जलमें मल छान कर पूर्वोक्त रीति से पिलाने पर बालकों का आनाह दूर होता है। इससे दस्त साफ आता है।

(४) एक छोहारा कुचल कर थोड़े जल में संध्या को भिगोदे, सवेरे हाथ से मल कर छान ले। थोड़ा थोड़ा इस जल को तीन बार पिलाने से बालकों का अफरा नष्ट होता है।

(५) दो रत्तीसे डेढ़ दो माशे पर्य्यन्त रेवतचीनी का शरबत चटाने अथवा पानीमें घोलकर पिलानेसे कोष्ठबद्ध दूर होता है।

(६) गदहे की लीद गरमा कर पेट पर बाँधने से अफारा मिटता है।

(७) मदार के पत्ते पर घी चुपड़ कर उसको गरम करके पेट पर बाँधने से बालकों का पेट फूलना मिटता है।

(८)मुसब्बर और साबुन बराबर भाग पानी से पीस गुनगुना कर दूध पीने वाले छोटे बालकों के पेट तथा पेडू पर लेप करने से दस्त आकर पेट की सूजन मिटती है।

(९) चूहे की लेंड़ी और रेंड़ी बराबर भाग पानी से पीस गुनगुना कर नाभि और गुदा पर लेप करने से कोष्ठ बद्ध नष्ट होकर खुलासा दस्त आता है तथा आनाह दूर होता है।

(१०) चोखी हींग पानी में घोल गरम करके नाभि के चारों ओर लेप करने से पेट का फूलना मिट जाताहै।

(११)सरसों की खली का गुनगुना लेप पेट पर चढ़ाने से लाभ होता है।

(१२) सेंधा नोन और हींग को मधु के साथ घोट कर छोटी छोटी पतली बत्ती बनाले, इसको घीमें भिगो कर बालकों की गुदा में रखने से उदावर्त, आनाह रोग दूर होता है।

(१३) कालीमिर्च, कुट, घर का धुआँ, पीपरि, मैनफल, सरसों, सेंधानोन और सोंठ एक एक तोला लेकर महीन चूर्ण कर डाले। उसको मधु में सान कर अग्नि पर पकावे। जब कड़ा होजाय तब पतली बत्ती बनाकर सुखाले फिर गुदा और बत्ती पर घी चुपड़ कर गुदा में रखने से

तुरन्त दस्त आकर कोष्ठबद्ध, पेटका फूलना आदि दूर होता है।

उदर शूल।

दोषैः पृथक् समस्तामद्वन्द्वैः शूलोष्टधाभवेत्।
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः॥

समस्त दोषों के अलग अलग, द्वन्द्ज और त्रिदोषज, शूल, आठ प्रकार का होता है। प्रायः सम्पूर्ण शूलों का स्वामी वात ही है। पेट में पीड़ा का होना, अफारा वमन और बेचैनी आदि उपद्रव शूल रोग में होता है।

(१) मिट्टी को पानी से ढीली कर गरमावे, इसको कपड़े में रख पोटरी बना सेंक करने से उदर शूल नष्ट होता है।

(२) काले तिल को पानी से पीस गरमा कर पोटरी बना सेंक करने से शूलरोग आराम होता है।

(३) छोटी इलायची, भारङ्गी, सेंधा नोंन, सोंठऔर भुनी हुई तलाव हींग समान भाग लेकर चूर्ण बनाले। मात्रा एक रत्ती से चार रत्ती पर्यन्त गुनगुने जल में घोल कर पिलाने से उदर शूल, आनाह--पेट का फूलना आराम होता है और पाचन शक्ति बढ़ती है।

(४) सरसों बराबर हींग फुला कर गरम जल में घोलकर पिलानेसे बालकोंके पेटकी पीड़ा आराम होतीहै।

अजीर्ण रोग।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणञ्चाप्य जीर्णतः॥

अजीर्ण से मूर्छा, प्रलाप, वमन, लार का गिरना, ग्लानि और भ्रम ये उपद्रव होते हैं तथा मृत्यु भी होती है। बालकों को दूध का न पचना और बार बार वमन होना अजीर्ण का लक्षण है। दूषित दूध पीने के विकार से भी छर्दि होती है।

(१) चौकिया सोहागा, बड़ी हड़ और सेंधानोन एक एक तोला लेकर कपड़छान चूर्ण बनाकर एक रत्ती से डेढ़ माशे पर्यन्त पानी में घोलकर दिन में तीन चार बार पिलाने से बालकों का अजीर्ण नष्ट होता है। इससे पेट की पीड़ा दूर होती है और सदा सेवन कराने से बालक हृष्ट पुष्ट बलवान् बना रहता है।

बालकों की घुटी।

(१) ककरासिंगी, केशर, जायफल, नागकेशर, मुलहठी और वन्शलोचन एक २ तोला लेकर महीन चूर्ण बना दोनों समय माता के दूध में घोलकर पिलाने से अजीर्ण उदरपीड़ा और मन्दाग्नि नष्ट होती है और बालकों को सहसा कोई रोग नहीं होता।

(२) बालकों को जन्म के समय से एक रत्ती शुद्ध आँवलासारगन्धक का चूर्ण सप्ताह में एक बार माता के दूध में घोल कर पिला दिया करे। जब दो मास की अवस्था होजावे तब उसमें आधी रत्ती फुलाया हुआ चौकिया सोहागा की बुकनी मिला कर देना चाहिये। इस घुटी के प्रभाव से कोष्ठबद्ध नहीं होने पाता। महीने महीने

क्रमशः मात्रा बढ़ाता जावे, एक वर्ष के बालक को एक माशे गन्धक और चार रत्ती सोहागा इसी प्रकार बारह वर्ष के बालक को एक तोला गन्धक और छः माशे सोहागा की मात्रा देनी चाहिये। इससे पाचन शक्ति बढ़ती है अजीर्ण का नाश होता है और उदरकृमि निर्मूल हो जाते हैं। जिन बालकों के माता पिता को उपदंश हुआ हो उन्हें अपने बालकों को इस घुटी का निरन्तर सेवन कराना परमोपयोगी है; क्योंकि इसके प्रभाव से रक्तविकार नष्ट होता है।

(३) यदि अल्प दिनों का बालक आवश्यकतानुसार स्तन से दूध न पीता हो तो आँवला और हरँ समान भाग लेकर चूर्ण बना डाले।

एक वा दो रत्ती चूर्ण घी तथा मधु में फेंट कर धीरे धीरे उँगली से बालक की जीभ पर मल दिया करे तो वह दूध पीने लगता है।

(४) अजमोदा, अजवाइन, अमलतास की गूदी, इन्द्रयव, चौकियासोहागा, छोटी हरँ, नौसादर, पाँगा नोन, बड़ी हरँ सनाय की पत्ती, समुद्र नोन, सांभर नोन, सेंधानोन, सोंचरनोन, सोंठ और सोंफ एक एक तोला। मिश्री एक पाव। समस्त औषधियों को कुचल कर एक सेर पानी में पकावे, जब पाव भर जल रह जाय तब नीचे उतार कर छान ले। इसी काढ़े में मिश्री की चाशनी करके शीशी

में रक्खे । मात्रा चार रत्ती से तीन माशे पर्यन्त दोनों समय चटाने अथवा थोड़े जल में घोल कर पिलाने से बालकों को पेट की बीमारी नहीं होती, वे सदा प्रसन्न रहते हैं।

(५) उन्नाव एक दाना। कचूर, चौकिया सोहागा, पसरवन्दा और सोंठ दो दो रत्ती। अमिलतास की गूदी, पांगानोन, पित्तपापड़ा, पुदीना, मुर्रा, श्वेतजीरा, समुद्र-नोन, सांभरनोन, सेंधानोन, सोंचरनोन, और सोंफ चार चार रत्ती लेकर कुचल क्वाथ बनाकर बालकों को पिलाने से वे सदा आरोग्य और प्रसन्न रहते हैं, सहसा रोगों का आक्रमण नहीं होता।

(६) अमिलतास की गूदी, तुरंजवीन, बनफशा, मुनक्का, मुलहटी और सौंफ एक एक माशे। मिश्री ६ माशे। इसका क्वाथ तैयार कर दोनों समय पान कराने से बालक सदा आरोग्य बना रहता है।

(७) अमलतास की गूदी, काली मिर्च, गोखुरू, छोटी हर्रें, पसरवन्दा, बड़ी हर्रें, मुर्रा, मुसब्बर, सोवा का बीज और सोंफ चार चार रत्ती कुचल कर क्वाथ तैयार करके सप्ताह में एक बार पिलाने से बालकों को कोई रोग नहीं होता और न दुर्बलता आती है।

दुग्ध वमन।

(१) आम की गुठली, धान का लावा, और सेंधा नोन समान भाग लेकर चूर्ण बना दूध-मधु के साथ पिलाने से बालकों का दूध डालना बन्द होता है।

(२) अतीस, ककरासिंगी, नाग रमोथा और पीपरि का चूर्ण मधु के साथ चटाने से दूध की वमन मिटती है।

(३) छोटी इलायची की दाना, तज, तेजपात और नागकेशर का चूर्ण दूध और मधु के साथ पिलाने से दूध की वमन बन्द होती है।

(४) चीता, पिपरामूल, पीपरि, भटकैया की जड़ और सोंठ का चूर्ण दूध और मधु के साथ पिलाना लाभकारी है।

(५) कालीमिर्च और पीपरि सोंठ का चूर्ण मधुके साथ चटाने से दूध की वमन रुकती है।

(६) सोना गेरू का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों का दूध फेंकना, खाँसी और हिचकी रोग शान्त होता है।

(७) ककरासिंगी, कालीमिर्च धान का लावा, पीपरि रसवन्त और हल्दी का चूर्ण मधु के साथ चटानेसे दूध फेंकना ज्वर और खाँसी आदि रोग आराम होते हैं।

(८) चूने का पानी, गाय का दूध और सौंफ का अर्क बराबर भाग एक में मिला कर थोड़ा थोड़ा कई बार पिलाने से दूध डालना बन्द होता है।

(९) पीपल वृक्ष की सूखी छाल जला कर उसकी राख छगुने पानी में घोल कर रखदे और स्थिर होने पर स्वच्छ जल निथार कर बालकों को पान कराने से दुर्जर वमन दूर होती है।

(१०) पेट पर कड़ुवे तेल का मर्दन करके थोड़ी देर

फलालैन के टुकड़े से पेट को ढाँक रखने से दूध की वमन मिटती है।

(११) अडूसे की पत्ती, गुर्च, नीब और परोरा की पत्ती पानी में पका कर उस काढ़े से बालक को स्नान कराने से दूध का फेंकना बन्द होता है; किन्तु स्नान कराते समय काढ़ा किञ्चित गुनगुना रहना चाहिये।

(१२) धनियां और सोंठ के काढ़ा में जीरा का चूर्ण मिलाकर दोनों समय पान कराने से दूध डालना, अजीर्ण और आमशूल नष्ट होता है।

(१३) कालीमिर्च, चीता, पीपरि और सोंठ के काढ़े में जीरा तथा सेंधानोन का चूर्ण मिलाकर पिलाने से उपर्युक्त प्रकार लाभ होता है।

(१४) अतीस, अनार की कली, आम की पुरानी गुठली, छोटी हर्रे, धव का फूल, पुदीना की सुखाई हुई पत्ती, बबूर की पत्ती, बेलगिरी, बेलपत्र, श्वेत जीरा, सोंचर नोन और सौंफ समान भाग लेकर चूर्ण बना पानी के साथ घोट कर काली मटर के बराबर गोली बना ले। गरम पानी के साथ दोनों समय पान कराने से अजीर्ण के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं।

विशूचिका (हैज़ा) रोग।

यदि अजीर्ण से बालक को पतला दस्त और वमन होने लगे, प्यास बढ़ जाय और मूत्र रुक रुक कर आवे तब निम्न औषधि देनी चाहिये।

विशूचिकान्तक वटी।

अफीम, कपूर, कालीमिर्च और फुलाई हुई तलाव हींग छः छः मासे लेकर गुलाब जल से घोट कर सरसों बराबर गोली बनाले। प्याज के रस में घोल कर एक गोली पिला देने से बालकों का हैज़ा आराम होता है। आवश्यक होने पर दो घड़ी के बाद एक मात्रा और देने से रोग समूल नष्ट होजाता है।

बालामृत शरबत।

बिना बुझा हुआ पत्थर का चूना एक पाव लेकर मिट्टी के पात्र में ढाई सेर गरम पानी डालकर भिगोदे और गल जाने पर लकड़ी से हिलाकर अच्छी तरह पानी में मिला कर छोड़ दे। चौवीस घण्टे के अनन्तर थिराया हुआ पानी निथार कर उसमें आधसेर मिश्री डाल कर पकावे, अधपक होजाने पर उसमें एक माशा कपड़छन रतनजोत का चूर्ण मिलादे और तार आने पर नीचे उतार पतले वस्त्र से छानकर बोतल में रखले। इसकी मात्राबीस बूंद से छः मासे पर्यन्त दिन में दोया तीन बार चटावे अथवा दूध में घोल कर पिलाना चाहिये। इससे अजीर्ण, पेट का फूलना, दूध फेंकना, हरा पीला दस्त होना, उदर पीड़ा और सुखवा रोग आराम होता है। बालक का शरीर पुष्ठ और बलवान् होता है। इसका सेवन निरन्तर आरोग्य बालक को कराने से उसको कोई रोग सहसा नहीं होता, यह शरबत बालकों के लिये अमृत के समान हितकारी है।

कितने ही व्यवसायी इसे बनाकर दो तीन औंस की शीशी बारह चौदह आने को बेचते हैं, उन्हें इससे अच्छी आय होती है।

तृषा रोग।

ताल्वोष्ठकण्ठास्य विशोषदाहःसन्तापमोहभ्रम विमलापाः।
सर्वाणि रूपाणि भवन्ति तस्यामुत्पत्तिकाले तु विशेषतोहि॥

तालु, कण्ठ, ओठ और मुख को सूखना, दाह, सन्ताप, मोह, भ्रम, बकवाद आदि तृषा की उत्पत्ति के समय ये सब लक्षण उत्पन्न होते हैं।

(१) प्रियंगु मोथा और रसवत का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों की तृषा मिटती है।

(२) अनारदाना, नागकेशर और श्वेतजीरा का चूर्ण मधु-मिश्री के साथ सेवन कराने से बालकों की पिपासा दूर होती है।

(३) आम की पत्ती, जामुन की पत्ती, पीपरि और मुलहठी का चूर्ण पानी के साथ घोल कर मधु के संग चटाने से प्यास दूर होती है।

(४) पलास की छाल, सेंधानोन और हींग का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों की तृषा शान्त होतीहै

हिचकी रोग।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादि वात्तिपनाः
सदोषवानाद्य हिनस्त्यसून्य तस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयतेबुधैः॥

रह-रह कर शब्द करती हुई वायु, कलेजा, तिल्ली और आंतों को खींच कर मानो मुख में लाती हुई उदान वायु प्राणवायु के साथ मिलकर ऊँची गति से चलती है और कफ के अनुसरण से जीवन का तत्काल अन्त कर देती है, इसलिये विद्वान लोग इसको हिक्का वा हिचकी कहते हैं।

(१) पीपरि और मुलहठी का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों की हिचकी आराम होती है।

(२) ककरासिंगी, नागरमोथा, मुलहठी, सोनागेरू, सोंठ, और हींग का चूर्ण मधु के साथ चटाने से हिचकी बन्द होती है।

(३) सोनागेरू का चूर्ण मधु के साथ चटाना लाभकारी है।

(४) कुटकी का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों की हिचकी और वमन शीघ्र शान्त होजाती है।

प्लीहा-यकृत।

पेट में बांई ओर प्लीहा वा तिल्ली-बरवट और दाहिनी ओर यकृत होता है। ये दोनों ही भयानक रोग हैं।

(१) छोटी पीपरि को अर्क गुलाब के साथ चिकने पत्थर पर घिसकर चटाने वा दूध-मधु के संग दोनों समय पिलाने से बालकों की प्लीहा और यकृत दोनोंतीन चार सप्ताह में आराम होते हैं।

(२) दूध में पीपरि पकाकर उसी दूध को कई बार दिन में पिलाने से प्लीहा यकृत आराम होता है।

(३) अदरक का रस और बकरी का दूध एक में मिला कर पिलाना लाभकारी है।

(४) सरफों का और मुंडी का रस निकाल उस में मधु मिला कर दोनों समय पान कराने से बालकोंकी प्लीहा और यकृत आराम होता है।

अधिक रोना।

यदि स्वस्थ बालक स्वभावतः अधिक रुदन करता हो तो उसको निम्न औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

(१) आँवला, पीपरि बहेड़ा और हर्र का चूर्ण मधु के साथ दोनों समय चटाने से बालकों का अधिक रोना बन्द होता है।

(२) इन्द्रयव, उड़द, छछुन्दर का बीट, बेलपत्र, सिरस की पत्ती और हल्दी समान भाग कूट कर थोड़ा निर्धूम अग्नि पर डाल धूनी देने से रोना बन्द होता है।

शय्या पर मूतना।

जो बालक सयाना हो पर सो जाने पर चारपाई पर पेशाब करता हो उसको नीचे लिखी औषधि सेवन कराने से पलङ्ग का मूतना बन्द होता है।

(१) धनियां को पानी के साथ सिल पर महीन पीस थोड़े जल में घोल मिश्री मिला छान कर प्रातःकाल पान करावे। इसी प्रकार एक वा डेढ़ मास सेवन कराने से निद्रावस्था में बालकों का शय्या पर मूतना बन्द होता है।

(२) शीतल चीनी का चूर्ण ठंडे पानी से कुछ दिन निरन्तर सेवन कराने से बालकों का चारपाई पर पेशाब करना बन्द होता है।

हकलाना वा तुतलापन

यदि बालक हकलाकर बोलता हो अर्थात् तुतलाने के कारण कोई शब्द सहसा स्पष्ट न बोल सकता हो उसका निम्न उपचार करना चाहिये।

(१) अजवाइन, कुट, पीपरि, बालबच, मुलहठी, श्वेतजीरा, सेंधानोन, सोंठ और हरड दो दो तोले। गाय का घी एक सेर। दूध चार सेर। समस्त औषधियों को कूट कर दूध के साथ सिल पर पीस कर कल्क बना ले, फिर वह कल्क घी और दूध कड़ाही में धीमी आंच से पचाकर घृत मात्र रह जाने पर उतार कर छान ले। बालक को कुछ काल पर्यन्त इस घी का सेवन कराने से उसकी वाणी शुद्ध होकर हकलाहट मिट जाती है।

(२) कालीमिर्च, पाढ़ी, पीपरि, बालबच, सहिजन का बीज, सेंधानोन, सोंठ और हड़ ढाई ढाई तोले। गाय का घी एक सेर। बकरी का दूध चार सेर। पूर्वोक्त प्रकार घी सिद्ध करने पर यह 'सारस्वत' नाम का घृत तैयार होता है। इसका सेवन कराने से बालकों का तुतलाना मिट जाता है। बुद्धि स्मरणशक्ति और जठराग्नि की वृद्धि होती है।

(३) अपामार्ग की जड़, कचूर, कौड़ेनी, गुर्च, वायविडङ्ग, वालवच, सोंठ और हरड़ ढाई २ तोले। घी एक सेर। वकरी का दूध चार सेर इससे घृत सिद्ध करके वालक को निरन्तर कुछ समय तक सेवन कराने से वाणी स्पष्ट हो जाती है। यह सारस्वत घृत के समान ही गुण कारी है।

(४) अनन्तमूल, कुट, पीपरि, वालवच, ब्राह्मी, श्वेत सरसों और सेंधानोंन तीन तीन तोले। घी एक सेर। पानी दो सेर। इसको सिद्ध कर सेवन कराने से हकलाना दूर होता है। वालक की स्मरणशक्ति, मेधा और आयु वढ़ती है।

तालुकण्टक रोग।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम्।
तेन तालु प्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते॥
तालुपाते स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं सकृद्द्रवम्।
तृपास्य कण्ड्वाक्षिरुजा ग्रीवा दुर्धरता वमिः॥

विरुद्ध आहारादि और दूषित दूध के पीने से कफ कुपित होकर वालकों के तालु (खोपड़ी के नीचे का भाग दिमाग) में तालुकण्टक रोग उत्पन्न करता है। इससे तालु प्रदेश में नीचा गड्ढा उत्पन्न होता है, स्तनपान से द्वेष अर्थात् कठिनता से थोड़ा दूध पीता है। शरीर से रक्त मांस सूख कर केवल अस्थिपिञ्जर रहजाता है, हरा-पीला तथा खुजरीदार दस्त आता है। प्यास वढ़जाती है, मुख में खुजली वा निनवाँ होकर लाल होजाता है और वमन होती है। इसको ममरखी सुघण्टी, सुखवा और मिठवा आदि कहते हैं।

सुघराटी की सरल परीक्षा।

ममरखी वा सुघराटी रोग को परीक्षा के लिये बालकों को प्रायः उनकी मातायें मक्खी मार २ कर पिलाती हैं, क्योंकि इस रोग में मक्खी पिलाने से वमन नहीं होती और अन्यथा वमन होकर वे तुरन्त बाहर निकल जाती हैं। परन्तु इस घृणित परीक्षा से हानि को सम्भावना रहती है उसकी परीक्षा का सरल उपाय यह है, कि रोगी बालक के तालु के गड्ढे में डेढ़ दो मारो गुड़ का एक टुकड़ा रख कर उसको गेंहूं के आटे की टिकरी से दवा कर वस्त्र से बांध दे और तीन चार घण्टे के बाद खोलकर देखने से साफ पता चल जाता है कि इसको तालुकण्टक रोग है वा नहीं। यदि रोग है तो गुड़ उड़ जायगा और नहीं है तो ज्यों का त्यों बना रहेगा। दूसरी परीक्षा इस प्रकार से करनी चाहिए, कि मुरगो के अण्डे का पानी एक कढ़ाई नुमा छिछली पियाली में डालउस पर बालक को बैठा दे, यदि सुखवा रोग होगा तो गुदामार्ग से वह पानी खिचकर शिशु के पेट में चला जायगा, अन्यथा नहीं। यह सुघराटी को उत्तम औषधि है। जब तक शरीर में रोग का अंश शेष रहेगा तब तक प्रतिदिन अण्डे का पानी सूखता जायगा और रोग मुक्त होने पर पानी का सूखना बन्द हो जायगा। प्रत्येक दिन प्रायः काल एक वा दो अण्डे का पानी सुखाना यथेष्ठ है।

नवीन अनुभव।

लगभग चालीस वर्ष की बात होगी कि एक विधवा स्त्री अपने दो ढाई वर्ष के बालक को हमारे पास चिकित्सार्थ लेकर आई। वह बालक सुघंटी रोग से इतना जर्जर होगया था कि शरीर में अस्थिपिञ्जर के सिवा रक्त मांस का नाम नहीं, देखने से वह दो चार दिन का मेहमान जान पड़ता था। उस समय हमें इस रोग की कोई अनुभूत सिद्ध औषधि हस्तगत नहीं हुई थी। हमने अनुमान से महा मरिचादि तैल मलने को दिया। पन्द्रह दिन तैल का मर्दन करके जब इस बालक के सहित वह स्त्री आई तब हम उस शिशु को पहचान नहीं सके। उस तैल से उसे आश्चर्यजनक लाभ हुआ कि बालक हृष्ट पुष्ट और सर्वथा आरोग्य होगया था। फिर तो हमने इस तैल की अनेकों बालकों पर परीक्षा की और अपूर्व गुणकारी पाया। उसका योग नीचे दिया जाता है।

महामरिचादि तैल।

इनारुन की जड़, इन्द्रयव, कञ्जा की छाल, कनेर की छाल, करियारी, कालीमिर्च, कुट, कुरैया की छाल खैर की छाल, गुर्च, भैंस के गोबर का रस, चकवँड़ का बीज, चीता की जड़, छतिवन की छाल, जटामासी, दन्ती, दारुहल्दी, देवदार, नागरमोथा, निसोत, नीबकी छाल, बकुची, बच, वायबिडंग, मदार का दूध, मालकंगुनी, मैनशिल, लालचन्दन, सिरस की छाल, सेंधानोन, सेहुड का दूध, हरतार और

हल्दी दो दो तोले। सिंगिया ४ तोले। कडुतेल तीन सेर। गोमूत्र बारह सेर। समस्त औषधियों को कूट कर गोमूत्र से सिल पर पीस कल्क बना ले, फिर तेल, कल्क, गोबर का रस, गोमूत्र, मदार और सेहुंड़ का दूध कड़ाही में धीमी आंच से पचावे और सिद्ध हो जाने पर वस्त्र से छान ले। भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में यह तेल कुष्ठ के प्रकरण में दद्रु, पामा, विचर्चिका और विस्फोटक को नष्ट करने वाला कहा गया है, किन्तु दाद पर हमें इसका सन्तोष जनक फल नहीं दिखाई पड़ा, पर सुघंटी के लिये तो यह सिद्ध रामबाण महौषधि है।

ममरखी की अन्यान्य चिकित्सा।

(१) हींग तलाव एक सरसों बराबर। अदरक का रस, तुलसीपत्र का रस, भैंस के गोबर का रस और मधु चार चार बूंद प्रतिदिन प्रातः सायंकाल एक मास पर्यन्त चटाने से निस्सन्देह ममरखी रोग का नाश होजाता है। यह योग सुघंटी का अन्त करने के लिये रामबाण के समान अमोघ अस्त्र है। ज्वर के प्रकरण में लिखी हुई "बालामृत वटी" इसके साथ देकर हमने ममरखी से ग्रस्त मरणापन्न सैकड़ों बालकों को आरोग्य किया है।

(२) पीपरि, सोंचरनोन और हरड का चूर्ण दही के पानी से दोनों समय इक्कीस दिन तक सेवन कराने से सुघंटी आराम होती है।

(३) कुट, श्वेत बच और हरड़ का चूर्ण मधु में फेंट स्तनों पर लेप कराकर केवल दूध पीनेवाले बालकों को माता का दूध पिलाने से रोग नष्ट होता है। अन्न-भोजी बालकों को इन्हीं औषधियों का अधकुट चूर्ण छः माशे का क्वाथ बना मधु मिला कर निरन्तर एक मास पर्यन्त दोनों समय पान कराने से तालुकंटक रोग निर्मूल होता है।

(४) नौसादर ६ माशे। कुत्ते की हड्डी और छोटी इलायची का दाना डेढ़-डेढ़ तोला। तीनों का महीन चूर्ण कर मधु के साथ घोट उड़द बराबर गोली बनाकर सुखाले। एक एक गोली दूध—मधु अथवा केवल मधु के साथ दोनों समय चटाने से तीन सप्ताह में सुखंडी रोग छूट जाता है।

(५) जहरमोहरा खताई पांच तोले लेकर घीकुवार के रस से घोट कर छोटी छोटी टिकिया बना सुखा डाले, उसको सम्पुट में बन्द करके तीन सेर उपलों की आंच में भस्म करले। मात्रा एकसे-दो रत्ती पर्यन्त घी के साथ दोनों समय खिलावे और छःमाशे लाक्षादि तैल में एक रत्ती भस्म मिलाकर शरीर पर मर्दन करने से एक महीने में सुखवा रोग निर्मूल होजाता है।

(६) छटांक आध पाव गदही का दूध बालक को प्रतिदिन पान कराने से सुखंडी आराम होती है।

(७) जवाखार का चूर्ण मधु में फेंट कर तालू के गढ्डे पर मलने से लाभ होता है।

(८) पीपरि, सेंधानोन और सोंठ का चूर्ण भैंस के गोबर के रस में फेंट कर प्रतिदिन शिर के तालु पर मलने से तालुकंटक नष्ट होता है।

(९) अदरक, भंगरैया और हल्दी समान भाग पीस कर गोला बना बड़ के पत्तों में लपेट ऊपर से तीन अंगुल मोटी लेप भैंस के गोबर का चढ़ा कर भूभल में गाढ़ दे। जब गोबर का पानी सूख जाय तब गोला बाहर निकाल लुगदी को वस्त्र में रख रस निचोड़ ले। इस रस का बालक के तालु और मुख पर लेप करके दो दो बून्द आंखों में भी डाल दिया करे तो ममरखी रोग शीघ्र ही आराम हो जाता है।

इस रोग में नारायण तैल बालक के सर्वाङ्ग में मर्दन करना लाभकारी है। सरसों का उबटना न करावे, केवल तैल का मलना श्रेष्ठ है। सुखंडी रोग विलम्ब से छूटता है इसलिये दो चार दिन औषधि खिलाने से कोई विशेष लाभ नहीं प्रकट होता। इक्कीस दिन के उपरांत आरोग्य होने तक औषधियों का सेवन कराना आवश्यक है। अधिक बढ़े हुए रोग में तैलाभ्यंग, प्रलेप और खाने की औषधियों का साथ ही प्रयोग करना चाहिये। रोग की आरम्भिक अवस्था में किसी भी खाने वाली औषधियों के सेवन कराने से पूर्ण लाभ होता है।

नेत्र रोग

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्द्धमाश्रितैः।
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः॥

होती है, पानी वहता है और बालक प्रकाशकी ओर नहीं देख सकता। आँखें वन्द किये हुये नेत्र, नाक, ललाट को अपने हाथों से वार वार मलता रहता है।

(१) गाय का ताज़ा गोवर आग से गरमा कर उसको स्वच्छ वस्त्र में रख पोटरी वनाकर वार वार पलकों पर फेरने से कुकूणक दूर होता है।

(२) कुटकी, गेरू, दारुहल्दी, नागरमोथा, नीवकी पत्ती, वायविडंग, मजीठ, मुलहठी, रसवत, लोध, सेंधानोंन, और हल्दी तीन तीन माशे अधकुट करके वस्त्र में पोटरी वना वार वार गरम पानी में डुवोकर पलकों पर फेरने से अवश्य ही कुकूणक रोग नाश को प्राप्त होता है।

(३) कंजा का वीज कालीमिर्च, पीपर, मैनशिल, रसवत, शङ्खनाभि और सोंठ तीन तीन माशे लेकर कपड़छान चूर्ण करके रखले। थोड़ा सा चूर्ण पानी में घोट कर आंखों में आँजने से नेत्र के समस्तरोग ललाई, पीड़ा, कुकूणक, खुजली, पानी वहना आदि शीघ्र नष्ट होजाते हैं।

रोहुवा (खुथुआ) रोग।

यह रोग प्रायः आँख की ऊपर वाली पलकों के भीतर उत्पन्न होता है। इसमें लाल रङ्ग की मांस के समान ऊपर को उठी हुई पलकों के भीतर छोटी पिड़िका होती है और पलकों में सूजन आजाती है जिससे वालक आंखें वन्द किये रहता है। वहुत प्रयत्न करने पर अंधेरे में कुछ ताक देता है, किंतु सूर्य अथवा दीपक के प्रकाश

में आँखें नहीं खोल सकता। आरम्भिक अवस्था में कुछ देर आँखें खोलता है परन्तु रोग बढ़जाने पर चौबीसों घड़ी आंखें बन्द रखता है। देर तक आंखों के बन्द रहने से फूली, माड़ा पड़कर दृष्टि का नाश होजाता है। यह रोग लोक में खुधुआ के नाम से प्रसिद्ध है।

(१) अफीम और फुलाई हुई फिटकिरी चार रत्ती लेकर कागजी नीबू के रस से लोह पात्र में लोह के दण्ड से एक घड़ी पर्यन्त घोटे। जब काले रङ्ग का अञ्जन तैयार होजाय तब लोहे की प्याली में उसे रखले। पलकों को उलट कर उठते हुए रोहों पर इसका अञ्जन कर दे तो दोही दिनमें रोहे सुखा कर निस्सन्देह आराम होजाते हैं, परन्तु यह लगता बहुत है इससे बालक घण्टों छटपटाता और रोता रहता है। अत्यन्त लघु बालकों को यह अञ्जन न लगाना चाहिए।

(२) वनकुरथी (चाकसू) के बीज दो तोले। नीब की हरी पत्ती एक छटांक। मिट्टी के पात्र में आधसेर पानी डाल उसमें दोनों को धीमी आंच से आधी घड़ी तक पकाकर नीचे उतार पानी बहा बीजों को निकाल छिलका दूर कर के सुखा डाले। फिर बीजों के बराबर सफेदा मिलाकर नीब के पत्तों के रसमें एक पहर खरल करके सुखा कर कपड़ छान चूर्ण बनाले, दोनों समय पलकों को उलट कर खुथुआ की पिड़िका पर इसको धीरे धीरे उंगलीसे लगादे अथवा बुरका दिया करे तो इस से शीघ्र ही रोहे सूख कर अच्छे होजाते हैं। यह खुथुआ

मिला कर नेत्रों में प्रति दिन अञ्जन करते रहने से फूली नष्ट होती है।

(३) अफीम, नौसादर और फुलाई हुई फिटकिरी समान भाग अपामार्ग के स्वरस में घोट कर अञ्जन करने से फूली का नाश होता है।

(४) तांबा और सोनामक्खी का चूर्ण समान भाग कौड़ेनी के रस में घोट कर अञ्जन करने से फूली निर्मल होजाती है।

दन्तोद्भेदक रोग।

दन्तोद्भेदश्चरोगाणां सर्वेषामपि कारणम्।
विशेषाज्वरविड्भेद कासच्छर्दि शिरोरुजाम्॥

बालकों का दाँत निकलना समस्त रोगों का आदि कारण है। इसमें ज्वर, खांसी, वमन, नेत्र, शिर और सर्वाङ्ग में पीड़ा होती है। लाल, पीला और हरे रङ्ग का पतला दस्त आता है तथा विसर्प आदि अनेक प्रकार के उपद्रव प्रकट होते हैं। दांत निकलने के समय यद्यपि बालकों को तरह तरह के रोग घेर लेते हैं और उन्हें बड़ा कष्ट होता है, तोभी अधिक औषधियों के प्रयोग से शिशुओं को कष्ट न पहुंचना चाहिये, क्योंकि दांत निकल आने पर सब रोग आप होआप शांत होजाते हैं।

सदन्त बालक का जन्म।

सदन्तो जायते यस्तु दन्ताःभाग्यस्यचोत्तराः।
कुर्वीततास्मिन्नुत्पाते शान्तिकं च द्विजायते॥

जो बालक जमे हुए दांतों के सहित जन्म लेता है और जिसके ऊपर के दांत पहिले निकलते हैं, ये दोनों अमंगल जनक हैं अतः इस उत्पात सूचक दन्तोद्भेद का शान्ति कर्म करना आवश्यक है।

दांत निकलने का समय।

बालकों के दांत निकलने का समय प्रायःछटे मास से अठारहवें मास पर्यन्तहै,किंतु किसीकिसी की दाढें चौवीसवें महोने तक निकलती हैं। छः मास के पहिले बालकों का दांत निकलना अशुभ कहा जाता है।

दन्तोद्गम की चिकित्सा।

(१) पीपर और धव के फूल का चूर्ण मधु में फेंट कर मसूड़ों पर उंगली से धीरे धीरे दिन में तीन चार बार मर्दन करने में दाँत सुगमता से निकल आते हैं।

(२) काला अगर, तीतर, और बटेर का सूखामांस समान भाग लेकर चूर्ण बना मधु के साथ मसूड़ों पर मलना दन्तोद्गम के लिये लाभकारी है।

(३) आंवला और धवपुष्प का चूर्ण मधु के साथ मसूड़ों पर मलना हितकारी है इससे दांत शीघ्रनिकल आतेहैं।

(४) केलापुष्प की केशर का रस पांच माशे निकाल कर उसमें मधु और मिश्री मिला कर दिन में तीन बार पिलावे और यही स्वरस मसूड़ों पर मलने से बालकों के दांत बड़ी सुगमता से बाहर आजाते हैं।

(५) कपास के बीज की गिरी और पुराना चावल

नौ नौ दाने। अफीम और बबूर की कोमल पत्ती एक एक रत्ती। सब को पानी के साथ महीन घोटकर पांच गोली बनाले। प्रत्येक रविवार और मंगलवार को देहली पर बालक को बिठा कर माता के दूध अथवा पानी में घोल कर पिलाने से दांत निकलने के समय ज्वर, खांसी, दस्त, वमन और शरीर की पीड़ा आदि समस्त उपद्रव शांत होते हैं और दांत आसानी से मसूड़ों के बाहर निकल आते हैं।

(६) कपास के फल का रस, धव का फूल, नागरमोथा, वनउर्दी, वनमूंग, वरियारा की जड़, बेलगिरी मजीठ, रक्तपुनर्नवा की जड़ और लोध दो दो तोले। घी एक सेर। गाय का दूध और दही का पानी चार चार सेर। सब औषधियों को कूट पीस कर कल्क बनाले, फिर घी, कल्क, दूध और दही का पानी कड़ाही में धीमी आंच से पकावे, घी सिद्ध होजाने पर छानले। डेढ़ दो माशे घी मधु में फेंट कर दोनों समय चटाने से दांत सहज में निकल आते हैं और ज्वर, खांसी, अतिसार, वमन, तृषा आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

(७) सिरस के बीजों की माला बालक के गले में पहनाने से दांत निकलने में सुगमता होती है।

(८) श्वेत अथवा पीले फूल वाली मेउंड़ी (सिन्दुवार वा संभालू) की जड़ जो पूर्व दिशा की ओर धरती में गई हो उसको खोद लावे और वस्त्र में लपेट कर बालक के गले में बांधने से दांत निकलने के समय कष्ट नहीं होता।

(९) सीप की माला गले में पहिनाना लाभकारी है।

(१०) जस्ता और ताँबेका तार एक में लपेटकर मखमल या फ़लालेन से ताबीज के समान बना गले में बाँधने से दाँत निकलनेके समय कष्ट नहीं होता और दाँत जल्दी निकल आतेहैं।

मुखपाक।

यों तो मुख के अनेक रोग हैं, परन्तु बालकों को प्रायः दूषित दूध के दोष से निनवाँ होजाता है, छाले पड़जाते हैं और लार टपका करती है। मुख का रँग लाल या श्वेत होजाता है तथा इस कष्ट से बालक का दूध पीना छूट जाता है। यह लोक में निनवाँ के नाम से प्रसिद्ध है।

(१) आम की गुठली, रसवत, लोहचूर्ण और सोनागेरू महीन घोट कर मधु के साथ उँगली द्वारा बालक के मुख में चारों ओर धीरे २ लगाने से निनवाँ छाला आदि सूख कर शीघ्र आराम होता है।

(२) गेरू, फुलाया हुआ चौकियासुहागा, फुलाई हुई फिटकिरी और सेलखरी का चूर्ण मुख में लगाने से छाला निनवाँ आदि बालकों का मुखपाक शीघ्र आराम होता है।

(३) पीपलवृक्ष की छाल और पत्ता पानी के साथ सिलपर महीन पीस कर उसमें मधु मिला मुख में लगाने से भयङ्कर मुखपाक छाला और निनवाँ आदि शीघ्र सूखकर आराम होजाते हैं।

पृष्ठ ४० नं० ८ के प्रयोग में श्वेत अथवा पीले फूल वाली मेंमड़ी लिखा है वहां नीले फूलवाली मेंमड़ी समझना चाहिये।

(४) कपूर१रत्ती। कवाव चीनी १० दाना । पपरी खैर ६ माशे। तीनों का चूर्ण पानी में घोट कर मुख में लगाने से मुखपाक नष्ट होता है।

(५) आँवला, चमेली का पत्ता, तुलसी पत्र, पाढ़ी वहेड़ा, मुनक्का, और हरड का क्वाढ़ा वना कर उसमें मधु डाल बड़े बालकों को कुल्ली कराने से मुखपाक आराम होता है।

(६) अनन्तमूल, कालातिल, मुलहठी और लोध के क्वाथ से बालकों का मुख धोने पर मुखपाक शीघ्र आराम होता है। लार का गिरना मिटता है।

(७) बड़ी इलायची का दाना और रूमीमस्तगी दो २ तोले। मिश्री एक पाव। मिश्री की चाशनी करके उसमें दोनों औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला शर्वत बनाले। इसको वार २ मुख में लगाने से मुखपाक आराम होकर लार का गिरना वन्द होजाता है।

नाभिपाक।

वायु के विकार से अथवा नालछेदन की असावधानी से बालक की नाभि (बोड़री) फूल कर बेर वा आंवले के समान बाहर निकल आती है किम्वा पक कर बहने लगती है और उस में पीड़ा उत्पन्न होती है।

(१) मिट्टी को पानी से सान कर गोला बना सुखाले, फिर उसको अग्नि में तपा कर गोदुग्ध में वुझा दे और उसी गरम गोले से सुहाता सेक नाभि पर करने से उसकी सूजन दूर होजाती है।

(२) लालचन्दन का चूर्ण बुरकने से नाभिपाक आराम होता है।

(३) बकरी की लेंड़ी जलाकर उसकी राख नाभि के घाव पर छिड़कना लाभ कारी है।

(४) धनियां की हरी पत्ती पीस कर लेप करने से नाभिपाक में उत्तम लाभ होता है।

(५) प्रियँगु, मुलहठी, लोध और हल्दी दो दो तोले लेकर पानी में सिल पर महीन पीस उसको डेढ़ पाव काले तिल के तैल में पकावे और पानी जलजाने पर नीचे उतार छानले। इस तैल को दिन में चार पांच वार लगाने से नाभिपाक आराम होता है।

यदि घाव में मवाद अधिक आता हो तो त्रिफला के काढ़े से धोकर तैल का प्रयोग करना चाहिये।

गुदपाक

मलोपले पात्स्वेदाद्वा गुदे रक्त कफोद्भवः।
ताम्रो व्रणोन्तः कण्डूमान् जायते भूर्युपद्रवः॥

मल के लगे रहने अर्थात् बालकों की गुदा अच्छी तरह न धोने से, पसीने अथवा रक्तकफ के विकार से बच्चों की गुदा के भीतर तांबे के रङ्ग का घाव होजाता है और उसमें खुजली आदि बहुत से उपद्रव प्रकट होते हैं। इसको अहिपूतन, तमनामिक, गुदकुन्द और गुदपाक कहते हैं

(१) पकाये हुए ठण्डे जल में रसवत घोल मधु मिलाकर बालकों को पिलाने से गुदपाक शीघ्र सूख जाता

है किंतु लगाने की औषधियों का साथ ही प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है।

(२) मुलहठी, रसवत और शङ्खनाभि का चूर्ण बुरकने से गुदपाक शीघ्रही सूखजाता है।

(३) विजयसार का चूर्ण बुरकने से लाभ होता है।

(४) मुलहठी, शंखनाभि और सुरमा पानी के साथ पीस कर लेप करने से बालक की गुदा में चुन्ना लगना खुजली और व्रण सब शीघ्र ही सूख कर आराम होते हैं।

(५) आंवला, पाकड़ की छाल, बहेड़ा, बेर की छाल और हड़ के क्वाथ से बार बार गुदा को धोने से और कसीस, छोटी इलायची का दाना, भुनी हुई तूतिया, मैनशिल और रसवत का चूर्ण कांजी से पीस कर लेप करने से निस्सन्देह अहिपूतन रोग शीघ्र शांत होजाता है।

इस रोग में बालक की माता वा धाय का दूध पित्त कफ नाशक औषधियों द्वारा शुद्ध करना आवश्यक है तथा बालक के व्रण की चिकित्सा भी पित्त कफ नाशक योगों द्वारा करनी चाहिये।

दुर्बलता नाशक योग।

(१) गेंहू, जौ, और विदारीकन्द के चूर्ण को घी और मधु के साथ चटाकर ऊपर से मिश्री मिला गौदुग्ध पान कराने से बालकों की दुर्बलता दूर होती है।

(२) एक चावल के बराबर स्वर्णभस्म को कुट

और बालवच के चूर्ण के साथ घी–मधु में फेंट कर एक वर्ष पर्यन्त निरन्तर दोनों समय चटाने से बालकों के शरीर का वर्ण उत्तम होता है। और बल तथा बुद्धि बढ़ती है।

(३) इसी प्रकार कौड़ेनी और गूलर के रस में घी मधु मिला कर सुवर्ण भस्म सेवन कराना लाभकारी है।

अष्टमंगल घृत

अनन्तमूल, कुट, नागरमोथा, पीपरि, वायविडंग, बाल वच, ब्राह्मी श्वेत सरसों और सेंधानोन दो दो तोले गाय का घी एक सेर। पानी दो सेर। सब औषधियों को कूट कर पानी के साथ पीस लुगदी बनाले, फिर घी, कल्क और पानी कड़ाही में मन्द आंच से पचावे। घी मात्र रह जाने पर उतार कर छान ले। इस घी का बालकों को सेवन कराने से शरीर में पुष्टता आती है तथा मेधा की वृद्धि होती है। सौरी रोग होने का डर नहीं रहता।

कुमार कल्याण घृत।

अनार की छाल, कचूर, गजपीपरि, छोटी इलायची, जवासा, तुलसीपत्र, नागरमोथा, पुष्करमूल, वरियारा की जड़, बेल की छाल, मिश्री, मुनक्का, श्वेतजीरा, सरिवन, सोंठ और हरड दो दो तोले। गायका घी और भटकैया का काढ़ा दो दो सेर। गो दुग्ध आठ सेर। पूर्वोक्त रीति से घृत सिद्ध कर दोनों समय कुछ काल तक बालकों को सेवन कराने से शरीर पुष्ट और बलवान होता है, तथा सहसा किसी रोग का आक्रमण नहीं होने पाता है।

ज्वर रोग

मिथ्याहार विहारस्य दोषाह्यामाशयाश्रयाः ।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥
स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥

मिथ्याहार और विहार से आमाशय में रहने वाले धात, पित्त कफ दुष्ट होकर रसको बिगाड़ कर उदर की अग्नि को बाहर निकाल शरीर को उत्तप्त कर देते हैं। पसीना नहीं आता, शरीर में सन्ताप और अंगों में पीड़ा होती है। यह सब लक्षण एक साथ ही जिस रोग में प्रकट होते हैं उसको ज्वर कहते हैं। तीनों दोषों से उत्पन्न आठ प्रकार के ज्वर और पांच प्रकार के विषम ज्वर तथा जीर्ण ज्वर पुरुषों को जिस प्रकार होते हैं, उसी तरह बालकों को भी होते हैं। अतः दोषों के अनुसार औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

बालज्वर में विशेषता ।

दूध पीने वाले बालक को, एक दो अथवा तीन दिन के अन्तर से थोड़ा घी पिलाना हितकारी होता है। दूध अन्न किम्वा केवल अन्न खाने वाले बालकों को भी प्रयोजनानुसार घृतपान कराना लाभकारी है। ज्वर को तृषा बुझाने के लिये शिशुओं को बार बार स्तनपान कराना चाहिये। वस्ति वमन और विरेचन बालकों को प्राण-सङ्कट उपस्थित होने पर कराने योग्य होता है, किन्तु साधारण अवस्था में वमन विरेचनादि कदापि न करावे।

ज्वर में जलपान।

बालकों को ज्वर में चतुर्थांविशेष जल पिलाना चाहिये।

ज्वर में लंघन निषेध

बालकों को ज्वर में लंघन न कराना चाहिये। दूध पीने वाले बालक को माता का दूध पिलाना आवश्यक है। यदि माता रोगिणी होतो गाय वा बकरी का दूध पिलाना चाहिये और अन्न खाने वाले बालक को साबूदाना अथवा मूंग की दाल और पुराने चावल की गलाई हुई पतली खिचड़ी का पतला पथ्य देना चाहिये।

ज्वर की चिकित्सा।

(१) नागरमोथा, नीम की छाल, परोरा की पत्ती मुलहठी और हरड एक एक तोला। सब अधकुट करके दस मात्रा बनाले। एक मात्रा छटांक पानी में पकावे और चौथाई जल रह जाने पर नीचे उतार छान कर मधु मिला दोनों समय इसी प्रकार पान कराने से बालकों का ज्वर नष्ट होता है।

(२) आंवला, नागरमोथा, नीम की छाल, परोरा की पत्ती और हरड के क्वाथ में मधु मिलाकर पूर्वोक्त प्रकार सेवन कराने से बालकों का ज्वर आराम होता है।

(३) दरियाई नारियल को चिकने पत्थर पर अर्क गुलाब के साथ घिसकर दो रत्ती पर्यन्त दिन में दो तीन बार मधु के साथ चटाने से बालकों का ज्वर कफ और वायुविकार नष्ट होता है।

(४) धानका लावा, मुलहटी रसवत और वंशलोचन एक एक तोला। मिश्री एक पाव। चारों औषधियों का महीन चूर्ण कर डाले और मिश्रीकी चाशनी करके उसमें चूर्ण मिला कर अवलेह तैयार करले। एक माशे से छः माशे पर्यन्त दोनों समय चटाने अथवा दूध में घोलकर पिलाने से बालकों के सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।

(५) अजवाइन एक रत्ती। सहदेवी की जड़ चार रत्ती। दोनों को पानी में महीन घोट थोड़े जल में घोल गरमाकर दिन में तीन वा चार बार पिलाने से बालकों का ज्वर और खाँसी आराम होती है।

(६) कंडे की राख, चिरायता, भटकैया की जड़, मगरैल, मजीठ, मुर्रा, सरसों और हल्दी समान भाग बकरी के दूध से पीस कर उबटन करने से बालकों का ज्वर आराम होता है।

बालसंजीवन चूर्ण।

अतीस ३ माशे। सूखा पोदीना ६ माशे। श्वेत निसोत और हरड के फल का छिलका एक एक तोला लेकर कपड़ छन चूर्ण बना ले।। मात्रा एक रत्ती से डेढ़ माशे पर्यन्त दिन रात में चार बार तुलसी पत्र के रस और माता के दूध में घोल कर पिलाने से बालकों का ज्वर खांसी, वमन, श्वास, अतिसार और संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं।

ज्वरघ्नी वटी ।

शुद्ध सोनामक्खी २ तोले । शुद्ध आँवला सार गन्धक और शुद्ध पारा चार चार तोले । कालीमिर्च ५ तोले । पहले सोनामक्खी, गन्धक और पारा एक घड़ी खरल में घोट कर कज्जली बनाले और उसमें मिर्च का कपड़छन चूर्ण मिलाकर फिर गदहपुन्ना की जड़ का रस, मजीठ का स्वरस, बँगलापान, भंगरैया, हुलहुल, मदार, मकोय, श्वेत कृष्णकान्ती और मेउड़ी की पत्ती का रस चार चार तोले क्रमशः डाल खरल करे । जब घोटते-घोटते रस सूख जावे तब सरसों बराबर गोली बना कर छाया में सुखा ले । दोनों समय दूध-मधु के साथ एक एक गोली सेवन कराने से बालकों का ज्वर, सन्निपात और पांचों प्रकार की खांसी नष्ट होती है । यह योग धन्वन्तरि संहिता का है ।

बालामृत वटी ।

कपूर, केशर, छोटी इलायची का दाना, और जावित्री तीन तीन माशे । इन्द्रयव, कुरैया की छाल, खस, जहरमोहरा खताई, जायफल, पीपरि, मुलहठी और रूमी मस्तगी छः छः माशे । अतीस, अनार की कली, ककरासिंगी धनियां, नागरमोथा, बबूर का गोंद, बेलगिरी, वंशलोचन, सुगन्धवाला और सोंठ एक एक तोला । सबका चूर्ण करके एक घड़ी अर्क गुलाब के साथ खरल में घोट कर उड़द बराबर गोली बना छाया में सुखाले । पूर्वोक्त प्रकार सेवन

कराने से बालकों का ज्वर, खांसी, श्वास, वमन और ग्रहणी आराम होती है। अनुपान के योग से यह वटी तालुकण्टक (घुघण्टी) रोग को नष्ट करती है

लवंगादि वटी।

लवङ्ग १ माशा। अतीस, छोटी इलायची का दाना और वंशलोचन, तीन तीन माशे। अपामार्ग की हरी पत्ती २ तोले। सबको पानी के साथ पीस खरल में अच्छी तरह घोट कर उड़द बराबर गोली बना छाया में सुखाले दिन में तीन चार बार एक एक गोली दूध-मधु के साथ सेवन कराने से बालकों का ज्वर, खांसी पसलीरोग, श्वास कृमि और मृगी नष्ट होती है।

लाक्षादि तैल।

असगन्ध, कुट कुटकी देवदार, मुर्रा, मुलहठी, रक्त-चन्दन, रासना, रेणुका, सौंफ और हल्दी दो दो तोले। पीपल वृक्ष की लाही और काले तिल का तैल एक एक सेर। दही का पानी चार सेर। समस्त औषधियों को कूट कर दही के पानी से पीस कल्क बनाले। लाही को चौगुने पानी में पकावे, जब सेर भर पानी रह जाय तब उतार कर छानले फिर तैल, कल्क, काढ़ा और दही का जल कढ़ाई में मन्द आंच से पकावे और तैल मात्र रह जाने पर उतार कर छान ले। इस तैल का निरन्तर मर्दन करने से बालकों का पुराना ज्वर, खांसी, श्वास, क्षय, उन्माद, मृगी

और वात से उत्पन्न रोग नष्ट होते हैं। इससे यक्ष, राक्षस प्रेत वाधा दूर होती है, शरीर में बल बढ़ता है तथा वर्ण उत्तरोत्तर उत्तम होता है।

ज्वरातिसार रोग।

जब ज्वर में बालकों को पतला दस्त दुर्गन्धयुक्त होने लगता है उसको ज्वरातिसार कहते हैं।

(१) अतीस, इन्द्रयव, धनियां, धव का फूल, बेलगिरी, लोध और सुगन्धवाला बराबर भाग लेकर अधकुट करके पांच पांच माशे की मात्रा बनाले। एक मात्रा छटांक जल में पकाकर चौथाई रहने पर छानले। इस काढ़े में मधु मिलाकर दोनों समय पान कराने से बालकों का ज्वरातिसार और संग्रहणी दूर होती है।

(२) अतीस, ककरासिंगी, नागरमोथा, पीपरि और मुलहठी का चूर्ण मधु के साथ तीन चार बार चटाने से बालकों का ज्वरातिसार आराम होता है।

(३) आंवला, इन्द्रयव, धनियां नागरमोथा, लोध और सुगन्धबाला का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों का ज्वरातिसार दूर होता है।

खांसी रोग

पञ्चकासाः स्मृता वात पित्त श्लेष्मक्षतक्षयः।
चयायोर्येचिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥

खांसी पांच प्रकार की होती है—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज और क्षतज। यदि इनकी उपेक्षा की जाय तो उत्तरोत्तर बलवान् होकर सब क्षयी का रूप धारण कर लेती हैं।

(१) कभी २ जो कफ से बालकों को साधारण खांसी उत्पन्न होती है, उसमें अनभिज्ञ स्त्रियां शीत का विकार समझकर अफीम आदि गरम चीजें खिला देती हैं जिससे कफ सूख कर श्वास को अवरुद्ध कर देता है। बड़ी कठिनता से बालक श्वास लेता है और गले से घड़घड़ाहट का शब्द निकलता तथा व्याकुलता से पेंठता रहता है। यदि इस अवसर पर तुरन्त उचित उपाय न हुआ तो शीघ्र ही प्राणान्त हो जाता है। इस प्रकार के कितने ही रोगी बालकों को हमने निम्न लिखित औषधि से आराम किया है। बादाम की बीजी ४ संख्या। बबूर का गोंद और मुलहठी छः छः माशे। गेहूं की भूसी (चोकर) और मिश्री तीन तीन तोले। गाय का दूध आध पाव। पानी ड़ेढ़ पाव॥ पहले चोकर को पानी में दस मिनट भिगो कर हाथ से मल छान ले, फिर बादाम की बीजी महीन पीस कर उसमें घोले और मुलहठी तथा गोंद कुचल कर डाल दे। उसको आग पर पकावे, जब एक पाव पानी रह जाय तब दूध और मिश्री डालदे। एक उबाल आजाने पर नीचे उतार छान ले। एक एक चम्मच दो दो मिनट पर पांच सात बार गुनगुना पान कराने से दस

पन्द्रह मिनट में इसका जादू के समान प्रभाव पड़ता है। है।। तुरन्त कफ ढीला होकर सारा कष्ट दूर होता है और बालक स्वस्थ की भाँति आसानो से श्वास लेने लगता है यह पेया पूर्ण वय के मनुष्यों को एक एक छटाँक प्रति बार पिलाने से वैसा ही लाभ करता है।

(२) धनियां और मिश्री तीन तीन माशे चावल के धोवन में पीस मधु मिलाकर पिलाने से कफ ढीला होकर खांसी और श्वास रोग आराम होता है।

(३) अडूसा, अतीस, ककरासिंगी, पीपरि और पुष्करमूल तीन तीन माशे लेकर अधुकुट करके पाँच तोले जल में एक घड़ी भिगोकर छानले, उसमें मधु मिलाकर थोड़ा थोड़ा तीन चार बार में पिलावे तो बालकों की खाँसी और कफ का सूखना नष्ट होता है, किन्तु तर खाँसी में इसका क्वाथ बनाकर सेवन कराना लाभकारी होता है।

(४) तुलसीपत्र का रस तीन माशे गुनगुना करके उसमें चार पाँच बून्द मधु मिलाकर बालकों को छः छः वा तीन तीन घण्टे पर चार बार पिलाने से खांसी में लाभ होता है और श्वास रोग तो एक ही दिन में शांत हो जाता है।

(५) फुलाई हुई फिटकिरी पानी के साथ घोट कर माता के स्तनों पर पतला लेप कराकर बालक को दुग्ध-पान कराने से दूध पीने वाले शिशुओं की कठिन खाँसी शीघ्र आराम हो जाती है।

(६) कालीमिर्च, पुरानागुड़, सेंधानोन और सोंठ का काढ़ा छान कर दोनों समय पिलाने से बालकों की खांसी छूटती है।

(७) दो रत्ती भटकैया के फूल को केशर मधु में फेंट कर चटाने वा माता के दूध में पिलाने से बालकों की खाँसी आराम होती है।

(८) अतीस, ककरासिंगी, नागरमोथा, और पीपरि का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों की खांसी, ज्वर श्वास, वमन और अतिसार दूर होता है।

(९) अडूसे की जड़, पीपरि, मुनक्का, और हरड का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों की खांसी और श्वास का नाश होता है।

(१०) अतीस, ककरासिंगी, जवासा, नागरमोथा और पीपरि का चूर्ण मधु के सा थ सेवन कराने से बालकों की पांचो प्रकार की खांसी आराम होती है।

(११) कालीमिर्च, पीपरि और सोंठ का चूर्ण गुड़ के गरम रसमें मिलाकर पान कराने से बालकों की खांसी छूट जाती है। यह रोग धन्वन्तरि संहिता का है।

(१२) फुलाई हुई फिटकिरी २तोले। फुलाया हुआ चौकिया सोहागा ४तोले। दोनों का चूर्ण दूध-मधु के साथ सेवन कराने से खांसी अच्छी होती है।

(१३) जायफल ४ माशे। अगर, गदह पुन्ना की जड़, छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, पीपरि, पुष्कर-

मूल, लवंग और शतावर एक एक तोला । लाल चन्दन २तो० इसका चूर्ण दूध-मधु के साथ दो तीन बार सेवन कराने से बालकों की खांसी तथा शीत कफ से उत्पन्न हुये रोग समूल नष्ट होजाते हैं। यह चूर्ण सन्निपात के आरम्भ काल में उत्तम लाभ प्रकट करता है ।

कंटकार्यावलेह ।

भटकैया की जड़ २॥तो०मुलहठी५तो० । मिश्री एकपाव दोनों औषधियों को कुचल कर आधसेर जल में पकावे और चौथाई रहजाने पर छान कर उसमें मिश्री की चाशनी तैयार करले। दो तीन मासे अवलेह दिन रात में तीन वा चार बार चटाने से निस्सन्देह बालकों की खांसी नष्ट होती है।

कासान्तकलेह ।

अफीम १ माशा। छोटी इलायची का दाना, बबूर का गोंद और मुलहठी का सत चार चार माशे । मधु सात तोले । चूर्ण कर मधु में मिलाकर अवलेह तैयार कर के दिन में तीन चार बार बालकों को चटावे और बीचमें मिश्री मिला विहीदाने का लुआब अथवा शरबत शहतूत चटाना हितकारी है । इससे बालकों का सूखा हुआ कफ ढीला होकर छाती की जकड़न और सूखी खांसी आराम होती है । यदि पसली में धड़कन होतो कपूर ४ रत्ती । तार पीन और रेंडी की तेल पाँच पांच माशे घोट कर गरम करके पसलियों पर धीरे धीरे मर्दन करके रूईके फाये से सेक देना चाहिये । इससे पसली की धड़कन मिटजाती है।

लवंगादि अवलेह ।

लवंग १ माशे । सोंचर नोंन २माशे । अफीम, ककरासिंगी और दालचीनी चार चार माशे । शरवत खसन्तो० पूर्वोक्त प्रकार अवलेह वनाकर चटाने से वालकों की तर खांसी जिसमें वलगम अधिक आता हो शीघ्र आराम होती है

शृङ्गी अवलेह ।

ककरासिंगी और मूली के बीज दो दो तोले । गाय का घी ८ तोले । मधु ८ तोले । दोनों का चूर्ण घी-मधु में फेंट कर अवलेह वनाले । इसको चटाने से वालकों की दुस्तर खांसी भी शीघ्र आराम होती है ।

कासकन्दन वटी ।

अफीम १ माशे, जावित्री और मुलहठी का सत तीन तीन माशे । अजवाइन, खुरासानी अजवाइन, पोस्ते का दाना, वबूर का गोंद और वबूर की फली, छः छःमाशे सव का चूर्ण कर पानी के साथ घोट मूँग वरावर गोली बना छाया में सुखा लो । अदरक के रस और दूध मधु के साथ एक एक गोली दिन में तीन वार पिलाने से वालकों की वहुत वढ़ी हुई खांसी शीघ्र आराम होती है ।

दाडिमादि वटी ।

अनार की कली, जायफल, और अफीम छः छः माशे कचूर, चाकसू, नीवकी कोंपल, वकायन की कोंपल, वबूर

को कोंपल रसवत और हल्दी एक एक तोला । सब का चूर्ण कर अदरक के रस में घोट मूंग बराबर गोली बनाले । माता के दूध और मधु के साथ सेवन कराने से बालकों की खाँसी, दस्त और शीत के विकार से उत्पन्न हुए रोग शीघ्र ही शमन होजाते हैं।

कुकर खांसी।

यह खाँसी कभी कभी बालकों में फैलती है और प्रायः डेढ़ मास की अवधि की होती है। इसमें मध्यावस्था पर्यन्त किसी भी औषधि से सन्तोष जनक लाभ नहीं प्रकट होता। जब जिस घर में या गाँव में एक बालक को होती है तब अधिकाँश छोटे छोटे समस्त बालकों को होजाती है। इसमें बालक खांसते खाँसते वमन, मूत्र और मल करदेते हैं। आँखें उलट जाती हैं, श्वासावरोध होता है और देखने वालों को प्राणान्त हो जाने की शङ्का होती है; किन्तु इससे मृत्यु कम होती है पर बालकों को भीषण कष्ट भोगना पड़ता है। डाक्टर लोग इसको हौपिंग कफ कहते हैं। इस खांसी में पूर्ण लाभ डेढ़ मास के अनन्तर ही होता है।

(१) यदि दूध पीने वाले बालक को कुकरखाँसी उत्पन्न हो तो उसकी माता अथवा धाय को पीपरि और घी से भुना हुआ उड़द का यूष पान कराने से लाभ होता है।

(२) पीपरि, मुनक्का और सोंठ का चूर्ण मधु और घी के साथ चटाने अथवा दूध में घोल कर पिलाने से लाभ होता है।

(३) कालीमिर्च, कासिनी मुलहठी और सौंफ दो दो माशे पानी के साथ सिलपर महीन पीस ढाई तोले जल में घोल कर उसे तोले भर तपाये हुये लोहे से बुझादे और एक माशे मधु मिला छान कर प्रातः काल पिलादे। दिन रात में इसको एक ही मात्रा पर्याप्त है। इससे कुकरखांसी में अच्छा लाभ होता है।

कौआ लटकनेकी खांसी।

अत्यन्त खांसने से प्रायः बालकों को ललरी सूज कर ऊपर को उठ आती है, फिर वह खांसी उत्तमोत्तम कास के योगों से भी पीछा नहीं छोड़ती। काग के लटकने से यह खांसी दुर्जय हो जाती है। इसी से इसको कौआ के लटकने की खांसी कहते हैं।

(१) चतुर स्त्री हाथ की उँगली गले में डाल कर ललरी धीरे धीरे दबा कर बैठादे और उस पर माजूफल पानी में घिस कर लगादिया करे तो ललरी यथास्थान में बैठ कर खांसी छूट जाती है।

(२) मुलतानी मिट्टी सिरका में घोट कर ललरी पर लगाने से खांसी आराम होती है।

(३) कालीमिर्च और चूल्हे की मिट्टी पानी में घोट कर लगाना लाभकारी है।

पसली रोग।

छोटे बालकों को ज्वर, प्रतिश्याय और खाँसी आदि रोगों में शीतोष्ण के विकार से पेट के दाहिने और बाँये ओर की पसलियाँ धौंकनी के समान उछलने लगती हैं। श्वास के खींचने और छोड़ने में बड़ा कष्ट होता है। पेट धसा सा मालूम होता है और कलेजा धड़कने लगता है। किसी को कब्ज और किसी को पतले दस्त आते हैं। अत्यन्त भीषण कष्ट से बेचैन होकर बालक मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। बालकों के लिये यह बड़ा ही दुखदायी रोग है। इसको हलफा, दसका, डिब्बा और हाँफा आदि कहते हैं।

(१) अडूसे की पत्ती, करेला कीपत्ती जामुनकी छाल और पके हुये पान का रस निकाल गुनगुना करके उसमें एक वा दो रत्ती दुधिया बच घिस कर दिन रात में तीन चार बार पिलाने से पसली रोग आराम होता है।

(२) बँगलापान का रस निचोड़ गरम करके उसमें चावल बराबर कस्तूरी घोल कर पिलादे। इसी प्रकार दिन रात में चार बार पिलाने से पसली रोग शांत होता है।

(३) चिकने पत्थर पर गुलाबजल के साथ दरियाई नारियल घिस कर रत्ती दो रत्ती उतार उसमें एक रत्ती छोटी इलायची का चूर्ण मिला माता के दूध में घोल कर पिलाने से पसली रोग आराम होता है।

(४) गुल चीनी का पका हुआ फल जो तलवार के आकार का होता है और उसके भीतर घुआ के समान पतला श्वेत रङ्ग का बीज रहता है। तीन मास की अवस्था वाले बालक को आधा बीज और आधी काली मिर्च, छः मास वाले को एक एक, और एक वर्ष के उपरान्त दो बीज तथा दो मिर्च पीस कर माता के दूध में घोल दिन रात में दो वा तीन बार पिलाने से बालकों का पसली मारना शीघ्र ही शान्त होता है। पसली रोग में यह औषधि अपूर्व गुण प्रकट करती है।

(५) काली मिर्च, केशर, चौकिया सोहागा और लवँग एक एक तोला चूर्ण कर पान के रस में घोट मूंग के बराबर गोली बना दिन रात में तीन बार माता के दूध-मधु के साथ सेवन कराने से पसली रोग और खांसी आराम होती है।

(६) मकरध्वज और सञ्जीवनी वटी, पान का रस गरमा कर उसके साथ दोनों समय पिलाने से पसली रोग में उत्तम लाभ होता है।

(७) एक तोला मुसब्बर को हालकी ब्याई हुई बछिया के मूत्र में घोट कर मूंग बराबर की गोली बना बंग-ला पान का रस गरम करके उसमें एक गोली घोलकर दिन रात में चार बार पिलाने से पसली रोग दूर होता है

(८) हींगतलाव १ माशे। कबीला ८ माशे। दही के पानी से घोट कर उड़द बराबर गोली बना दोनों

समय एक२ वटी गरम पानी में घोल कर पिलाने से डिब्बे की बीमारी शान्त होती है।

(९) पसलियों पर रेंडी का तैल मर्दन करके अनन्तर बकायन की पत्ती गरमा कर उससे सेक करने पर हांफा रोग में तुरन्त लाभ प्रकट होता है।

(१०) प्याज के रस में मुसब्बर घोल गरमा कर तीन चार बार पसलियों पर लेप करने से लाभ होता है।

एलुवादि वटी।

मुसब्बर और शुद्ध जमालगोटा छः छः मारो लेकर एक मास के बछड़े के मूत्र के साथ लोहदण्ड से लोहे के पात्र में अच्छी तरह घोट कर सरसों बराबर गोली बना दोनों समय एक २ गोली दूध में घोल कर पान कराने से दस्त साफ आता है और पसली का चलना तुरन्त बन्द होता है परन्तु जिस बालक को पतला दस्त आता हो उसे यह वटी न सेवन करानी चाहिये।

दिग्वान कषाय।

उन्नाव, कुमुदपुष्प, गुलाब का फूल, बनफरो का फूल, मकोय, मुनक्का और सूखा लसोड़ा दो दो मारो। अमिलतास की गूदी ३ मारो। सब औषधियों को कुचल कर एक छटांक पानी में पकावे और आधा जल जाने पर उतार कर छानले। थोड़ा थोड़ा तीन बार में इस क्वाथ को पिलाने से दो एक दस्त आकर पसली का वेग शान्त होता है यह

काढ़ा कोष्ठबद्ध में देना चाहिये यदि दस्त पतला आता हो तो इसका सेवन न कराना चाहिये ॥

अतिसार रोग ।

अतिसार रोग में तीनों दोषों के प्रकोप से काला, लाल, हरा और श्वेत रंग कच्चा पतला दुर्गन्धित मल बार बार निकलता है। मल द्वार में पीड़ा और जलन होती है ॥ प्यास और मूर्छा से बालक बेचैन रहता है।

(१) इन्द्रयव, ककरासिंगी, हड़ और हल्दी दो दो तोले अधकुट करके दस मात्रा बनाले । सन्ध्या को छटांक पानी में एक मात्रा भिगोकर प्रातःकाल हाथ से मल कर छानले। इसको तीन बार में चार चार माशे मिश्री मिला कर पान करावे। इसी प्रकार सवेरे का भिगोया रात में पान कराने से बालकों का अतिसार नष्ट होता है।

(२) अतीस, इन्द्रयव, नागरमोथा, सुगन्धवाला और सोंठ के काढ़े में मधु मिलाकर दोनों समय पान कराने से बालकों का अतिसार दूर होता है ।

(३) गजपीपरि, धव का फूल, बेलगिरी, लोध और सुगन्धवाला के क्वाथ में मधु मिला कर दोनों समय पान कराना लाभकारी है ।

(४) अनन्तमूल, धव का फूल, मजीठ, और लोध के काढ़े में मधु मिलाकर दोनों समय पिलाने से बालकों का अतिसार शमन होता है।

(५) पीपरि, लोध और सुगन्धवाला का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों का अतिसार शान्त होता है।

(६) धानका लावा, मिश्री और मुलहठी का चूर्ण मधु के साथ चटाकर ऊपर से मिश्री मिला चावल का धोवन पिलाने से अतिसार और प्रवाहिका नष्ट होती है।

(७) धव का फूल, पपरीखैर, पीपरि, बेलगिरी और लोध का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालकों का अतिसार आराम होता है।

(८) अनार की छाल, आम की गुठली, कमलगट्टा और श्याम कमल का चूर्ण मधु और चावल के धोवन से खिलाना अतिसार के लिये लाभप्रद है।

(९) छोटी इलायची का दाना और लवंग एक एक माशे। तज ४ माशे। सेतखरी १ तोला। मिश्री २ तोले। सबका चूर्ण करके दिन में चार बार पानी अथवा माता के दूध में घोल कर पिलाने से अतिसार और प्रवाहिका शमन होती है।

(१०) अतीस, आम का गुठला, धव का फूल बेलगिरी, मोचरस और लोध का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बहुत बढ़ा हुआ अतिसार आराम होता है।

(११) आम की गुठली, पीपरि और रसवत का चूर्ण मधु के साथ सेवन कराना अतिसार के लिये लाभदायक है।

शोधनी वटी

अफीम, कमलगट्टा, केशर, गाँजा और जावित्री तीन तीन मासे। पुराना गुड़ ढाई तोले। सबको कूट पानी का पुट देकर मूंग के समान गोली बनावे। माता के दूध अथवा पानी में घोल कर दिन में तीन चार बार पिलाने से बालकों का अतिसार निस्सन्देह आराम होता है।

आमातिसार रोग

जिसमें आमयुक्त कच्चा दुर्गन्धित मल पीड़ा के साथ बार बार निकलता है और पानी में डालने से डूब जाता है उसको आमातिसार कहते हैं।

(१) अजमोदा, पीपरि और वायविडंग का चूर्ण गुनगुने जल से दिन में तीन चार बार सेवन कराने से आमातिसार रोग नष्ट होता है।

(२) अफीम ६ मासे। कपूर, काली मिर्च और तलाब हींग एक एक तोला। बड़ वृक्ष की कोमल जटा ३॥ तोले। अर्क गुलाब के साथ घोट कर मूंग बराबर गोली बना दिन में दो या तीन बार गाय के मठा अथवा अर्क सोंफ के साथ सेवन कराने से आमातिसार और संग्रहणी का नाश होता है।

रक्तातिसार रोग।

अतिसार के लक्षणों से युक्त रक्त मिश्रित दस्त वाले रोग को रक्तातिसार कहते हैं। यह रोग अत्यन्त कष्टदायक होता है।

(१)मिश्री, मधु और सुगन्धवाला का चूर्ण चावल के धोवन में घोल कर पिलाने से बालकों का रक्तातिसार नष्ट होता है।

(२)कमल केशर, धौ का फूल, मजीठ और मोचरस छःछः माशे। मिश्री दोतोले। सब अधकुट करके पावभर पानीमें पकावे आधा पानी जल जाने पर मिश्री डाल नीचे उतार कर छान ले। शीतल करके दिनमें तीन चार बार पिलाने से रक्तातिसार नष्ट होता है।

ग्रहणी रोग।

यक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम्।
ग्रहणी रोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः॥

भोजन किया हुआ पदार्थ पककर अथवा कच्चा ही दुर्गंधित पतला वा गाढ़ा बार बार मल के द्वारा निकलता है और पेट में पीड़ा (आँवकी पेचिश) होवो है, आयुर्वेदज्ञ जन उसको ग्रहणी कहते हैं।

(१) मूली के बीज का चूर्ण मधु के साथ दिन में तीन चार बार चटाने से बालकों की ग्रहणी, आंव पेचिश और अँतड़ियों की पीड़ा शीघ्र शमन होती है।

(२) अजमोदा, पीपरि, बायविडंग, वेलगिरी और मुलहठी का चूर्ण चावल के धोवन में मिश्री मिलाकर उसके साथ सेवन कराने से ग्रहणी का नाश होता है।

(३) देवदार, धूप पिठवन, भटकैया की जड़, सौंफ, हड़ और हल्दी का चूर्ण मधु और घी के साथ

चटाने से बालकों की ग्रहणी शीघ्र शमन होती है। इससे ज्वर, श्वास, खाँसी, कामला, पाण्डु दूर होकर अग्नि बल-वान् होती है।

ग्रहणीकपाट वटी।

अफीम ६ माशे। जायफल, जावित्री, बड़वृक्ष की कोमल जटा, मोचरस, लवंग और शुद्ध सिंगरफ एक एक तोला। सब का कपड़छन चूर्ण बनाले, फिर एक छटाँक पोस्त का छिलका कुचल कर आध सेर पानी में पकावे और ढाई तोले जल रहजाने पर नीचे उतार छानले। इसी काढ़े में चूर्ण खरल करे। जब सब रस सूख जाय तब मूंग बराबर गोली बना छाया में सुखाकर दिन रात में तीन वा चार बार मिश्री के शरबत अथवा चावल के धोवन के साथ सेवन कराने से बालकों की आंव पेचिश की बीमारी आराम होती है।

बालग्रहणी वटी।

अफीम और तलावहींग कच्ची छः छः माशे। छोटी इलायची का दाना, फुलाया हुआ चौकिया सोहागा और पपरी खैर एक एक तोला। सोंठ दो तोले। अफीम और हींग को छोड़ सब का कपड़छन चूर्ण बना पीछे अफीम हींग मिलाकर पानी से अच्छी तरह घोट उड़द बराबर गोली बनाकर सुखा डाले। छोटे बालकों को एक एक गोली प्रातः सायंकाल माता के दूध में घोलकर पिलावे और पांच वर्ष से अधिक अवस्था वाले बालकों को

दो दो गोली खिलाना चाहिए। इससे हर प्रकार के हरे पीले आँवसहित पतले दस्त का आना बन्द होता है।

मूर्छारोग।

संज्ञावहासु नाड़ीषु पीड़ितास्वनिलादिभिः।
तमोऽभ्युपैतिसहसा सुख दुःख व्यपोहकृत्॥

चेतना शक्ति को कायम रखने वाली नाड़ियां वातादि दोषों से पीड़ित होकर संज्ञा को तज देती हैं, उस समय अन्धकार सा छा जाता है और सुख दुःख का ज्ञान नहीं रहता। यह रोग जब बालकों को होता है तब उनके हाथ पांव में ऐंठन उत्पन्न होती है, आंख की पुतलियाँ ऊपर चढ़जाती हैं, हाथ की मुट्ठी बँधना, सर्वांग में जकड़न और मूर्छा होती है इसको लोक में तड़का कहते हैं।

(१) शीतल जल का मुखमण्डल पर छींटा देकर स्वच्छ वस्त्र से पोंछ कर पंखे की हवा करना अथवा स्नान करा कर श्वेतचन्दन और कपूर पानी से घिसकर मस्तक पर लेप करने से मूर्छा दूर होती है।

(२) कमलगट्टा, खस, नागकेशर, बेर की गुठली और श्वेत चन्दन समान भाग लेकर चूर्ण कर डाले। दूध और मधु के साथ इस चूर्ण को पिलाने से बालकों की मूर्छा नष्ट होती है।

(३) मकरध्वज और कस्तूरी दूध-मधु के साथ देना लाभकारी है।

(४) नारायणतैल में जायफल पकाकर शरीर पर मर्दन करने से बालकों का मुर्छारोग दूर होता है।

(५) अकवायन, कंडे की राख और सोंठ के चूर्ण का धुआं करनेसे लाभ होता है।

मृगीरोग।

तमः प्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेक हतस्मृतिः।
अपस्मार इतिज्ञेयो गदोघोरश्चतुर्विधः॥

वातादि दोषों की अधिकता से स्मरणशक्ति का नाश होकर अन्धकार छाजाता है, उसको मृगी जानना चाहिए। यह भीषण रोग वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज चार प्रकार का होता है। इसमें स्मार (स्मरण शक्ति) का नाश होजाता है इससे संस्कृत में इसको अपस्मार कहते हैं। हिन्दी में मृगी, अर्बी में सरआ और अँग्रेजी में एपिलेप्सी के नाम से प्रसिद्ध है। यह रोग मस्तिष्क सम्बन्धी है। जब इसका आक्रमण (दौरा) होता है तब पहले आंखों के सामने काला, लाल, श्वेत रंग दिखाई देकर मूर्छा आती है। कांपना, दांत चबाना, मुख से फेन निकलना, कम्प, श्वास में खड़खड़ाने का शब्द आंखों का विकृत होना, रोमाञ्च होना और नेत्रों का रंग श्याम, पीला अथवा श्वेत होजाता है। यह कष्टसाध्य रोग है

मृगी की चिकित्सा।

(१) शिर पर शीतल जल का तरेरा देने से

और हाथ पांव को ठंडे पानी में डाल रखने से मृगी का दौरा शीघ्र घट जाता है तथा कान के समीप जोर से पुकारना लाभप्रद है।

(२) जायफल अथवा हींग स्वच्छ वस्त्र के द्वारा गले में बांधने से मृगी का दौरा घट जाता है।

(३) राई पीस कर वस्त्र में पोटरी बना बार बार सुंघाने से बालकों की मृगी का वेग घटने लगता है।

(४) वचके चूर्ण की पोटरी बना सुंघाने से बालकों की मृगी का दौरा शीघ्र घटता है।

(५) श्वेत प्याज के रस की नस्य देने से मृगी रोग आराम होता है।

(६) श्वेत कोहँडे के रस में मुलहठीका चूर्ण मिला दोनों समय सात दिन तक सेवन कराने से बालकों का अपस्मार रोग आराम होता है।

(७) मेउँड़े की जड़ का रस निकाल उसमें तलाव हींग और हल्दी घोटकर नस्य देने से मृगी रोग छोड़ कर भाग जाता है।

(८) काली मिर्च ४ रत्ती। अगस्तिवृक्ष की हरी पत्ती २ माशे। दोनों को थोड़े गोमूत्र के साथ महीन पीस वस्त्र में रख रस निचोड़ ले। दिनमें पांच छः बार इसकी नस्य देने से मृगी रोग शांत होता है। यह योग अष्टाङ्गहृदय का है।

(६) अकरकरा का चूर्ण दोनों समय मधु के साथ चटाने से बालकों की मृगी अवश्यही छूट जाती है।

(१०) बालवच और सोनामक्खी की भस्म समान भाग कपड़छन करके एक रत्ती से दो माशे पर्यन्त दोनों समय मधु के साथ चटाने से बहुत पुरानी मृगी आराम होती है।

(११) अखरोट की गिरी को मेडँड़ी के पत्ते के रस में घोट कर आंखों में अंजन करने और इसी को दोनों समय पिलाने से मृगी रोग में उत्तम लाभ होता है।

(१२) जस्ता और ताँबे की चादर को एक में पिटवा कर पड़ियों के नाप का जूते के आकार बनवाले, उसको प्रतिदिन रात को सोते समय पड़ियों में बांधने से मृगी रोग में अपूर्व लाभ होता है।

(१३) अकरकरा, कालीमिर्च, चोपचीनी, छोटी पीपरि, बालवच और सोंठ तीन तीन तोले। तिल का तैल एक सेर। पानी दो सेर। सब औषधियों को पीस कल्क बना पानी के साथ तैल में मिला पका कर छान ले। इस तैल की नस्य देने और पाव भर गोदुग्ध में एक वा दो माशे तैल मिला दोनों समय पान करने से तथा सिर पर मर्दन करने से मृगी रोग में अपूर्व लाभ होता है।

(१४) गाय का घी तीन पाव। गाय के गोबर का रस, गायका दही और दूध एक एक सेर कड़ाही में डाल कर पचावे और घी मात्र रहजाने पर उतार कर छानले। इस घृत को दोनों समय निरन्तर सेवन कराने से बालकों का मृगी रोग छूट जाता है।

(१५) मुलहठी एक पाव। गाय का घी एक सेर।

श्वेतकूष्माण्ड (रकसवा कोहंड़ा) का रस अठारह सेर। मुलहठी का कल्क, घी और पानी कड़ाही में डाल कर पकावे पानी जल जाने पर नीचे उतार वस्त्र से छान ले। इस घृत का सेवन कराने से बालकों की मृगी अवश्य छूट जाती है। भावप्रकाश के उन्माद प्रकरण में कहे हुए " महा चैतस घृत " से अपूर्वलाभ होता है।

(१६) तलावहींग और सेंधानोन पांच२ तोले। गाय का घी आध सेर। गोमूत्र दो सेर। अग्नि में पकाकर घी सिद्ध हो जाने पर दो रत्ती से तीन माशे पर्यन्त दूध के साथ दोनों समय सेवन कराने से मृगी आराम होती है।

(१७) एक माशे ब्राह्मी के रस में बालबच और कुलंजन घिस कर दोनों समय पिलाने से और एक तोला तिल के तैल में चार तोले ब्राह्मी का रस पकाकर यही तैल सिर पर मलने से बालकों की मृगी आराम होती है।

मूत्राघात और पथरी रोग।

पीड़ा सहित थम थम कर बून्द बून्द पेशाब का होना मूत्राघात कहलाता है। लिङ्गेन्द्रिय के भीतर जब ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है तब मूत्र के वहन करने वाले स्रोतों का रोध होकर बालकों को पेशाब करने में दुस्सह पीड़ा होती है उसको अश्मरी (पथरी) रोग कहते हैं।

(१) कपूर को गला कर उसमें कोमल वस्त्र भिगो बत्ती बना मूत्रेन्द्रिय के छिद्र में प्रविष्ट करने से अत्यन्त दारुण मूत्रावरोध तुरन्त दूर होता है।

(२) छोटी इलायची, पीपरि, मिश्री, सेंधानोन और सोंठ का चूर्ण मधु के साथ फेंट कर चटाने से, बालकों का मूत्राघात, पीड़ा और जलन दूर होती है।

(३) अडूसे की जड़, अरण्ड की जड़, छोटी इलायची, पाषाण भेद, पीपरि, बड़ा गोखुरू, मुलहठी और रेणुका के काढ़े में शिलाजीत मिलाकर दोनों समय पान कराने से बालकों की पथरी और मूत्राघात रोग आराम होता है।

बालकों का शोथ।

(१) इन्द्रयव, देवदारु, नागरमोथा और श्वेतकूष्माण्ड का बीज एक एक माशे लेकर पानी के साथ महीन पीस थोड़े जल में घोल कर पिलाने से बालकों के सर्वाङ्ग की सूजन दूर होती है। इसका उबटन शरीर पर करना शोथ को निमूल करता है।

अजगल्ली रोग।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा।
कफवातोत्थिताज्ञेया बालानामजगल्लिका॥

वात और कफके प्रकोप से बालकों के शरीर में देह के वर्णवाली चिकनी पीड़ा रहित मूंग समान गांठ उत्पन्न होती है, उसको अजगल्लिका (इल्ला) कहते हैं।

(१) जवाखार, फुलाई हुई फिटकिरी और सीप की भस्म पानी में घोट कर बार बार लेप करने से अजगल्ली नष्ट होती है।

(२) यदि लेप से यथोचित लाभ न प्रकट हो तो प्रतिसारणीय क्षार लगाकर उसको गलाना चाहिये और पित्त व्रण के अनुसार घाव पर लेपादि करने से अजगल्ली का नाश होता है।

पामा (खुजली) रोग

सूक्ष्मावह्व्यः पीड़िका स्राववन्त्य : ।
पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहा : ॥

छोटी छोटी बहुत सी फुन्सियां खुजली और जलन के साथ शरीर पर उत्पन्न होती हैं, उसको पामा (खाज, खुजली वा खसरा) कहते हैं। यह रोग सूखा और गीला दो प्रकार का होता है। सूखी खुजली में छोटे छोटे दाने निकलते हैं और गीली खाज में फफोले के समान स्राववाली पिड़िका उत्पन्न होती हैं तथा शरीर में घाव होकर खुजली चलती है।

(१) खस, पद्माख और श्वेत चन्दन को पानी से महीन पीसकर लेप करने से बालकों की खुजली दूर होती है।

(२) चावल और काला तिल पानी से पीस कर नाभि पर लेप करना लाभकारी है।

(३) कुट, वच और वायविड़ंग के काढ़े से बालक को स्नान कराने पर खुजली नष्ट होती है।

(४) इन्द्रयव, कुट, घर का धुआं राई और हल्दी पानी से महीन पीस कर लेप करने से बालकों की दोनों प्रकार की खाज सूख कर छूट जाती है।

विसर्प रोग।

विसर्पस्तुशिशोः प्राणनाशनः शीर्षवस्तिजः।
पद्मवर्णो महापद्मरोगो दोषत्रयोद्भवः ॥

तीनों दोषों के प्रकोप से प्राणों को नष्ट करने वाला लाल कमल के समान बालकों के शिर और मूत्राशय में विसर्प (फोड़ा) होता है, इसको महापद्म रोग कहते हैं। मस्तक में उत्पन्न हुआ विसर्प कनपुटियों से हो कर हृदय में पहुंचता है और वस्ति में होने वाला विसर्प गुदा आदि स्थानों में फैल कर बालकों के जीवन का अन्त कर देता है। इस लिये विसर्प के उत्पन्न होते ही खूब सवाधानी से उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

(१) अनन्तमूल, कमलगट्टा, खस, नागरमोथा, नीला कमल, मजीठ मुलहठी, लालचन्दन, श्वेतचन्दन और सरसों समान भाग पानी में पीस कर मोटा लेप बार बार चढ़ाने से बालकों का उभड़ता हुआ विसर्प बैठ जाता है पकता नहीं।

(२) आंवला नीब की छाल, परोरा की पत्ती, बहेड़ा के फल का छिलका, हड़ और हल्दी के काढ़े में मधु मिला कर दोनों समय पिलाने से बालकों का विसर्प, व्रण, विस्फोटक तथा रक्तविकार दूर होता है। पक जाने पर पित्तज-व्रण के अनुसार विसर्प की चिकित्सा करनी चाहिये।

व्रण (फोड़ा फुन्सी) रोग ।

(१) रेवत चीनी को पानीके साथ चिकने पत्थर पर चन्दन के समान घिस कर लेप करने से बालकों के फोड़े फुन्सी का घाव शीघ्र सूख कर आराम हो जाता है।

(२) आंवले के सूखे फल को जलाकर उसको भस्म घी में फेंट व्रणों पर लगाने से घाव सूख जाते हैं।

(३) श्वेत कनेर की पत्ती दो तोले पानी में महीन पीस कर आधपाव कडूतेल में पकावे। जब लुगदी जलकर काली हो जाय तब नीचे उतार लोहे के डंडे से घोट कर मलहम बनाले। इस मलहम के लगाने से सब प्रकार के घाव आराम होते हैं।

व्रण, विद्रधि और विसर्प आदि की चिकित्सा हमारी लिखी हुई "व्रणोपचार पद्धति" नाम की पुस्तक में विस्तार से वर्णन की गयी है, उसको देखिये।

शीतला रोग ।

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्त पित्तजाः।
क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः॥

पहले ज्वर होकर रक्त और पित्त के दोष से शरीर के किसी एक अङ्ग में अथवा सर्वाङ्ग में छोटे बड़े अग्नि से जले हुये के समान फफोले उत्पन्न होते हैं, उसको विस्फोटक रोग कहते हैं। हिंदी में शीतला, (माता) फ़ारसी में चेचक वा ज़ुदरी और अंग्रेज़ी में स्मालपाक्स के नाम से

यह रोग प्रसिद्ध है। इस रोग की उत्पत्ति अधिकांश वसन्त ऋतु में होती है इससे बङ्गवासी वैद्य इसको वसन्त रोग कहते हैं। यह संक्रामक रोग है, क्योंकि रोगी के मलमूत्र पसीना थूक और वस्त्रादि के स्पर्श से दूसरों को हो जाया करता है और इसका बीज वायु में मिल कर फैलता है।

शीतलाके उपद्रव।

इस रोग में ज्वर, दाह, खुजली, हड़फूटन, भयङ्कर पीड़ा, शिरदर्द अरुचि, वमन, मूर्छा, श्वास, हिचकी, फफोलों का पककर बहना, मांस का सड़ना, शरीर का काला लाल वा पीला रंग होजाना, कम्प और बकवाद आदि उपद्रव होते हैं।

शीतला का पूर्वरूप।

जब ज्वर आने के साथ ही नेत्रलाल होकर आँसू बहने लगें, मुखमण्डल भरमाया हुआ सुर्ख होजाय, छींक आवे, शरीर में पीड़ा, जकड़न, वमन और मन्दज्वर में भी मूर्छा हो तथा छोटे बालक बार बार चौंका और डरा करते हैं, तब जानना चाहिए कि इसको विस्फोटक रोग होने वाला है।

ज्वर होने के तीसरे दिन प्रायः शरीर पर दाने निकल आते हैं। किसी किसी को ज्वरारम्भ ही से तीनों दिन मूर्छा निरंतर बनी रहती है, किंतु यह बेहोशी अन्य ज्वरों की बेहोशी के समान भयावह नहीं होती।

शीतला के घातक लक्षण।

जिसके दाने आरम्भ ही में काले, अत्यन्त लाल रूखे और कठोर हों। शरीर में दुस्सह पीड़ा, कँपकपी बेचैनी, मूर्छा, खांसी, गले का सूखना और प्यास की अधिकता हो तो उसको कष्टसाध्य समझना चाहिए। दाने का रंग काला चिपटा, फैला हुआ, बीच में गहरा और चारों ओर किनारे पर उभड़ा हुआ हो, मांस सड़कर उसमें दुर्गन्धि आती हो, सड़ा मवाद बहता हो और रोगी वेदना से अत्यन्त बेचैन होतो असाध्य जानना चाहिए। कोई दाने काले, कोई लाल, कोई श्वेत हों, नाक और मुख से रक्तप्रवाह होता हो, श्वास मूर्छा तीव्र ज्वर, गले में घरघराहट, अत्यन्त दुर्गन्धि फैलती हो और गठिया आदि भयङ्कर वातव्याधि का होना असाध्य लक्षण है मसूरिका भी विस्फोटक के भेदों में से है. उसकी चिकित्सा यद्यपि भिन्न लिखी गयी है तथापि शीतला रोग के उपाय मसूरिका के लिये भी हितकारी हैं।

शीतला का टीका।

सन् १७९८ ई० में इंगलैण्ड के डाक्टर जेनर ने पहले पहल शीतला के टीका का प्रचार किया। उस समय इंगलैण्ड में चेचक का इतना अधिक प्रकोप था कि बालक, युवा वृद्ध, स्त्री पुरुष उससे कदाचित् ही कोई बचे थे, किंतु गाय के दुहने वाले ग्वालों को यह रोग नहीं

हुआ। इस पर जेनर साहब ने अनुसन्धान किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि गाय के स्तनों में छोटी छोटी फुन्सियां होती हैं उनका पानी शरीर में प्रविष्ट करने से शीतला रोग की प्रबलता घट जाती है और प्रकोप शान्त होता है उन्होंने गाय के स्तनों में नश्तर देकर वह पानी निकाला और सुई द्वारा मनुष्यों की बाहुओं में प्रविष्ट करना आरम्भ किया।

जिस समय शीतला के टीका का इङ्गलैण्ड में प्रचार हुआ था उसी ज़माने में रूस में रहनेवाले अंग्रेज एलची की महिला ने शीतला का टीका जो रूस में प्रचलित होरहा था उस पर लेख लिखा था और उसी लेख के आधार पर डाक्टर जेनर की प्रतिभा का विकाश हुआ। उस समय यह टीका इंगलैण्ड वालों को लेना अनिवार्य हो गया। यहां तक इसका प्रचार बढ़ा और गवर्नमेण्ट दत्तचित्त हुई कि जो टीका लेना अस्वीकार करता था उसपर अभियोग उपस्थित कराकर न्यायालयों में दंड दिलाया जाता था। उसी प्रथा का अनुकरण भारतवर्ष में भी किया गया, परन्तु इंगलैण्ड में तो कुछ दिनोंके अनन्तर एक बृहद् डाक्टर मंडलीने टीका की उपयोगिता को असिद्ध बतलाते हुए स्पष्ट कह दिया कि शीतला का टीका लगाने से कोई लाभ नहीं है, इससे वह कानून उठा दिया गया। अब जिसकी इच्छाहो टीका लगवावे और न इच्छा हो तो न लगवावे, पर गवर्नमेण्ट किसी पर दबाव नहीं डालती। परन्तु भारत जैसे परतंत्र देश में अभी

तक वही पुरानी लकीर पीटी जारही है। कितने ही टीके लगे मनुष्यों को चेचक निकल आती है। और मृत्यु भी हो जाती है। जिससे शीतला के टीका की अनुपयोगिता सिद्ध होती है। ऐसी संदिग्ध दशा में सरकार को चाहिये कि जिस प्रकार इंगलैंण्ड में टीका के कड़े कानून का संशोधन किया है उसी प्रकार भारतीय प्रजा के साथ न्याय करके यशस्वी बने।

चिकित्सा की उपेक्षा।

इस रोग में बहुतेरे लोग चिकित्सा कराने से अत्यन्त डरते हैं कि अरे बाबा! यह तो शीतला देवी का प्रकोप है, इसमें चिकित्सा कराना अमंगल का कारण है। इस प्रकार का विचार अन्धपरम्परा और मूर्खता के सिवाय कोई तथ्य नहीं रखता। वास्तविक बात तो यहहै कि शीतला रोग प्रायः दुस्साध्य होता है अतः इसके होने पर प्राचीन काल के आचार्य मुनिवरों ने शीतला देवी की उपासना, स्तोत्रपाठ और कीर्तनादि करना तथा पवित्रता से रहनेका आदेश किया है। भगवती शीतला की कृपा से इस रोग की शान्ति होती है। अब समय के फेर और हमलोगों की अनभिज्ञता से इस रोग का ही नाम शीतला पड़ गया है। क्या सचमुच शीतला देवीका स्वरुप इन दुर्गन्धित सड़ने गलनेवाले फोड़े फुन्सियों के समान है? कदापि नहीं। इस अन्धपरम्परा को तिलाञ्जलि देकर इस रोग के आर्षग्रन्थों के मतानुसार किसी

अनुभवी भिषग्वर से जो प्रत्येक अवस्थाओं का पूर्ण ज्ञानरखता हो चिकित्सा करानी चाहिये, क्योंकि रोग के भीषण रूप में बढ़ जाने पर यथोचित उपचार ही से कल्याण हो सकता है।

शीतला से रक्षा का यत्न।

(१) यह रोग अधिकांश बालकों को होता है और संक्रामक (छूतदार) है। अतः रोगी के समीप स्वस्थ बालकों को न जाने देना चाहिये।

(२) बालकों के सिवाय कभी कभी यह रोग पूर्ण वयस्क स्त्री-पुरुषों को भी हो जाता है और बड़ा ही दुःखद तथा प्राणान्तक होता है, अतः बिना टीका लगे स्त्री-पुरुषों को रोगी के समीप न जाना चाहिये।

(३) बाल्यावस्था में तीन तीन वर्ष के अन्तर से तीन बार शीतला का टीका लगवाने से चेचक निकलने का कम डर रहता है। कदाचित उस मनुष्य को शीतला निकल आवे तो भीषण प्रकोप नहीं होता। एक मनुष्य चाहे वह तीन ही बार क्यों न टीका लिये हो, शीतला के रोगी के समीप देर तक उसको न रहना चाहिये।

(४) शीतला रोग के फैलने पर स्वस्थ बालकों के खाने पीने में खूब सावधानी रखनी चाहिये, क्योंकि खटाई, खट्टादही, नवीन अन्न बादी शाक और लालमिर्च आदि तथा दूषित जल वायु का सेवन इस रोग के फैलाने में सहायक होते हैं।

(५) यह रोग प्रायः फाल्गुण चैत्र में होता है, अतः इन दोनों रोगों के फैलने पर बालकों को कोष्ठबद्ध न होने पावे इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। हलका रेचन देकर अथवा वस्ति (एनिमा) से पेट साफ कराते रहना आवश्यक है। पकाया हुआ पानी छान ठण्डा करके पिलाना और वायु-संशोधन के लिये प्रति दिन दोनों समय हवन करना लाभकारी है। खाने पीने और ओढ़ने बिछाने में स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना और घर को प्रतिदिन गाय के गोबर से लिपवाना चाहिये।

(६) रुद्राक्ष को पानी से घिस कर थोड़े जल में घोल प्रतिदिन बालक को पिलाने से शीतला निकलने की बहुत कम सम्भावना रहती है।

(७) बालक को दूसरे तीसरे दिन दो तीन दाने अनविंधे मोती के गुलाबजल में घोट कर पिलाते रहने से शीतला निकलने का डर नहीं रहता।

(८) हड़ की गुठली धागा में पिरोकर माला बना बालक के दाहिने हाथ और कन्याके बायें बाहु पर बाँधने से तथा हड़ के वृक्कल का चूर्ण प्रति दिन शरीर पर मलने से शीतला निकलने की कम सम्भावना रहती है।

(९) अशोक, तितलौकी, नीब पाकरि और बेत के पत्तों को कुचल कर सन्ध्या को पानी में भिगो दे और प्रात काल छान कर प्रति दिन इस जल से बालक को स्नान कराने से शीतला निकलने से बचाव होता है।

शीतला की चिकित्सा।

इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में वमन-विरेचन कराकर अन्य उपचार करने से पूर्ण लाभ होता है। कभी कभी केवल वमन-विरेचन ही से रोग का वेग घट जाता है अन्य उपायों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

कुरैया की छाल, वच, मुलहठी और मैनफल छः छः माशे लेकर कपड़छन चूर्ण बनाले। फिर अडूसे के जड़ की छाल, नीव और परोरा की पत्ती छःछः माशे कुचल कर आध सेर पानी में पकावे। जब आधपाव जल रह जाय तब नीचे उतार वस्त्र से छानले। दो दो माशे ऊपर का चूर्ण इसी काढ़े में घोलकर दश वर्ष की अवस्था वाले बालक को पिला देने से वमन होकर दोष निकल जाता है। न्यूनाधिक अवस्था के अनुसार औषधि की मात्रा घटा बढ़ा कर थोड़ी थोड़ी दो तीन वार में पिलानी चाहिये। यदि वमन के अनन्तर पूर्ण रूप से दोष शान्त न हो और रोगी अधिक निर्बल न हुआ हो तो निसोत का चूर्ण अथवा अंडी का तेल देकर दो तीन दस्त करा देने से दोषों की शान्ति हो जाती है, किन्तु तीव्र कदापि न देना चाहिये।

(१) शीतला के ज्वरारम्भ में छः माशे हुरहुर के पत्ते का रस निकाल कर उसमें चार पांच रत्ती श्वेतचन्दन घिस कर दोनों समय पिलाने से दानों के निकलने में किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न होता। यदि चेचक के दाने

प्रकट होते ही छिप जावें तो निम्न क्वाथ पिलाना चाहिये।

(२) अड़ूसे की जड़, आँवला, कुटकी, खस, नीब की छाल, परोरा की पत्ती, पाढ़ी पित्तपापड़ा, लालचन्दन और श्वेतचन्दन के काढ़े में मिश्री डाल कर पिलाने से छिपे हुए शीतला के दाने प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

(३) अनार की छाल, ईख की जड़, गुर्च, मुनक्का और मुलहठी के चूर्ण को पुराने गुण के साथ दोनों समय खिलाने से बिना किसी उपद्रव के दाने पक कर ढल जाते हैं।

(४) यदि दाने पक गये हों और पीब निकलती हो तो पीपल, पाकड़ बड़ और सिरस की छाल का चूर्ण उनपर बुरकना लाभकारी है। अथवा कंडे की राख को कपड़छन करके शय्यापर बिछाना और घाव पर छिड़कना चाहिये।

(५) दानों में शीघ्र जल न भरता हो तो चावल के धोवन से इन्द्रयव पीस कर शरीर पर लेप करने से जल भर कर शुद्ध रूप से प्रत्येक दाने ढल जाते हैं।

(६) अनन्तमूल, चमेली की पत्ती चौराई की जड़, नागकेशर, लालचन्दन और सिरस की छाल पानी से पीस लेप करने से शीतला का भीषण दाह शान्त होता है।

(७) पांच छः फूल लवंग एक छटांक गाय के मक्खन वा नैनू में घोट कर बार बार फफोलों पर लेप करने से दाह शान्त होता है।

गले और मुख का घाव।

यदि शीतला रोग में गले और मुख के भीतर घाव हो जाय तो आँवला और मुलहठी एक एक तोला कुचल कर सेर भर पानी में पकावे जब आध सेर जल रहजाय तब नीचे उतार शीतल करके छानले, उसमें दो तोले मधु मिला कर थोड़ा थोड़ा तीन चार बार पिलाने और कुल्ली कराने से मुख तथा गले के भीतर का घाव सूख कर आराम होता है।

नेत्रपाक का उपाय।

यदि आँख के पलक अथवा उसके आस पास के दाने पक गये हों तो आँवला, कुमुद पुष्प, खस, दारुहल्दी बहेड़ा, मजीठ, मुर्रा, मुलहठी, लोध और हरड का क्वाथ बना शीतल करके छानले और इसी जल से दिन में चार पांच बार धोने से वहां के दाने मिट जाते हैं तथा घाव शीघ्र ही सूख कर आराम होता है।

वेगनाशक प्रयोग।

काली मिर्च ५ दाना। नीम का मद तोले। मिर्च का चूर्ण मदमें मिला प्रातःकाल एक बार सेवन कराना चाहिए। इसी प्रकार सात दिन पान करने से शीतला का उपद्रव घट कर रोग को शान्ति होती है।

ज्वरसंहारक योग।

(१) कुट, छड़ीला, छोटी इलायची, तगर, दारुहल्दी मुलहठी, लालचन्दन, सिरस की छाल, सुगन्धबाला और हल्दी पानी से महीन पीस उसमें गाय का नैनू वा घी फेंट कर शरीर पर लेप करने से ज्वरयुक्त विस्फोटक खुजली और शोथ शीघ्र ही आराम हो जाता है।

(२) अडूसे की जड़, गुर्च, नागरमोथा, मुनक्का और लालचन्दन का क्वाथ शीतल करके पान कराने से शीतला का ज्वर शान्त होता है।

(३) इन्द्रयव, अडूसे की जड़, आँवला, खस चिरायता, नागरमोथा, नीम की छाल, परोरा की पत्ती, पित्तपापड़ा, बहेड़ा, मुलहठी और हरड़ का क्वाथ बना दोनों समय पान कराने से शीतला का ज्वर नष्ट होता है तथा दाने शीघ्रता से उभड़ जल भर कर ढलजाते हैं।

(४) प्रतिदिन छटांक आधपाव रोगी को गदही का दूध पिलाने से चेचक की बीमारी में अच्छा लाभ होता है।

महापद्मक घृत।

कुट, कैतके फल का गूदा, छोटी इलायची, तगर तूतिया, तेजपात, दारुहल्दी, नाग केशर, पद्माख, वायविडङ्ग मुलहठी मोम, लसोड़ा की छाल, लाही, लोध, सिरस की छाल और हल्दी ढाई २ तोले। गाय का घी पाँच पाव समस्त औषधियों को अधकुट करके दो भाग करडाले

पहले एक भाग को चार सेर पानी में पकावें जब एक सेर जल रहजाय तब नीचे उतार वस्त्र से छान ले। दूसरे भाग को इसी काढ़े से सिल पर महीन पीस कल्क बना फिर घी, कल्क और काढ़ा साथ ही कड़ाही में पकाकर घी तैयार करके छान ले। दोरत्ती से तीन माशे पर्यन्त दूध के साथ इस घी को दोनों समय पिलाने और शरीर पर लगाने से अनेक प्रकार के विस्फोटक, विसर्प, विद्रधि और नाड़ी व्रण आदि आराम होते हैं। इसके सिवा सर्प लूतादि विषैले जीवों के दँश से उत्पन्न विष का इससे नाश होता है। यह योग धन्वन्तरि संहिता का है।

पथ्यापथ्य।

रोगी के वस्त्र प्रतिदिन बदलना और स्वच्छ वस्त्र पहनना तथा साफ जगह में रहना परमावश्यक है। क्योंकि छुआछूत और गन्दगी से रोग बिगड़ कर घाव सड़ जाता है और उसमें कीड़े पड़जाते हैं। रोगी का बिस्तर स्वच्छ और कोमल होना चाहिए, उस पर नीब के कोमल पत्ते बिछा कर रोगी को सुलाना उत्तम है। चारपाई में नीब की टहनी खोंसना उस घर के कोने कोने में नीब की पत्तियों को बिछा रखना और नीब ही की टहनी से मक्खी उड़ाना लाभकारी है। वस्त्र से छनी हुई कण्डे की राख पलंग पर बिछाकर उसपर रोगी को लिटाना, घावों पर वही राख बुरकना, तुलसी का पत्ता चबवाना और शीतल पदार्थों का शरीर पर

लेप करना लाभदायक है। शीतला रोग में पकाया हुआ पानी न देना चाहिए। स्वच्छ, शीतल, वस्त्र से छनाहुआ कच्चा पानी पिलाना श्रेष्ठ है। ज्वर और मूर्छा की दशा में कुछ भी खाने को न देना चाहिए। साधारण अवस्था में दो चार मुनक्का देना पर्याप्त है। ज्वर का वेग शांत होने पर साबूदाना वा मूँग की दालका पानी आदि हलका पथ्य देना चाहिए। आरोग्य होजाने पर कुछ दिन शीतलाके रोगीकोदूध, खीर, दलिया, लौकी और खुरफा आदि का शाक न खिलावे।

मसूरिका रोग।

गात्रेष्वन्तश्च वक्त्रस्य दाहज्वर रुजान्विताः।
मसूरमात्रास्तद्वर्णास्तित्संज्ञाः पिटिकाघनाः॥

शरीर पर और मुख के भीतर दाह, ज्वर और पीड़ा से युक्त मसूर के आकार की बहुतसी फुन्सियां उत्पन्न होती हैं उसको मसूरिका वा कोदवामाता कहते हैं। इस से छोटी अम्हौरी के समान होनेवाली मसूरिका को दुलारो माता कहते हैं।

जब यह रोग उत्पन्न होने वाला होता है। तब पहले ज्वर आता है। त्वचा में विवर्णता, सूजन, खुजली अरुचि और हड़फूटन होती है तथा नेत्र अत्यन्त लाल होजाते हैं। जिस मसूरिका की फुन्सियां नीली, चिपटी, फैली हुई, बीच में नीची, अत्यन्त वेदना वाली, देर में पकने वाली और दुर्गन्धित पीव निकलती हो तो उसको असाध्य जानना चाहिए।

मसूरिका की चिकित्सा।

(१) बिजौरा नीबू की केशर को कांजी के साथ पीसकर सर्वाङ्ग में लेप करने से दाह तुरन्त दूर होकर मसूरिका के दाने शीघ्र पक जाते हैं।

(२) अडूसे की जड़, आँवला, खदिर की छाल गुर्च, नीव की छाल, परोरा की पत्ती, बहेड़ा और हरड़ का काढ़ा बना मिश्री डाल दोनों समय पान कराने से खुजली आदि उपद्रवों से युक्त भयङ्कर मसूरिका शीघ्र शांत होती है।

(३) मसूरिका के छूटजाने पर प्रायः रोगी को पतले दस्त आते हैं और श्वेत वा लाल आंव पीड़ा के सहित पड़ने लगती है, उस अवस्था में निम्न क्वाथ से तुरन्त लाभ होता है। पोस्त का छिलका एक तोला, सौंफ़ दो तोला, दोनों को कुचल कर मात्रा दो रत्ती से पांच माशे पर्यन्त अवस्थानुसार क्वाथ बना मिश्री डाल दोनों समय पिलाने से आँव पेचिश की बीमारी शीघ्र ही मिट जाती है, किन्तु आरोग्य होने पर इसका पिलाना बन्द कर देना चाहिए नहीं तो कोष्ठबद्ध होजाने की आशङ्का रहती है।

जो जो उपचार शीतला रोग में कहे गये हैं उनमें अधिकांशतया व्रण के अनुसार चिकित्सा करने से मसूरिका का प्रकोप शान्त होता है।

ग्रहोपसर्ग के लक्षण ।

जब बालक अनायास भयभीत होकर रोने लगता है, आर्त्तस्वर से चीख मारता है, आकाश की ओर टकटकी लगाये देखता रहता है, भौंहें चढ़जाती हैं, बार २ जँभाई आती हैं, ओठों को दांत से दबाता है, माता को नख तथा दांतों से खसोटता है, दुर्बल तथा मलिन हो जाता है, गला घरघराने लगता है, रात्रि में सोता नहीं, कांपने लगता है और शरीर पर काले, पीले, लाल, धुमेले वा ताम्रवर्ण के धब्बे पड़जाते हैं तथा स्तनपान त्याग देता है। इन लक्षणों से युक्त बालक को समझना चाहिये कि यह ग्रहों से पीड़ित है। इसको लोक में जमुआ रोग कहते हैं।

ग्रहों की उत्पत्ति और उनके नाम ।

स्वामिकार्तिक की रक्षा के लिये पूर्व में भूतभावन शंकर जी ने बारह ग्रह उत्पन्न किये, उनमें स्कन्द, विशाख, मेषाख्य, श्वग्रह और पितृग्रह ये पांच पुरुषवर्ग तथा शकुनि-पूतना, शीतपूतना, दृष्टि पूतना, मुखमंडलिका रेवती और शुष्क रेवती ये सातों स्त्री वर्ग के ग्रह हैं।

ग्रहबाधा का कारण ।

कुलेषु येषु नेज्यन्ते देवाः पितर एव च ।
ब्राह्मणाः साधवो वापि गुरवोतिथयस्तथा ॥ १ ॥

निवृत्तशौचाचारेषु तथा कुत्सित वृत्तिषु ।
निवृत्त भिक्षा वलिषु भग्नकांस्य गृहेषु वा ॥ २ ॥
तेवैबालाश्च तांस्तान्हि ग्रहा हिंसन्त्यशङ्किताः ।
तत्रवोविपुलावृत्तिः पूजाचैव भविष्यति ॥ ३ ॥

उन ग्रहों को शिवजी ने आज्ञा दी कि जिस कुल में देवता, पितर ब्राह्मण, साधु, गुरु और अतिथियों की पूजा नहीं होती। पवित्रता और आचार से भ्रष्ट तथा निन्दित जीविका करने वाले, भिक्षुकों को भिक्षा न देने वाले, देवता की पूजा न करने वाले एवम् कांसे के फूटे पात्र में भोजन करने वालों के बालकों को तुम लोग निःशंक होकर पकड़ो ऐसा करने से तुम्हारी अच्छी तरह से आजीविका चलेगी और पूजन भी होगा।

ज्ञाता उपचारक ।

धृतानिभूत विद्यायां वक्ष्यन्ते यानि तानिच ।
युञ्ज्यात्तथा वलिं होमं स्नयनं मंत्रतंत्रावित् ॥

भूतविद्या के उपचार में जो बलिदान, हवन, स्नान और घृत तैलादि का विधान कहा गया है उसका प्रयोग मंत्रतंत्र जानने वाले ही को करना चाहिये, क्योंकि अनभिज्ञ मनुष्यों के द्वारा विधिहीन क्रिया करने से विफलता के सिवा सफलतानहीं प्राप्त हो सकती।

बालकों के ग्रहग्रसित होने का लक्षण और प्रत्येक ग्रहों की शान्ति बलिप्रदान आदि का वर्णन हमने "भाषाबालतंत्र" नामक ग्रन्थ में किया है उससे अथवा सुश्रुत संहिता, धन्वन्तरि संहिता, अष्टाङ्गहृदय और भावप्रकाश आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसका विस्तार पाठकगण अवलोकन कर सकते हैं। अतएव यहां कुछ ऐसे योग दिये जाते हैं जो ग्रहबाधा मात्र के लिये लाभकारी हैं। साधारणतः ये भी विशिष्ट रोग हैं जो ग्रहों के रूप में मान लिये गयेहैं ।

ग्रहबाधानाशक घृत ।

अरणी की छाल, खम्भारी की छाल, नागरमोथा पाढ़ी, बच, बेल की छाल, रासना, सरिवन और सोनापाठा की छाल पांच पांच तोले कुचल कर चार सेर पानी में पकावे, चौथाई जल रहजाने पर छान कर रख ले। अनन्तमूल, इन्द्रयव, कालीमिर्च चीता, दुधिया, देवदार, पाढ़ी, पिपरामूल, पीपरि, वायविडङ्ग, मुलहठी, सोंठ और हींग डेढ़ डेढ़ तोले कूट कर काढ़े के साथ सिल पर महीन पीस कल्क बनालें। फिर कल्क और काढ़ा एक सेर गाय के घी में मिलाकर मन्द आंच से पकावे, घी मात्र रहजाने पर उतार कर छानले। बालकों को इस घी का सेवन कराने से तथा शरीर पर मर्दन करने से ग्रहबाधा का भय नहीं उत्पन्न होता और सब प्रकार की ग्रहपीडा दूर होजाती है।

चन्दनादितैल।

अगर, कमलगट्टा, कुटकी, केशर, खस, छोटी इलायची, जटामासी, तेजपात, दारुहल्दी, दालचीनी, नागकेशर, नागरमोथा, मजीठ, मुलहठी, लवङ्ग, शिला-जीत, शीतलचीनी, श्वेतचन्दन, सखिन और हल्दी दो दो तोले। काले तिल का तैल दो सेर। गाय का दूध चार सेर। केशर और शिलाजीत के अतिरिक्त समस्त औषधियों को महीन कूटकर पानी के साथ सिल पर पीस कल्क बना, फिर कल्क और दूध तैल में मिलाकर मन्द आंच से पचावे। जब पानी जलने पर आजाय तब उसमें एक तोला रतनजोत का चूर्ण और केशर को थोड़े जल में घोट कर मिलादे तथा सिद्ध होजाने पर उतार कर छानले। इस तैल का मर्दन करने से बालकों का सौरी रोग (जमुआ) आराम होता है और जन्मकाल से इसका निरन्तर मर्दन कराने से ग्रहबाधा नहीं उत्पन्न होती। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि सौरी रोग के लिये यह तैल अद्वितीय महौषधि है। हमारे एक मित्र के पांच बालक जन्म से बारहवें दिन के भीतर ग्रहबाधा से नष्ट हुए। छठवीं बार बालकोत्पत्ति का समय उपस्थित होने पर अपनी विपत्कथा उन्होंने हमसे कही। हमने इसी तैलको जन्म काल से बालक को मर्दन कराने की सम्मति दी और उन्होंने वैसाही किया, किंतु उसको सौरीरोग हुआ

ही नहीं। अब वह बालक बीस वर्ष की अवस्था को प्राप्त है। सौरीरोग के सिवा इससे जीर्णज्वर, मूर्छा, हौलदिली, उन्माद, और दिमाग़ की गरमी दूर होती हैं जिनके बालकों को जमुआ की शिकायत हो उन्हें इस तैल का निरन्तर मर्दन कराना नितान्त आवश्यक है।

मूत्राष्टक तैल।

ऊँट, गदहा, गाय, घोड़ा, बकरी, भेड़, भैंस और हाथी का मूत्र आध आध सेर। तिलका तैल एक सेर सब को कड़ाही में मन्द आंच से पचावे और तैलमात्र रह जाने पर उतार कर छानले। बालकों के शरीर पर इस तैल का मर्दन करने से भूत प्रेतादि की बाधा निर्मूल होजाती हैं।

स्नानार्थ कषाय।

नीब की छाल, करुणा की छाल, विष्णुकान्ता, ब्राह्मी और सोनापाठा की छाल के काढ़े से बालकों को यथा समय स्नान कराकर फूल, भण्डी, नैवेद्य, हवन और जपादि से ग्रहों की सविधि शांति बलिदान करने से बालकों की रक्षा होती है, किंतु असाध्य ग्रहयोगों में किसी भी उपाय से सफलता नहीं होती।

बालगृहनिवारक धूप।

(१) घोड़े का नख, नीबकी पत्ती, बच, भोजपत्र, मूलीकीजड़ और सरसों बराबर भाग कूटकर उसमें घी मिला

बालकों के समीप धूनी देने से समस्त ग्रहदोश शांत होते हैं ।

(२) ककड़ासिंगी, कालीमिर्च, तेजबल, दालचीनी नीब की पत्ती, बकरी के रोम, बच, मधु, लहशुन, सरसों, सांप की केंचुली और हींग की धूनी देने से बालकों की ग्रहबाधा और अधिक रोना दूर होता है ।

(३) इन्द्रयव, उड़द, छछुन्दर की बीट, बेलपत्र सिरस की पत्ती और हल्दी कूटकर उसमें घी मलकर धूनी देने से बालकों की ग्रहपीड़ा तथा ज्वरादि रोग नष्ट होते हैं ।

(४) कुट, गूगल, नीब की पत्ती, बच, भेड़ के रोम और हाथी का नख समान भाग कूट कर उसमें घी—मधु मिलाकर धूनी करने से बालकों को ग्रहबाधा तथा रोगादि का भय नहीं उत्पन्न होता ।

(५) अपामार्ग की पत्ती, कुत्ते का शुष्कमल, कुटकी, गोपुच्छ का बाल, गौके रोम, गौ के सींग, जौ, देवदार, धूप, नीब की पत्ती, बकरी के रोम, बनभांटा, बहेड़ा, बिनौला, भटकैया, मैनफल, सरसों, सांप की केंचुली और हींग को कूट कर बकरे के मूत्र में भिगो कर घाम में सुखा डाले, फिर उसमें घी मसल कर रखले । बालकोंके समीप इसकी धूनी करने से समस्त ग्रहदोष दूर होजाते हैं ।

समाप्त

कुमार कल्याणरस ।

कामलामतिसारञ्च कृशतां वहि वैकृतिम् ।
एषःकुमार कल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः ॥
सुन्दर, भैषज्य

कुमार कल्याण रस—इसके सेवन से बालकों का ज्वर, श्वास वमन, कामला, अतिसार, मंदाग्नि, निर्बलता आदि दूर होते हैं। तथा परिगर्भक (गर्भ के समयके) समस्त रोग भी इसके सेवन से नष्ट होते हैं। जिस समय बालक को भयानक रोग हो और अनेक औषधियां सेवन करा चुकने पर भी लाभ न हुआ हो तो इसका सेवन आश्चर्यफलदायक होता है। अनुपान—माताका दूध या मधु, ऊपरसे बालरोगान्तकारिष्ट माशे ६ थोड़े से पानी में मिला कर पिलाने से विशेष लाभ होता है। मात्रा-एक एक वटी। प्रातः सायङ्काल या आवश्यक समय पर। मू०१ माशे २॥)

कीटमर्द रस ।

चूर्णयेन्मधुना मिश्र निष्कैकं क्रिमि जित्भवेत् ।
कीटमर्दो रसोनाम मुस्त क्वाथं पिवेदनु ।
भैषज्य, सुन्दर

कीटमर्दरस—यह उदरमें होनेवाले सब प्रकार के कीट(क्रमि) को नष्ट करनेके लिये प्रसिद्ध और अनुभूत औषधि है। बच्चों के चुनचुना तथा दस्त के साथ आने वाले कीट सब ही इसके सेवन से दूर होते है। अनुपान—शहद में मिलाकर चाटना चाहिए और ऊपरसे मोथा क्वाथ पिलाना चाहिए। समय—प्रातः और सायङ्काल। मात्रा-एक रत्ती से १माशे पर्यन्त मू०१तो०।=)

बालामृतघुटी।

अर्थात्

बालरोगान्तकारिष्टः

शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कास श्वास वमी हरम्।
कासंच विविधंचैव सर्वरोगं निहन्तिच ॥१॥

—धन्वन्तरि।

बालरोगान्तकारिष्ट—अर्थात् बालामृतघुटी। हमने इस घुटी को आयुर्वेद में वर्णित बालकों की रक्षा करने वाली सौम्य औषधियों से तैयार किया है। इसके सेवन करने वाले बालक कभी रोगी नहीं होते किंतु हृष्ट पुष्ट होजाते हैं। बालकों को बलवान् बनाने को अति उत्तम औषधि है। रोगी बालकों के लिये तो संजीवनी है। इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे पीले दस्त, अजीर्ण, पेटका दर्द, अफरा, दस्त में कीड़ा पड़जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी, कफ, खांसी, पसलियां चलना, दूध पटकना, चौंकपड़ना, दांत निकलने के समय के समस्त रोग नष्ट हो शरीर मोटा ताज़ा होजाता है परीक्षा प्रार्थनीय है। सेवन विधि—मात्रा३ माशेसे १ तोला तक जल में मिलाकर। प्रातः और सायंकाल। मूल्य ४ औंस ॥–)

वैद्य बांके लाल गुप्त
धन्वन्तरि औषधालय
पो० विजयगढ़ जिला अलीगढ़

अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन से स्वर्णपदक प्राप्त और
भारतीय वैद्य सेवासमिति से सार्टीफिकेट प्राप्त
युक्त प्रांतीय प्रथम वैद्य सम्मेलन द्वारा
निर्धारित प्रस्तावानुकूल अनेक
वैद्य वैद्यराजों द्वारा
प्रशंसित

—*—

श्रीधन्वन्तरि—कार्य्यालय विजयगढ़
के कार्य्य विभाग का

दिग्दर्शन

संस्थापक-

स्वर्गीय लाला नारायणदास राधावल्लभजी वैद्यराज

कार्यसंचालक-

वैद्यभास्कर बांकेलाल गुप्त श्रीधन्वन्तरि औषधालय
पोष्ट विजयगढ़ जि० अलीगढ़ ब्राँच माली वाड़ा देहली
पसरट्टा बाजार हाथरस नदरईदरवाजा कासगंज.
स्टेशन का पता-रती का नगला बी०बी०एण्डसी०आई० रेलवे
तार का पता-"धन्वन्तरि" रती का नगला।

श्रीधन्वन्तरि कार्य्यालय का उद्देश्य

(१) आयुर्वेदीय शास्त्रीय औषधियों को शास्त्रीय प्रक्रियानुसार बनाकर वैद्य हकीम और धर्मार्थ औषधालय के स्वामियों व सर्वसाधारण को स्वल्प मूल्य में बेचने के लिये बृहत् औषधालय स्थापित करना (२) आयुर्वेदीय पत्र निकाल वैद्यों में जागृति उत्पन्न करना (३) आयुर्वेदीय प्राचीन और नवीन शैली से लिखी हुई पुस्तकें प्रकाशित करना (४) रोगियों को चिकित्सा के लिये आरोग्य भवन स्थापित करना (५) धनिकों को उत्साह दिलाकर उनसे आयुर्वेदीय पाठशालायें और दातव्य औषधालय खुलवाना (६) भिन्न २ प्रांतोंसे वनौषधियाँ मंगाकर संग्रह करना और वैद्यों को स्वल्प मूल्य में भेजना।

उपरोक्त उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये निम्नलिखित विभाग स्थापित हैं

मासिक पत्र विभाग का पूरा पता श्री धन्वन्तरि कार्य्यालय

पुस्तकालय	"	"	"	पुस्तकालय
प्रेसविभाग	"	"	"	प्रेस
औषधि विभाग	"	"	"	औषधालय
चिकित्सालय	"	"	"	चिकित्सालय
वनौषधि विभाग	"	"	"	वनौषधालय

श्री धन्वन्तरि कार्य्यालय—

इस विभाग से पहले "आरोग्यसिंधु" नामक एक आयुर्वेदीय मासिकपत्र स्व० वैद्यराज राधावल्लभजीके सम्पादकत्व

में दो वर्ष निरंतर प्रकाशित होता रहा था कई एक कारणों से उसके बाद श्रीधन्वन्तरि नामक मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था। पहला आरोग्यसिंधु कसापत्र था। इसके लिये यह कह सकते हैं कि उसकी फाइल मंगाकर देखिये जिसका मू० १) है पोस्ट व्यय प्रथक् है तब आप ही कह देंगे कि पत्र आयुर्वेदीय वैद्यक पत्रों में से एक ही पत्र था उसकी प्रशंसा अनेक विद्वान् वैद्यों और सहयोगियों ने की थी अब जो धन्वन्तरि सचित्र मासिक पत्र निकल रहा है वह कैसा है? इस प्रश्न के उत्तर में अधिक न लिख सिर्फ यही कहते हैं कि इसके समान आज तक आयुर्वेदीय पत्र निकलाही नहीं यह सरस्वती माधुरी चाइं आदि प्रसिद्ध साहित्य पत्रिकाओं के समार आकार प्रकार और उच्च श्रेणी के महत्व पूर्ण लेखों एवं अनेक रंगीन तथा सादे चित्रों से युक्त रहता है जिस पर भी उपहार में वार्षिक मू०४) के चार रुपये मू० की ही उत्तमोत्तम पुस्तकें मुफ्त भेट करता है। नमूना ॥) की टिकट भेजियेगा देखिये।

२—श्रीधन्वन्तरि पुस्तकालय

विज्ञ वैद्यों से यह बात छिपी नहीं है कि वर्तमान समय में आयुर्वेद साहित्य बड़ी गिरी दशा में है जिस विद्या का साहित्यरूपी कोष पूर्णनहीं होता उसकी कभी उन्नति नहीं हो सकती आयुर्वेदीय चिकित्सा को उच्चशिखर पर बैठाने की कामना करने वाले महानुभावों को पहले इस के साहित्य को पुष्ट करना चाहिये हिंदी भाषा में आयुर्वेद साहित्य के अनेक अनुपम रत्न प्रकाशितनहीं हुये और नइनकी वा टिकामें नयेर निबंधरूपी पुष्प ही खिलते है इसही विचार को लेकर हमने अपने कार्यालय में साहित्य पुस्तक विभागभी रक्खा था और उसका उद्देश था कि आयुर्वेदीय नवीन शैलीसे लिखी उत्त-

वैद्य सम्मेलन द्वारा रौप्यपदक भी प्रदान किया गया है हम आशा करते हैं कि आपको यदि वनौषधि की आवश्यकता होगी तो इस कार्य्यालय से मंगावेंगे और जो औषधियां आपके यहां पैदा होती हैं, उनका सूचीपत्र और भाव लिख भेजेंगे। विशेष जानने के लिये वनौषधियों का सूचीपत्र मुफ्त मंगा देखिये।

५—श्री धन्वन्तरि—औषधालयः—

इस विभाग में सर्व प्रकार की आयुर्वेदीय औषधियां शास्त्रीय प्रक्रिया नुसार बनती हैं। हमने जब इस विभाग को स्थापित किया था तब ही अपने उद्देश शास्त्रीय औषधियां स्वल्प मूल्य में सर्वसाधारण को देने का निश्चय किया था तथा औषधियां बहुत उच्च पद्धति, हाईस्टेन्डर्ड, के ऊपर बनाई जांय—इसका ध्यान रक्खा था। यही कारण है इस कार्य्यालय को भारतवर्ष के प्रायः सबही वैद्य प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं और सहयोग रखते हैं इस कार्य्यालय की वनो औषधियों में निम्न लिखित विशेषतायें हैं।

औषधियां बनाने में सब वस्तु उच्च श्रेणी की ली जाती हैं वनस्पतियां गली, सड़ी, पुरानी गुण हीन नकली और सस्ते भाव की न लेकर उत्तम नवीन औषधियां लीजाती हैं इस हेतु हमने वनौषधि विभाग स्थापित किया है जिसमें अनेक प्रान्तों से वनौषधियां मंगा कर संग्रह की जाती हैं कारण बाजार में औषधियां सड़ी गली पुरानी गुण हीन मिलती हैं।

(२) औषधियां बनाते समय परिश्रम और मूल्य का ध्यान न रख गुणशाली बने इसका ध्यान रक्खा जाता है।

(३) ग्रंथों के पाठ में लिखी हुई औषधि आदि वस्तु जहां तक मिल सकती हैं वहां तक प्रतिनिधि का व्यवहार नहीं किया जाता।

(४) शास्त्रों में लिखे अनुसार हीन वीर्य औषधि होने पर व्यवहार में न लाकर फेंकदी जाती है।

(५) जो औषधियां पुरानी होने पर विशेष लाभप्रद हो जाती हैं उन्हें हम अधिक परिमाण में बनाते हैं उल्लिखित विशेषताओंके कारण ही इस कार्य्यालय की प्रसिद्धि औरउन्नति हुई है इस विभाग का कार्य्य बढ़ जाने से दो विभाग किये गये हैं (प्रथम खंड) खेरीज भाव जिससे सर्व साधारण को उचित दाम में औषधियां मिलती हैं जिसका सूचीपत्र प्रथक छपा है देखिये। तथा द्वितीय खंड थोक भाव(व्योपारी)ना भाव का जिस से डाक्टर हकीम और वैद्य लोग आयुर्वेदीय शास्त्रीय औषधियां आधा मूल्य में खरीद सकते हैं और अपने औषधालय से वेच लाभ उठा सकते हैं जो औषधियां कठिन परिश्रम और बहुत साधन व्यय करने पर भी बहुत समय में बनती हैं उन्हें वे इस औषधालय से थोड़ा नफादे खरीद सकते हैं जो वैद्य औषधियों को तैयार नहीं कर सकते या बहुत सी औषधियों के बनाने में रुपया नहीं लगा सकते वे हमारे औषधालय से सर्व प्रकार की थोड़ी २ औषधियां खरीद अपना कार्य्य चला सकते हैं। जो वैद्य ऐसे स्थानों में रहते हैं जहाँ औषधियां बनाने में परिश्रम के साथ २ खर्चा भी अधिक पड़ता है वे हमारे यहां से इकट्ठी औषधि मंगा कर अपना औषधालय चला सकते हैं। हमारे यहां की औषधियां शास्त्रीय प्रक्रियानुसार विश्वसनीय बनती है और विश्वास के लिये

यह कह देना पर्याप्त होगा कि अखिल भारतवर्षीय वैद्य सेवा समिति ने सार्टीफिकेट हमारे यहां की औषधियों की परीक्षा कर प्रदान किया है फिर भी हम प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि हमारे यहां की औषधियां ठीक प्रक्रिया से न बनी हों या आपके पसंद न आवें तो हमको समझा कर और उचित परामर्श देकर तथा जो त्रुटि हो उन्हें लिखकर आप वापिस कर सकते हैं हम उन्हें सहर्ष वापिस लेंगे तथा आपके परामर्श और लिखी त्रुटियां पर ध्यान देंगे। आशा है कि वैद्य महानुभाव इस प्रबन्ध से प्रसन्न होंगे और थोक भावका सूचीपत्र मुफ्त मंगा कर समुचित लाभ उठावेंगे।

धन्वन्तरि प्रेस–

इस विभाग से ग्राहकों को सर्व प्रकार की छपाई रंगीन व सादी तथा चित्रों वाली उत्तम और खूबसूरत करदी जाती है। छपाई के लिये अनेक प्रकार के टाइप बोर्डर ब्लौक मगाकर रक्खे गये हैं। छपाई का नमूना यही है। यह इसी प्रेस का छपा हुआ है। एक बार कोई काम भेज परीक्षा कीजिये छपाई समय पर सस्ते भाव में करदी जाती है।

शाखाएँ–

धन्वन्तरि औषधालय का हैडआफिस तथा कारखाना— विजयगढ़ जिला अलीगढ़

ब्रांचऔफिसनम्बर १ नदरईदरवाजा कासगंज

ब्रांच औफिस नम्बर २ पसरट्टा बाजार हाथरस

ब्रांच औफिस नम्बर ३ मालीवाड़ा देहली।

निवेदक–वैद्यभास्कर बांकेलालगुप्त सम्पादक धन्वन्तरि, जनरल मेनेजर तथा चिकित्सक प्रधान कार्यालय विजयगढ़

[illegible] पुस्तकें

पथ्यादर्श	|||)
रसायन संहिता	|||=)
रक्त	|)
मरणोन्मुखी आर्य चिकित्सा	|)
प्लेग	|)
प्राकृत ज्वर	||
नाड़ी सिद्धांत	|=)
रोग परिचय	||)
वैद्यराजजी कीजीवनी	=)
सूर्यरश्मि चिकित्सा	|||)
कुचिमार तन्त्रम्	|=)
अमृतसागर	२||)
मदनिग्रह (संस्कृत	४||)
पथ्यापथ्य (भाषाटीका	||)
आयुर्वेद मीमांसा	|||)
इलाजुलगुर्बा	१||)
रसराज महोदधि	|||=)
भारतीय भोजन	|||)
शरीर रचना	|)
तिल्ली-सीहा पिलही	|)
मकरध्वज चन्द्रोदय	=)
वेदों में वैद्यक ज्ञान	=)
पञ्चकर्म विवेचन	|=)
ओज क्या है	-)
दोष विज्ञान	=)||
आरोग्यसिंधु मासिक पत्र की फाइल	२)
दशमूल	||)
परीक्षित प्रयोग	|=)
आरोग्य विधान (भारत में मंदाग्नि)	१||)
योगरत्नाकर (संस्कृत) पूना	५)
निघण्टुशिरोमणि (संस्कृत)	१)
फुफ्फुस (निमोनियां) चिकित्सा	१||)
आरोग्य साधन	|-)

श्री धन्वन्तरि औषधालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

मकरध्वजवटी

अर्थात् निराश-बन्धु

रोगा क्रान्ताः निराशाये निर्बला वीर्य दोपिकाः ।
तेषां निराश बंधुर्हि बन्धुतुल्यो गदा पहः ॥

आयुर्वेदीय चिकित्सा में सबसे प्रसिद्ध और मूल्यवान् औषधि मकरध्वज अर्थात् चन्द्रोदय है यह गोलियां ऐसी अनुपम रसायन द्वारा बनाई जाती हैं इसके सेवनसे सब प्रकार के प्रमेह, वीर्यका पतलापन मूत्रके साथ वीर्य आजाना, दुर्बलता, नपुंसकता स्तम्भन-शक्तिका ह्रास, आंखों के सामने अंधेरा होना, कमरका दर्द दस्तका साफ न होना किसी कामको तबियत न करना, नसोंकी कमजोरी स्त्रियोंका प्रदर बहुमूत्र मूत्रकृच्छ्र, सोजाक मूत्र नलीका दर्द आदि वीर्य और रज विकार दूर होते हैं जो लोग चन्द्रोदय के गुणों को जानते हैं वे इन गोलियों के प्रभाव में संदेह नहीं कर सकते अनुपानभेदोंसे यह अनेक रोगोंको दूर कर सकती है प्रमेह आदि वीर्य विकारके साथ होनेवाली, खांसी जुकाम, सर्दी, कमरका दर्द, मंदाग्नि मलावरोध आदि व्याधियां भी दूर होती हैं, क्षुधा बढ़ती है शरीर हृष्ट पुष्ट होता है जो सज्जन अनेक औषधियां सेवन कर हताश हो गये हों, जिनका विश्वास औषधियोंसे उठ गया हो उन निराश रोगियोंको यह औषधि बन्धुतुल्य सुख देती है। मूल्य १ शीशी ॥=)

बांके लाल गुप्त
धन्वन्तरि औषधालय
पो० विजयगढ़ जिला अलीगढ़

कौमारभृत्य

अथवा

बालचिकित्सा

लेखक—

विवेचक

कौमारभृत्यं

अथवा बालचिकित्सा ।

" अथ बालोपचारेण बालं योषिदुपाचरेत् । "

* * *

" यथादोषं यथारोगं यथोद्रेकं यथाशयम् ।
विभज्य देशकालादींस्तत्र योज्यं भिषग्जितम् ॥ "

श्रीवाग्भटः ।

प्रकाशक—

जगद्भास्कर औषधालय

नयागञ्ज—कानपुर

मुद्रक—

लाला मन्नालाल अग्रवाल

श्री लक्ष्मी प्रेस नयागञ्ज,—कानपुर ।

आरंभिक वक्तव्य ।

जब आयुर्वेद अष्टाङ्ग पूर्ण था, तब सभी अङ्गों की संहितायें मौजूद थीं । अब जब सब कायापलट होचुका है तब उसकी प्राचीन संहिताओं का भी पता नहीं । पिछले समय में कौमारभृत्य के ज्ञाता जीवकाचार्य होगये हैं, पर अब उनके इधर उधर टूटे फूटे वाक्यमात्र मिल रहे हैं । वर्तमान चरक आदि में भी जो कुछ मिल रहा है वह भी अपूर्ण है। फिर उस से संस्कृतज्ञों के सिवा कोई लाभ नहीं उठा सकता ।

प्रस्तुत पुस्तक केवल इसीलिये लिखी गई है कि इस विषय से अनभिज्ञ लोग थोड़ासा ज्ञान प्राप्त करें और अभिज्ञ लोग उत्साह पाकर इस विषय को और परिवर्द्धित करें। क्यों कि इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है सब संक्षिप्त रूप से लिखा गया है, और जो कुछ लिखा गया है स्वतंत्र भाव से लिखा गया है। संभव है कि लेखक की अनभिज्ञता के कारण इस में त्रुटियाँ हों, पर अब उनके संशोधन का यही एकमात्र उपाय है कि विशेषज्ञों को जो कुछ त्रुटियाँ मिलें उन्हें प्रकाशक को लिख भेजें। जिस में उनका शीघ्रही निराकरण होजाय ।

निवेदक—

विवेचक ।

निवेदन।

पाठकों की सेवामें यह छोटीसी पुस्तक अर्पित की जाती है। इस में कोई गुण नहीं, पर जब तक उन्हें वर्तमान समय के उपयुक्त कोई अन्य बड़ा ग्रंथ न मिले तब तक इसे अपनावें। इस पुस्तक के प्रकाशन में बहुत विघ्न उपस्थित हुये हैं। कागज की दुर्लभता इन में सबसे अग्रगण्य है। इसी से पुस्तक भर में २।३ प्रकार का कागज आप को दृष्टिगोचर होगा। प्रेस की असावधानी से कुछ अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। पाठक कृपया उन्हें सुधारलें। अगले संस्करण में इनके सुधार देनेका यत्न किया जायगा।

इसमें कहीं कहीं अंग्रेजी माप का भी जिक्र आया है। जैसे—सेंटिग्रेड या फारेनहीट। ये दोनों ही भिन्न हैं। इन से अलग अलग गरमी नापी जाती है। इनकी नपाई में भी अंतर है। १ दर्जा सटीग्रेड ९ बटा ५ फारेनहीट के बराबर होता है।

अधिक श्रावण कृष्ण १२
सम्वत् १९७७ वि०

विनीत—

प्रकाशक

कौमारभृत्य

की

विषय-सूची।

आरम्भ	१
श्वास चलाना	२
गला करना	५
सुश्रुत का प्रयोग	६
स्नान कराना	७
नालच्छेदन	८
नालच्छेदन के बाद	९
नाल गिरने का समय	११
बालक का स्तन-पान	११
स्तन-पान का समय	१३
प्राकृतिक पेय	१४
धात्री-परीक्षा	१६
दूध की परीक्षा	१९
धात्री का आरोग्य	२१
धात्री के नियम	२२
दूध के विषय में	२३
दूध पिलाने की विधि	२७
आहार-परिवर्तन	३१
जन्मघूंटी	३२

फलाहार	३३
बालकों की स्वास्थ्यरक्षा	३५
गरमजल के स्नान-गुण	३६
मलमूत्र-शुद्धि	३८
वस्त्र पहिनाना	३८
निद्रा	४०
सोने की विधि	४१
खुली वायु	४४
बालकों को चलने की शिक्षा	४६
दाँत आने का समय	४७
टीका लगवाना	५१
बालकों की मृत्युसंख्या	५२
रोग-परीक्षा	५४
शुश्रूषा	६५
पथ्यापथ्य	६६
संक्षिप्त निदान और चिकित्सा	६७

सद्योजात रोग—

अकालजन्म	६७
नाभि-रोग	६८
अभिष्यन्द	७०
धनुष्टङ्कार	७१
रक्तातिसार	७२
निर्माणविकार	७३

संक्रामक रोग–

गुड़िका-ज्वर	७४
रक्तज्वर (लाल बुखार)	७७
जर्मनी की माता	७७
साधारण वसंत	७८
टीके की माता	७८
वसंत रोग	८०
मूलशोथ	९०
मोतीझरा	९१
मास्तिष्क ज्वर	९३
गलौघ (डिपथीरिया)	९४
शुष्क कास (कुकुर खांसी)	९६
इन्फ्लुएञ्जा	९८
पैतृक उपदंश	१००
बालशोष	१०२

असंक्रामक रोग–

साधारण वर्षाज्वर	१०८
अस्थिविकृति	१०९
मेदोवृद्धि	१११
रक्ताल्पता	११२
मुखपाक (छाले)	११२
दन्तोद्भेद-रोग	११४
गल-रोग	११६
पाचन-दोष	११७

वमन	११७
कब्ज	११६
उदरशूल	१२०
पांक्राशय का घाव ...	१२०
अतिसार	१२१
विषूचिका	१२३
कृमिरोग	१२४
काँच निकलना ...	१२६
पाण्डु रोग	१२६
यकृद्विकार	१२७
उदर-रोग	१२८
प्लीहा	१२६
हृद्रोग	१३०
सर्दी या नासास्राव ...	१३१
नासावरोध	१३२
नकसीर	१३२
नासार्श (नकुड़ा) ...	१३३
कण्ठावरोध	१३४
कासश्वास	१३५
कर्कोटक (न्यूमोनिया) ...	१३८
पँसुली	१३६
फुप्फुसकला-विकार ...	१४०
द्रुताक्षेप	१४२
खिंचाव	१४२
अपस्मार (मृगी) ...	१४४

अपतंत्रक (हिस्टीरिया) १४५
निशाभीति १४६
ताण्डव-वात १४६
जड़ता १४७
पक्षाघात १४८
मस्तिष्क-विकार १४९
मूत्र-विकार १५१
रक्तमूत्र १५२
मूत्रस्तम्भ १५३
पूयमूत्र १५३
लसीकास्राव और चूर्णमेह १५४
मूत्रोदर १५४
मूत्राश्मरी १५५
मूत्रातिसार या स्वप्नमूत्र १५६
योनिदोष १५७
शिरदर्द १५८
नेत्ररोग १५९
कर्ण रोग १६०
शीतपित्त १६०
अन्हौरी १६१
खुजली १६१
दाद १६२
छाले १६२
फोड़े, फुन्सी १६३
चर्मदोष १६३
अर्बुद १६४

शुद्धिपत्रम् ।

अशुद्ध	पृष्ठ-पंक्ति	शुद्ध
(धात्री विद्या)	१—८	(कौमारभृत्य)
द्वाव	४—२	दबाव
९४ सेंटिग्रेड	८—८	३४ सेंटिग्रेड
नाल क	९—१०	नाल को
छुट	१५—२	छूटे
यह	१६—१०	वह
घाय का	२१—१	धाय को
किये	२३—१३	लिये
जैसे	२४—१३	जैसा
षेट	२७—१६	पेट
बालक को	३१—१८	बालक के लिये
चलते भी	३४—११	चलते हुये भी
प्रायी	३४—१२	प्रायः
पचाभः	३४—१३	पचाभी
स्वाध्य	३७—१८-१९	स्वास्थ्य
स्वाध्य	४०—१०-१३	स्वास्थ्य
यह	४०—१८	वह
स्वाध्य	४३—१३	स्वास्थ्य
आजू बाजू	४८—५	आजू बाजू
दवकर	५७—१७	दबकर
अजनवी	५९—६	अजनबी
हृतिपण्ड	६०—१२	हृत्पिण्ड
—में होता	६३—५	—में विशेष होता
कौन कन	६३—१	कौन कौन
जैसा		कैसा

डिग्री ही	६८—१०	डिग्री फारेनहीट ही
जल्न श्रंत्र	६८—११	जनन-यंत्र
पहुँचाया	६८—१६	पहुँचाया
इस प्रकार	६८—१६	इस समय
होसाने पर	७०—२०	होजाने पर
जीवाण	७१—१२	जीवाणु
कीटाण	७४—७	कीटाणु
१००-४	७५—५	१००.४
भर पैट	७६—१६	भरपेट
उपप्रव	७६—१६	उपद्रव
इस-वात	८१—३	-इस वात
छूत ही कारण	८१—१५	छूत ही के कारण
सूसन	८५—१६	सूजन
विज्ञान-सस्मत	८६—१५	विज्ञान सम्मत
रत्ती एक	८८—६	रत्ती तक
घटता	६१—१६	उतरता
मुखसे	६५—१३	मुख में
हवाश	६५—१४	हवाल
पट	१०४—२०	पेट
कर देला	१०६—२	करना
स्पयं भी	११४—७	स्वयं भी
यह कहता	११४—१४	वही कहता
ससूढे	११५—१०	मसूढे
फुन्सुस	१२०—१५	फुप्फुस
विकसा	१३२—१८	विकास
पर वे कुछ	१४७—६	पर वे कुछ
अनु...	१५२—१०	अनुसार
अभाव	१५२—१४	प्रभाव

कौमारभृत्य।

आयुर्वेदशिक्षा में कौमारभृत्य बहुत ही अमूल्य और अत्यावश्यक वस्तु है। प्राचीन काल में इस विषय को स्वतन्त्र ही रखकर आयुर्वेद का एक गण्य मान्य अङ्ग समझा गया था। धात्रीविद्या उसी कौमारभृत्य का आरम्भिक अंश है। बालक का जन्म होते ही इस (धात्रीविद्या) का आरम्भ होता है। अतएव सांसारिक जीवन में; आयुर्वेद के अधिकृत चिकित्सा-योग्य पुरुष में आयुर्वैदिक चिकित्सा सम्बन्ध यहीं से आरम्भ होता है।

बालक के भूमिस्थ होने पर-गर्भाशय से निकलने पर धात्री का सबसे पहिला कर्त्तव्य है कि वह बालक के सजीव निर्जीव समझने की चेष्टा करे। सभी बालक गर्भाशय में रहते समय अपने जीवन के मुख्य अंश श्वास-प्रश्वास-क्रिया को मुख से नहीं सम्पादन करते हैं। इस लिये पैदा होते ही बालक का श्वास चलाना या उसे रुलाना धात्री का पहिला कर्त्तव्य है। धात्री (दाई) को अपनी साफ अँगुली से-जिसका नख

काटकर इतना साफ कर दिया गया हो कि, उससे वालक के गले में जरा भी रगड़ न लगे–मुख का कफ कण्ठ तक साफ कर देना चाहिये। यह कफ चिकना और चिपकने वाले लासे की भाँति का निकलता है। उसके निकलते ही वालक श्वास लेना आरम्भ करता है, अथवा वह रोता है। इस कृत्य से उस वालक के फेफड़ों का सङ्कोच विकास होने लगता और नाभि-नाल के द्वारा श्वास लेना बन्द हो जाता है।

कभी कभी वालक की यह स्वाभाविक श्वासक्रिया सहज में नहीं आरम्भ होती है, अतः उसके लिये अनेक क्रियायें करनी पड़ती है। जैसे—

१—वालक के छाती, पीठ, पैर आदि में अँगुली गड़ोना या चुटकी भरना। सजीव वालक इससे रोने लगता है और उसकी श्वासक्रिया आरम्भ होती है।

२—कभी कभी वालक के मुंहपर ठंढे पानी के छींटे मारने से वह सुबकी लेने लगता है और इस प्रकार उसका श्वास ठीक आने लगता है।

३—कभी कभी वालक के हाथ, पैर, छाती और पीठ सेंकने पड़ते हैं। इसके लिये दाई को अपने हाथ आगपर सेंक-कर वालक के हाथ पैरों में लगाना चाहिये। इतनाही सेंक पर्याप्त होगा। सेंक करके एक मुलायम कपड़े से वालक

को ढक देना चाहिये। ढकते समय बालक का मुंह खुला रखना चाहिये, जिससे गरमाई आकर उसकी आरम्भ होनेवाली श्वासक्रिया बन्द न हो जाय। सभी श्वास लाने वाली क्रियाओं के करते समय दाई को बालक की नाल नाड़ीपर भी ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि नाल-नाड़ी न चलने से ये सभी क्रिया व्यर्थ होजाती हैं।

–ऊपर के उपाय निष्फल होने पर बालक के नाल को उस की नाभि से दो इञ्च (या चार अंगुल) की दूरी पर अच्छे साफ मजबूत डोरे से बाँध दे। इसके बाद उतनीही दूरी पर एक और डोरा बांधकर, दोनों डोरों के बीच से एक साफ कैंची से नाल को काट दें। इस समय नाल को बड़ी साव-धानी पकड़े रहना चाहिये, जिसमें वह किसी प्रकार झट का खाकर बालक की नाभि को नुकसान न पहुंचावे। नाल काटने से पीछे बालक के सिर, गर्दन और पीठ के नीचे बायाँ हाथ और कूलों के पास दूसरा हाथ लगाकर नीम गरम पानीके टब में बालक को एक बार गोता लगवा दे। इस रीति से भी कोई कोई बालक रोकर श्वास लेना आरम्भ करतेहैं। यदि इसप्रकार आधी मिनट तक बालक की श्वासक्रिया आरम्भ न हो तो आधी मिनट तक उसे जल में रखकर निकाल लें और मुंह के बल जमीन पर सुलाकर हाथ से जल्दी जल्दी करवटें बदलावें। इस

क्रिया को एक मिनट में १५ बारतक करना होगा। जमीन के दवाव से वालक के फेफड़े और पेटपर दवाव पाकर भी श्वास चलने लगता है। औंधा सुलाने से उस का भीतरी श्वास बाहर और करवट वदलवाने से वाहरी श्वास भीतर जाने लगता है। अथवा—

५—वालक को सीधा सुलाकर उसकी नासिका को वन्द करदे और उसके मुख में दाई अपना मुख लगाकर (रवड़ के फुंकने की तरह) थोड़ा श्वास भरदे। फिर मुंह हटाकर बालक की छाती पर हाथ की हथेली से थोड़ा सा दवादे जिससे बालक का भीतरी श्वास बाहर निकलने लगे। इस प्रकार जल्दी जल्दी एक मिनटके भीतर १०–१५ वार करना होगा। नासिका को इस प्रकार दवाना चाहिये कि उससे बाहरी श्वास का आना जाना न हो। इस क्रियासे कभी कभी बालक को ठसका लगता है और उससे पीछे धीरे धीरे श्वासक्रिया का आरम्भ होता है।

इस क्रिया का मुख्य अर्थ है श्वास चलाना, वाहरी शुद्ध वायुसे फेफड़ोंका सम्वन्ध स्थापित करना और गल (कण्ठ) शुद्ध करना है। देशी भापा में इसे कोई गला करना और कोई गला पाड़ना भी कहते हैं।

दाई को यह वात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि जव तक वालक ऊपर से बाहरी श्वास नहीं लेने लगता है तव तक

यह नाभि-नाल से ही जीवित रहता है। इसकी मुख्य परीक्षा यह है कि इसके नाभि-नाल में नाड़ी का जैसा धप धप शब्द होता रहता है। इससे जब तक बालक बाहरी श्वास न लेने लगजाय, तब तक उसका नाभि-नाल बाँधना या कैंची छुरी से काटना कदापि उचित नहीं। अथवा नाभि-नाल का धप धप शब्द बन्द हो जाय तब उसे बाँधना और काटना चाहिये।

ऊपर लिखी श्वाससञ्चालक क्रियाओं की सदा सर्वदा नहीं, किसी विशेष अवस्था में ही आवश्यकता होती है। परन्तु प्रत्येक दाईको इन क्रियाओंकी अभिज्ञता बनाये रखनी चाहिये। न मालूम कब इनकी आवश्यकता आ पड़े। बड़े बड़े शहरों के निवासियों, विलासियों और कोमलाङ्गों के घर पैदा होने वाले बालकों के लिये ही इन क्रियाओं के करने का मौका आता है, जो घर परिश्रमशील मिताहारी और सदाचारीहैं उनके बालक कण्ठ का कफ दूर करते ही स्वभाव-सिद्ध श्वासक्रिया से सम्पन्न हो जाते हैं। उनके लिये इन अप्राकृत कृत्रिम क्रियाओं की आवश्यकता ही नहीं होती।

बालक की गलशुद्धि के लिये आयुर्वेद के प्राचीनाचार्य सुश्रुत ने कफघ्न दवायें चटाने का आदेश दिया है, पर काल-क्रम से वह प्रथा एक बार ही उठ गई है। परन्तु गुण देखते उस प्रथा को उठाना भूल का काम है। सुश्रुत ने इस कार्य के लिये चार प्रयोग लिखे हैं, इन प्रयोगों की औषधें मेधावर्धक,

बलवर्धक, कफनाशक और फुफ्फुस की श्वासक्रिया को ठीक करने वाली हैं। हमारी राय में यदि यह प्रयोग उचित समय पर काम में लायें जावें तो बालकों की अधिक मृत्यु का परिमाण भी कम होजाय। इस स्थान पर हम अपने कई बार काम में लाये हुये सुश्रुत के एक प्रयोग को लिखते हैं। आशा है, गुणग्राही सज्जन इसको अवश्य व्यवहार में लावेंगे।

मीठा कूठ ३ मासे — शहद ६ मासे
मीठी बच ३ मासे — घी ३ मासे
सोने के वर्क ६ रत्ती

कूठ और बचको खरल में डालकर खूब बारीक करलो, जिसमें यह काजल जैसे होजायँ। फिर घी और शहद मिलाकर घोटो। बाद में सोने के बारीक वर्क मिलाकर घोट दो। खूब बारीक घोटने से यह कीट जैसा बन जाताहै। कण्ठ साफ करने के बाद बालक को यही अवलेह शहद के द्वारा और भी पतला करके ४ रत्ती के परिमाण में दिन में एक बार चटादें। यह क्रम जब तक बालक एक मास का न हो बराबर जारी रक्खें। यह दवा एक बार बनाकर सुरक्षित रखने से १ सप्ताह तक काम देती है। यदि कोई विशेष दिन तक रखना चाहें तो कूठ, बच और सोनेके वर्कोंको दो दिनतक खूब बारीक घुटाई करके रख छोड़ें। जब आवश्यकता हो इसे एक रत्ती प्रमाण लेकर दो रत्ती शहद और एक रत्ती घी मिलाकर चटा दियाकरें।

नाल काटनेके वाद दाई का मुख्य कर्तव्य वालक को स्नान कराना है। हमारे यहां दाई अपने पैरों को नङ्गा करके पसार लेती हैं और उन पर वालक को पट (औंधे मुंह) डालकर स्नान कराती हैं। पर यह प्रथा परिवर्त्तित होने योग्य है। स्नान के लिये वालक का मुख ऊपर को रखना और स्नान के जल से उसके मुखको वचाना विशेष आवश्यक है। स्नान के लिये बहुत हलका गरम जल, एक वड़ा कूंडा या टव, टोंटी-दार गड़वा सावुन या तेल होना जरूरी है। साथ ही वालक को पोंछने के लिये एक साफ कपड़ा, एक गुल गुली विछीहुई गद्दी और वालक को लपेटने के लिये फलालैन का टुकड़ा तैयार रहना चाहिये।

जन्म के समय वालक के शरीर पर एक लसीला झिल्ली सा पदार्थ लगा रहता है जो तेल में या वेसलीन में मिलजाता है। इसीकारण वालकके शरीर पर तेल लगाकर स्नान कराना आवश्यक है। डाक्टर इस अवसर पर वालक के शरीर पर सावुन लगाकर वालक को नहलाते हैं। स्नान के समय वालक को वड़े कूंडे या टव के भरे पानी में गले पर्यन्त डुवोकर उसके शरीर पर लगे हुये सावुन या तेल को धो देना चाहिये। यह कार्य टव के विना भी कर सकते हैं। वालक को टोंटीदार गड़वे से पानी डालकर स्नान करा सकते हैं। टोंटी के पानी की धार वालक पर बहुत ऊंचे से न डालना चाहिये। पर इस

स्नान में समय अधिक लगता है और इस स्नान में अधिक समय लगना उचित भी नहीं है। पानी की गरमाहट के विषय में भी धात्री को विशेष संभाल रखने की आवश्यकता है। डाक्टरी में इस जल की गरमाहट ३४ सेंटिग्रेड अच्छी बतलाते हैं। यह नाप "बाथ थर्मामीटर" से जानी जाती है। गरम पानी में थर्मामीटर का पारे वाला अंश डालकर हिलाया जाताहै तब यह पारा जलकी गरमी से ऊपर चढ़ने लगता है। जब थर्मामीटर का पारा ३४ सेंटिग्रेड पर पहुंच जाय तब उस जल को बालक के स्नानोपयोगी मानते हैं। जहाँ पर जलकी यथार्थ उष्णता का ज्ञान नहीं, वहाँ दाइयाँ जल में अंगुली डालकर या हथेली में जल लेकर उसकी परीक्षा करती हैं। पर उनका यह काम चाहिये जैसा उचित नहीं, क्योंकि बराबर काम धंदा करते रहने से हाथों का चमड़ा इतना कठोर हो जाताहै कि उस से जल की गरमाहट की यथार्थ परीक्षा नहीं हो सकती। ऐसी दशा में जलको एक पतले हलके (गिलास) जैसे बरतन में भरकर गाल पर लगाना। यदि बरतन की गरमाहट मामूली गाल से सह्य मालूम हो तो वह ठीक है, वैसे ही जल से बालक को स्नान कराना।

नाल काटने और बाँधने के लिये एक तेज चाकू या कैंची और रेशम का डोरा चाहिये। बालक के भूमिष्ठ होने पर जब उसका गला साफ कर दिया जाय और बालक श्वास लेने

लगे तब उसके नाल को पकड़कर नाभि से चार पांच अंगुल की दूरी पर उसी रेशमी डोरे से नाल को कसकर बांध दे। उस समय यदि रेशमी डोरा न हो तो खूब साफ़ धुले हुये सफ़ेद डोरे से भी काम लिया जा सकता है। डोरा बांधने के बाद उस बन्धन से एक अंगुल आगे नाल को तेज छुरी चाकू से काट दे। इनके तेज (पैने) और साफ होनेसे नाल शीघ्रता से कट जाताहै और उसमें कुछ खराबी नहीं पैदा होती। काटने पर कुछ गरम पानी से नाल के कटे हुये मुंह को धोदे। नाल काटते, नाल धोते और बच्चेको नहलाकर वस्त्र पहनाते समय नाल पर सदा ध्यान रखना चाहिये। इस समय नाल क किसी प्रकार झटका या खिंचाव पहुंच जाना बालक के लिये रोग का कारण होजाता है। बच्चे के जन्म के समय अपढ़ औरतें कभी कभी रसोई घर के मैले कुचैले तरकारी बनाने के चाकू या हसिया ले दौड़ती हैं, जो इस काम के लिये कभी उपयुक्त नहीं। इस प्रकार के भोंठे हथियारों से पहिले तो नालच्छेद ही सहज में नहीं होता, फिर झटका लगा तो बालक की नाभि खिंच आने तक की नौबत पहुंच जाती है, जिससे नाभिपाक आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार नाल काटने के बाद नाल पर और जहाँ पर वह लगा है उस-नाभिप्रदेश पर बारीक पिसा हुआ थोड़ा संगजराव लगा देना चाहिये।

स्नान कराने के बाद भी बालक को अच्छी प्रकार साफ और मुलायम कपड़े से पोंछकर सफेद कपड़े में-और ऊपर

से फ़लालैन के टुकड़े में लपेटना चाहिये। पोंछते समय बगल और गले का देह का जल तथा पैर की रान अच्छी प्रकार सुखा देना और उस जगह संगजराव लगा देना चाहिये। लपेटने के लिये जो सफ़ेद कपड़ा हो वह ७-८ इञ्च चौड़ा और १ हाथ लम्बा हो। इसी के नीचे एक छोटे (४ इञ्च लम्बे चौड़े) कपड़े में छेद करके बालकके पेटपर रख देना और उस कपड़े के छेद में से नाल को बाहरी तरफ निकाल लेना चाहिये। इससे नाल जल्दी सूखता है और पेट से दबके रिसने नहीं पाता। इसके ऊपर से बालक के पेट और छाती पर एक हाथ लम्बी पट्टी लपेट कर थोड़ी फलालैन लपेट देना चाहिये। और फलालैन को पिनों से जहाँ की तहाँ बाँध देना चाहिये। फलालैन की पट्टी बाँधते समय यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि पट्टी पूरे धड़ पर हो, उससे फेफड़े और पेट का सभी भाग ढक जाय और बँधी हुई पट्टी इतनी ढीली हो कि बालक के फेफड़े और पेट काफी वायु को ले सकें। यदि पट्टी के भीतर १ अंगुली देने लायक ढीली बाँधी जायगी तो यह काम अच्छी प्रकार हो सकेगा। सरदी के दिन हों तो बालक की छाती तक एक और दूसरा कपड़ा ओढ़ा देना चाहिये। क्योंकि बालक स्वभावतः कोमल होते हैं और उनके कोमल शरीर को सरदी लगकर नाना प्रकार के रोगों के होने का भय सबसे अधिक होता है।

बालकों का नाल तीसरे दिन से छठे दिन तक सूखकर खुद ही गिर जाता है। नाल गिरने से पीछे बालक के वस्त्रों में परिवर्तन कर देना चाहिये। जैसे नाल गिरने से पीछे नाभि में थोड़ा सा तेल चुपड़ कर रुई की गादी रख देना और ऊपर से उसी प्रकार सादे कपड़े और फलालैन की पट्टी लपेट कर ऊपर से मुलायम साफ कपड़े का कुरता पहना देना चाहिये। बालककी पीठ के नीचे भी रुई की एक मुलायम गादी बिछा देना चाहिये और नाभिनाल की जगह होशियारी से नित्य दिनमें दोबार तेल लगा देना चाहिये। यदि बालकके शिर में भी तेल लगाया जाय तो विशेष अच्छा है। ऐसा करने से बालक शीत की बाधा से बच जाता है और उसका मस्तक भी ठण्ढा बना रहता है। बालक को जिस शय्या पर सुलाया जाय उसके ऊपर से तेज झपाटेदार या दरवाजे की सीधी हवा न पड़ने देना चाहिये। बालक को ऐसी खिड़की के नीचे सुलाना विशेष अच्छा है जिसके जंगले बालक की शय्या से एक हाथ ऊंचे हों। इसी प्रकार जन्म-स्नान के बाद बालकको १० दिन के भीतर फिर स्नान न कराना चाहिये। इतने दिनमें बालक की नाभि का घाव सूख जाता है और उसे सरदी लग ने का भय भी नहीं रहता।

बालक को स्तनपान कराने को कौन सा दिन उपयुक्त है, इसपर भिन्न भिन्न स्थलों में भिन्न भिन्न राय पाई जाती है।

कभी तो किसी स्त्री को १।२ दिन दूधही नहीं उतरता। इस लिये बालक को शकर के जल की घूंटी दी जाती है और दूध उतरने पर दूध पिलाया जाता है। बाजे घरों में नियम है कि वे पहिले दिन गुड़ या शकर की घूंटी के सिवाय दूध पिलाते ही नहीं। पर ये दोनों बातें ठीक नहीं। गर्भाशय और स्तनों के बीच में ज्ञानतन्तुओं का एक विचित्र सम्बन्ध है। गर्भाशय के प्रसवोन्मुख होते ही स्तनों में दुग्ध-सञ्चरण होने लगता है। पर, किसी माता को देर से दूध की प्रवृत्ति हो यह बालक के प्रेम और संसर्ग पर निर्भर है। स्तनों में भरा हुआ दूध बिना बालक के स्तन-स्पर्श किये प्रवृत्त नहीं होता, इस लिये माता जब प्रसव कर्म से निवृत्त होकर स्वस्थ हो जाय और बालक भी स्नान आदि आवश्यक कामों से निवृत्त हो जाय तब बालक को स्तन-पान कराना चाहिये। कुछ स्त्रियों को यह ख़याल रहता है कि पहिले पहिल का कठिन दूध पिलाने से बालक को हजम नहीं होता। पर उनका यह ख़याल ठीक नहीं। वैसा दूध पीने से बालक का पेट अच्छी प्रकार साफ़ हो जाता है और गर्भ में रहते समय जो चिकटा हुआ मल बालक के पेट में रहता है सहज में स्वाभाविक रूप से निकल जाता है। यह रेचक गुण तत्काल-प्रसूता स्त्री के दुग्ध में ही होता है ४।५ दिनकी प्रसूता के दुग्ध नहीं होता।

यदि किसी कारण वश बालकको माताका दूध तत्काल न प्राप्त हो सके तो कुछ काल निर्वाह मात्र के लिये बालक को आधा चम्मच जन्म घूंटी पिलानी चाहिये। फिर माता का दूध दो दो घण्टे बाद पिलाते रहना चाहिये।

यहाँ से प्रत्येक बालक को नियमिताहारी बनने का अभ्यास डालना चाहिये। प्रायः बहुत सी मातायें अनेक बालक पैदा करने पर भी अनुभव-शून्य होती हैं। उनको यही ज्ञान होता है कि जब तक वे बालक से अलग न हों या बालक सो न जाय तब तक उसे बराबर स्तन से लगाये रहती हैं। यह अभ्यास बड़ा बुरा है। इस अभ्यास से हमने ३।४ दिनमें जन्मे हुये बालकों को भी रोगी देखा है। जो मातायें बालक को सोवड़ के भीतर नियमित रूप से स्तनपान नहीं करातीं वे बालक के जीवन में कीड़ा पैदा करती हैं। जन्मसे पीछे पहिले या दूसरे दिन बालक को काला कीट जैसा पाखाना होता है और फिर कुछ हरा-पीला पतला होता है। पर जिन्हें अनियमितरूप से दुग्धपान कराया जाता है उन्हें पाखाना अधिक पतला फेनादार होता है और पेट फूला जैसा मालूम होता है यदि किसी बालक को यह लक्षण प्रतीत हों तो माता को और भी अधिक देरी में अर्थात् २॥—२॥ घण्टे में बालक को स्तनपान कराना चाहिये।

वर्त्तमान समय की कुछ पढ़ी लिखी स्त्रियों का यह ख़याल कि दुग्ध पिलाने से हमारा सौन्दर्य नष्ट होता है, बड़ा बुरा है। बालक के लिये प्राकृतिक भोजन माता का दुग्ध न मिले तो अप्राकृत पेय पदार्थों (नकली दुग्ध आदि) पर बालक का जीवन चल नहीं सकता। विलायत की शौकीन स्त्रियाँ जिन बालकों का परित्याग कर देती हैं उनके पालन पोषण के लिये कुछ अनाथ बालकाश्रम नियत हैं। इन में दो प्रकार बालकों का पोषण होता है। एक जगह कृत्रिम पेय (दुग्ध आदि) द्वारा और दूसरी जगह प्रसूता स्त्रियों के द्वारा। वहाँ भी यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्रियों द्वारा पोषण से बालकों की मृत्युसंख्या बहुत कम होती है। यदि स्त्रियों द्वारा दुग्ध पिलाने से प्रति शत २४ से २५ तक बच्चे मरते हैं तो नकली दुग्ध पिलाने से प्रति शत ५० से ६२ तक मरते हैं।

जिस प्रकार एक दूसरे का प्राकृतिक सम्बन्ध उसके प्राकृतिक नियमों के पालनार्थ होता है उसी प्रकार माता पुत्र का सम्बन्ध भी है। इसलिये माता का दूध बच्चे के लिये प्राकृतिकपेय है और सब अप्राकृतिक हैं। इसके प्राकृत होने का यह भी मुख्य प्रमाण है कि ज्यों ज्यों बालक पैदा होने का समय निकट आता है त्यों त्यों उसके लिये स्तनों में दूध पैदा होता है। ऐसी दशा में किसी माता का बच्चेको दूध न पिलाना कितना अन्याय और क्रूरत्वहै यहबात सहजमें समझमें आजातीहै

दूध पिलाने से माता बच्चे की तरफ से केवल अपने कर्तव्यसे छूट जाती है सो भी नहीं। प्रसूति समय के निकट स्त्री के स्तन भारी और ऊंचे होने लगतेहैं। उनमें गांठें पड़ती हैं और तनावट के कारण स्तनों पर नीली नसें दिखाई देने लगती हैं। प्रसव होने पर दुग्ध आने लगता है तब यदि उसे उचित मार्ग नहीं दिया जाता है तो स्त्री के लिये एक नई व्याधि ही पैदा हो जाती है। प्रसव होनेपर यदि माता के दूध को बालक कम खींचता (पीता) है तो भी यह व्याधि होती है। ऐसी दशा में स्तनों में असह्य पीड़ा होती है और वे छुये नहीं जाते, प्रसूता को ज्वर आता है और वह बेचैन हो जाती है। पर ज्यों ही बालक दूध पीना आरम्भ करता है त्यों ही ये बातें लुप्त हो जाती हैं या होने ही नहीं पातीं।

पहिली बार माताके स्तनसे गाढ़ा पीली प्रभा वाला थोड़ा दूध उतरता है, पीछे वह बराबर हलका उतरता है। पहिली बार बच्चा पैदा होने या चौथी पाँचवींबार बच्चा पैदा होने पर कुछ स्त्रियों को दूध कम उतरता है या देर में उतरता है। पर ऐसी दशा में केवल दूध की प्रतीक्षा में बालक को स्तनपान नहीं कराना या दूध न होते हुये भी घण्टों बालक के मुंह में स्तन लगाये रहना बुरा है। क्योंकि पहिली दशा में स्तनपान कराये बिना इच्छानुसार दूध की प्रवृत्ति होना—स्तनों में एक गुदगुदी होकर दूध का पैदा होना

हो नहीं सकता। दूसरी दशा में छूछा स्तन पाने से वालक को खिन्नता या निराशा पैदा होती है। फिर वरावर स्तन लेने से वह मुख फेरता है या दूध नहीं खींचता, पर किसी स्त्री को कारणवश या स्वभावतः दूध की कमी हो तो वालक को और दूसरी प्रसूता स्त्री का दूध या गाय का दूध पिलाना चाहिये।

दूध के अभाव में यदि दूसरी प्रसूता स्त्री का वन्दोवस्त करना हो तो नीचे लिखी वातोंपर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

१—दूध पिलाने वाली के गोद में थोड़े दिन का पैदा हुआ वच्चा हो।

२—उसकी अवस्था जवान हो और वह सव प्रकार तन्दुरुस्त हो।

३—उसके दूध इतना हो कि उसके गोद के और दूसरे (जिसे दूध पिलाने आई हो) वच्चे के लिये कभी कमी न पड़े।

४—उसका चाल चलन अच्छा हो, वच्चों पर वरावर प्यार करती हो और दोनों वच्चों की प्रत्येक वात पर वरावर ध्यान रखती हो।

५—भोजन के लिये नियम शील हो, स्नानादि से स्वच्छ और प्रसन्न चित्त रहती हो।

६—उसके स्तन इतने वड़े न हों, जिससे दूध पीते हुये वच्चे की श्वासोच्छवास-क्रिया भी रुकती हो।

७—दूध पिलानेवाली धाय का पुरुष से संसर्ग न होता हो और न वह किसी प्रकार की चिन्ता में मग्न हो।

ऊपर लिखे नियमों के अनुसार दूध पिलाने वाली धाय की तलाश करने में जरा भी आलस्य न करना चाहिये। आलस्य करने से बालक के जीवन और सुख का सर्वनाश हो जाता है। कुछ मनुष्य माता के दुग्ध न होने पर बच्चे को गाय या बकरी के दूध पर ही रखना चाहते हैं, पर उनकी यह इच्छा बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। इससे तो विशेष अच्छी बात यही होगी कि धाय का बन्दोबस्त किया जाय। धाय की अवस्था २० से ३० वर्ष तक होनी चाहिये, इससे अधिकांशमें स्वस्थ धाय मिलनेकी सम्भावनाहै। दूसरी बात यह है कि इस अवस्था वाली धाय के २।३ सन्तान पैदा हो लेती हैं, जिससे उसका बालक पालन करने का अभ्यास-क्रम भी पुष्ट रहता है। यदि धाय को एक ही सन्तान हो चुकी हो तो वह बालक के लालन पालन में प्रायः अनभिज्ञ ही समझी जानी चाहिये। फिर पहिले प्रसव की अपेक्षा दूसरे या तीसरे प्रसव में धाय के दूध भी पूरी तादाद में उतर सकता है, जिससे वह अपने और दूसरे के बच्चे को पेट भर दूध पिला सकती है और वह दूध भी उस समय पहिले की अपेक्षा विशेष अच्छा होता है।

फिर धाय के बच्चे की तरफ भी जरा ध्यान देना आवश्यक है। धाय की गोद के बच्चे की और अपने बच्चे की अवस्था प्रायः समान ही होनी चाहिये, उस में विशेष अन्तर होना भी कल्याणकारक नहीं है। यह नियम है कि प्रसव के पीछे जितना अधिक समय बीतता है स्त्रियों का दूध उतनाही पौष्टिक और गाढ़ा होता जाताहै। इससे यदि दो सप्ताह के पैदा बच्चे के लिये ६ महीने के बच्चे वाली धाय दूध पिलाने आवे तो उसका दूध अपने छोटे बालकके लिये निरा निरुपयोगी हो सकता है। ऐसे समय उस धाय का दूध उसके बच्चे के लिये पाचन और पौष्टिक तथा दो सप्ताह वाले बालक के लिये अपाचन और रोगकारक हो सकता है।

फिर बालक की तरह धाय के नीरोग होने का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये। धाय नीरोग होनेके विषयमें चिकित्सक से परामर्श ले लेना चाहिये। विशेषतः ऐसे रोगों पर चिकित्सक का ध्यान अवश्य होना चाहिये जिनसे बालक को हानि पहुंचने या उन से बालक के आक्रान्त हो जाने का विशेष भय हो। धाय को ज्वर, मन्दाग्नि, दन्तरोग, गर्भाशय के रोग, मासिक विकार, रक्त-विकार, दुग्ध-रोग, स्तन-रोग, ववासीर, कुष्ठ, खुजली, अपाचन आदि न होना चाहिये।

इसी प्रकार धाय के स्तन और दूध की परीक्षा भी होनी चाहिये। धाय के स्तन इतने भारी न होने चाहियें; जिनसे दूध पीते समय बालक का मुंह दबजाय और श्वास लेने में भी कष्ट मालूम हो। जो स्तन कम दूध वाले, अधिक चर्बी वाले और ढीले होतेहैं उन्हीं में यह दोष होताहै। स्तनों के अग्रभाग बिटकणे (आँचर), इतने लम्बे और मोटे होने चाहियें जिनसे बालकको दूध पीने में सुभीता हो। बहुत छोटे होनेसे बच्चा इन्हें मुंह से ठीक दबा नहीं सकता और बार बार मुंह से निकल जाने के कारण दूध पीनेमें भी असुविधा होतीहै। स्तन-परीक्षा होने के बाद धाय का दूध एक साफ चम्मच या काँच के पात्र में निकालकर देखना चाहिये। अच्छे दूध की यही पहिचान है कि वह रङ्ग में सफेद, हलकी नीली प्रभा देने वाला और पानी जैसा तरल और मीठा होना चाहिये। उस दूध को यदि पानी में डाला जाय तो वह जल में अच्छी प्रकार मिल जाता है। इस दूधकी परीक्षा यदि एक सप्ताहमें या अधिक से अधिक एकमास में करली जाया करे तो विशेष अच्छी बातहै, क्योंकि बच्चे के लिये इसका अच्छा होना बहुत जरूरी है।

प्रसव के पीछे जब स्त्री पहिले पहिल मासिक धर्म प्राप्त

करती है तभी से दूध का पौष्टिक भाव कम होने लगता है। इससे किसी धायको नियुक्त करने से पहिले यह भी जान लेना चाहिये कि वह प्रसव के बाद मासिक धर्म प्राप्त कर चुकी है, या शीघ्र ही प्राप्त करने वाली तो नहीं है ? जिस स्त्री को प्रसव के बाद मासिक हो चुका हो उसे धाय के स्थान में नियुक्त न करना चाहिये। परन्तु बालक के दूध पीते रहने के ५।७ महीने बाद उसे मासिक धर्म आरम्भ हो तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। क्योंकि उस समय तक बालक की अवस्था ६।७ महीने की होने के कारण उसे आहार के लिये और चीजें भी दी जा सकती हैं। उस अवसर पर बालकके दाँतों का निकलना भी आरम्भ हो जाता है।

धाय की तन्दुरुस्ती के साथ साथ उसके चाल चलन की शुद्धता का ख़याल रखना भी जरूरी है। धाय को दुराचार (नशा पीना इत्यादि) की आदत होने से बच्चे का अनिष्ट होता है, धायका निज का बच्चा भी नीरोग होना आवश्यक है। उस बच्चे को यदि संग्रहणी, लार टपकना, खुजली; फोड़े फुंसी, सूखा, पँसुली, धनुष्टङ्कार, अपस्मार, कुष्ठ आदि रोग हों तो उन रोगों से अपने बच्चे को बचा नहीं सकते। इससे ऐसे बच्चेकी मा को भी धायके काम में नहीं नियुक्त करना चाहिये।

यह सब परीक्षा धाय का नियुक्त करने के समय की है। धाय को नियुक्त करके फिर उसकी तन्दुरुस्ती का ख़याल भी प्रत्येक धाय रखने वाले को जरूर रखना चाहिये। ऐसा न होने से धाय के साथ साथ दूध पीने वाले बालक का भी बहुत अधिक अपकार हो सकता है।

धाय को तन्दुरुस्त रखने के लिये सबसे प्रथम उसके खान पान पर ध्यान देना चाहिये। यह नियम की बात है कि बच्चे के लिये धाय रखने वाले प्रायः धनपात्र होते हैं और धायका कर्म करने वाली स्त्रियाँ निर्धन और साधारण होती हैं। अतः उनका खान पान भी वैसाही सादा होता है। देखा गया है कि जब वे धनपात्रों के घर में धाय के कृत्य पर आती हैं, तब उनकी कुछ आहार-व्यवस्था तो स्वेच्छा से ही बदल जाती है पर कुछ को धाय रखने वाले बदल देते हैं। वे समझते हैं कि यदि धाय को हम अच्छे पौष्टिक भोजन करायेंगे और सुख से रखेंगे तो हमारा बालक अच्छा दूध पावेगा और सुखी रहेगा। पर यह बिचार लाभ के बदले हानिकारक हो जाता है। साधारण घर की गरीब धाय दिन भर परिश्रम करके दिन में दो बार मोटे अन्न से पेट भरती हुई आती है, पर यहाँ आते ही उसकी मेहनत बन्द की जाती है और मलाई के लड्डू, मैदा

माना जाता है। उनकी सम्मति में गदही का दूध स्त्रियों के दूध से बहुत कुछ मिलता जुलता है। परन्तु पहिले तो वह प्राप्त होना ही सहज नहीं, फिर वह तमोगुण-विशिष्ट है, इस लिये हमारी समझ में बालकों के शुद्ध मनोभाव और शुद्ध बुद्धि के सम्पादन के लिये यह (गदही का) दूध पिलाने योग्य नहीं है। इसी प्रकार बकरी का दूध भी देने योग्य हो सकता है, वह हलका है, सुपाच्य है। पर उसमें पौष्टिक भाग बहुत ही न्यून है। इससे यदि गाय का दूध काम में लाया जाय तो वह विशेष अच्छा है। गाय के दूध और माता के दूध में कुछ अन्तर अवश्य है, जैसे-माता के दूध से अधिक चिकनाई गाय के दूध में होती है, पर शकर का भाग उससे कम होता है। परन्तु, जल शकर आदि मिलाकर गायके दूधको माताका दूध जैसे बनाया जा सकता है। इस कार्य्य में यद्यपि कुछ कठिनता होती है, तथापि कुछ ध्यान देने से यह कार्य्य अच्छी प्रकार किया जा सकता है।

आजकल प्रत्येक वस्तु का खालिस मिलना कठिन है। शहरों में जिस प्रकार अनेक वस्तु मिलावट की मिलती हैं, दूध भी उसी प्रकार मिलावटी मिलता है। लाभ के लोभ से और भाव में मद्दा बनाने के लिये बाजार के दुकानदार दूध में

जल, आटा, अरारोट, चाक आदि मिला दिया करते हैं। पर बालक के लिये जो दूध लिया जाय वह खालिस लिया जाना चाहिये। बड़े शहरों में विश्वासी डेरी फार्मों से यह काम अच्छी प्रकार चल सकता है। जिन्हें शक्ति है वे यदि अपने घर पर गौ रखकर दूध प्राप्त किया करें तो विशेष अच्छी बात है। इसमें एक अच्छापन यह भी है कि बालक को सदा एक ही प्रकार का दूध मिलता रहता है। जिन्हें बाजार या डेरी फार्म से दूध लेना हो, वे भी एक ही गाय का दूध काम में लावें तो विशेष अच्छा है। आज एक गाय का, कल दूसरी गाय का, परसों तीसरी गाय का, इस प्रकार नित्य नई गाय का दूध बदलना या कई गायों का गड्ड दूध पिलाना बालक के लिये हितकारी नहीं हो सकता।

यदि जन्म से (१ मास की अवस्था के भीतरही) गाय का दूध पिलाना हो तो दो सप्ताह तक खालिस गाय के दूध में बराबर परिमाणका जल मिलाना चाहिये। बादमें तीनमहीने तक दो भाग दूध में एक भाग जल मिलाना चाहिये। फिर कम करते करते पाँचवें महीने तक जल मिला दूध पिलाकर पीछे खालिस दूध पिलाना चाहिये। पिलाने के समय दूध में थोड़ी शक्कर मिला देना चाहिये।

जब दूध में जल मिलाना हो तब दूध और जल की तौल नाप ठीक ठीक कर लेना चाहिये। दूध यदि बिलकुल ताजा तत्काल दुहा हो तो उसमें औटाया हुआ जल मिला देना चाहिये। दोनों चीज मिलकर उस दूध की गरमाहट उतनी होना चाहिये जितनी की ताजे दूध में होती है। उससे अधिक गरम दूध बालक को कभी नहीं पिलाना चाहिये। यदि दूध कुछ देर होने के कारण गरम रखने की आवश्यकता हो तो एक पानी का भरा चौड़े मुंह का पात्र (या बालटी) चूल्हे पर चढ़ा देना चाहिये और उसमें इतना पानी रखना चाहिये जिसमें दूध का पात्र आसानी से रक्खा जासके और उस पात्र का जल दूध में न मिलने पावे।

आरम्भ में कुछ दिनों तक एकबार में एक छटाँक दूध से अधिक बालक को न पिलाना चाहिये। दूध पिलाने में समय का भी ध्यान रखना चाहिये। सबसे अच्छा समय वह है कि जब बालक सोकर उठे और रोकर दूध माँगे। यदि ऐसा अवसर ठीक न होसके तो दो या तीन घण्टे में दूध पिलाना चाहिये। जब बालक दो सप्ताह का हो जाय तब उसकी खुराक बढ़ाकर एक छटाँक से डेढ़ छटाँक दूधकी कर देनी चाहिये और तीन मास के बालक की एकबारकी मात्रा यदि वह पचा सके आध-

पाव दूध की कर देनी चाहिये। दिन की अपेक्षा रात को अधिक देरी से (४।४.घण्टे के अन्तर से) दूध पिलाना चाहिये। बालक जिस प्रकार अवस्था में बड़ा हो उसी प्रकार दूधकी मात्रा अधिक और अधिक समय में देते रहना चाहिये। कुछ मातायें धायें या पालन करने वाली स्त्रियें बालकों के आहार और समय की मात्रा ठीक न रखकर ही उन्हें जन्म-रोगी बना डालती हैं।

बालक के लिये दूध पीने की सबसे अच्छी विधि स्तन पान की है। परन्तु दुर्भाग्यवश माता और धाय दोनों के अभाव में जब उसे ऊपरी दूध पिलाना हो तो उसके दो प्रकार हैं, चम्मच से पिलाना या कांच की शीशी से। इनमें चम्मच से पिलाने का ढङ्ग अच्छा नहीं। चम्मच से दूध पिलाते समय यदि थोड़ी भी भूल होजाय तो बालक को उसी समय खाँसी आकर कै होजाती है, अथवा लार के साथ साथ दूध भी बालक के मुंह से बाहर गिरता रहता है। इस प्रकार लार पेट में न पहुंचने से बालक के पाचन में बाधा पड़ जाती है, इससे यह ढङ्ग अच्छा नहीं।

दूसरा ढङ्ग काँच की शीशी से पिलाने का है। इस काम के लिये बाजार में खास तौर की शीशियाँ बिकती हैं, जिनके

मुंह में बालक के पीने योग्य स्त्रियों के आँचर जैसी रबड़ की नली लगी रहती है। इस रबड़ की नली को मुंह में लेकर बालक अच्छी प्रकार माता के स्तन की भाँति ही दूध पीता रहता है। पर, शीशी रखने में एक बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये। कुछ दूध पिलाने वाली स्त्रियाँ मूर्खता वश शीशी को दूध से परिपूर्ण करके बच्चे के पास रख देती हैं, इससे बच्चा जब दूध पीलेता है तब कुछ दूध उसमें बाकी रह जाताहै और वह गरमी पाकर खटाई ले आता है। फिर उस शीशी में यदि ताजा दूध भराजाय तब भी वह बिगड़कर बच्चे के पीने योग्य नहीं रहता। वैसा दूध पीने से बालकों को बड़े बड़े रोग मुंह से लार गिरना, मुंह आना, दूध न पचना, दस्त आना कै होना इत्यादि—पैदा होजाते हैं, जिनसे कभी कभी तो बच्चे की मृत्यु ही होजाती है। इसलिये शीशी के लिये साधारणतः इस नियम को ध्यान में रखने से ये व्याधियाँ होने से रुक सकती हैं। जिनको शीशी से बच्चों को दूध पिलाना हो, उन्हें निरालस्य होकर यह नियम अवश्य ही पालन करना चाहियें।

पहिले साफ शीशी में उतना दूध भर देना चाहिये, जितना कि पिलाना हो। जब बालक दूध पी चुके तब शीशी का कार्क

और रबड़ की नली निकाल कर शीशी, कार्क और नली को तेज गरम पानी से खूब धोना चाहिये और शीशी आदि में लगे हुये जल को पोंछकर शीशी को खुली हवा में रख देना चाहिये। इससे शीशी से होने वाले दोषों का यथासम्भव प्रतीकार हो जायगा।

कदाचित् असावधानी से इस प्रकार दूध पिलाने से बालक को अजीर्ण मालूम हो तो उसकी दूध की मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिये। अथवा, उस दूध में साफ शुद्ध चूने का पानी १० वें हिस्से से चौथाई हिस्से तक मिलाकर पिलाना चाहिये। किस दशा में किस व्यथा में, कितना चूने का पानी दूध में मिलाया जाय यह बात चिकित्सक के परामर्श पर निर्भर करती है।

बालक कोमल शरीर और कोमल प्रकृति के होते हैं, इस लिये उन्हें खिलाने पिलाने के समय भी किस प्रकार रखना चाहिये इस बात के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। कुछ मातायें दूध पिलाते समय बालक को आड़ा, तिरछा, सीधा, किसी प्रकार गोदी में डालकर दूध पिलाना आरम्भ कर देती हैं, पर, यह लापरवाही अच्छी नहीं। इससे बालक सुख से दूध

नहीं पी पाता, न उसे श्वास ही सुख से मिलता है, कभी कभी तो ऐसी दशा में पेट दबकर बालक को कै होजाती है और वह घबरा जाता है। बालक को दूध पिलाने का साधारणतः यह तरीका अच्छा है कि एक हाथ की हथेली (या कुहनी के पास का हिस्सा) बच्चे की गरदन के नीचे हो, जिस से उसका मस्तक ऊँचा रहे और पीठ तथा सिरको सहारा पहुँचता रहे। दूध पीते समय बालक का ऊपरी हिस्सा ऊँचा और नीचे का हिस्सा नीचा रहे और पेट किसी प्रकार दबने न पावे। यदि खटोले पर सुलाकर शीशी से दूध पिलाना हो तो एक हलका सा पतला चपटा तकिया उसके सिर और गरदन के नीचे लगा देना चाहिये। इस प्रकार दूध पिलाने से बालक को कुछ कष्ट नहीं होता।

दूध पिलाने के बाद बालक खेले या जगता रहे, उसे गुलगुले बिछे हुये खटोले पर लेटा देना चाहिये। कुछ मातायें दूध पिलाकर बालक को उछाल उछालकर खिलाती या उसे हँसा हँसाकर उलट पुलट करती हैं। पर, उनका ऐसा करना बुरा है। इसी प्रकार कुछ बालकों के खिलाने का भार घरकी (या नौकर की) कम उमरवाली बालिकाओं पर डाला जाता है, जिससे वे जैसा बनता है वैसेही बालक को गोदी में लिये

लटकाये फिरती हैं। यह अभ्यास भी बुरा है। जब तक बालक को धरती पर बैठाने का अभ्यास न डाला जाय तब तक उसको अधिकांश समय खटोले पर ही बीतना चाहिये। हर वखत पास रखना बुरा है, इससे बालक डरपोक और कमजोर होजाते हैं।

बालकों के जब आगे के दुधिया दाँत निकल आवें तब उनकी खुराक में कुछ परिवर्तन कर देना चाहिये। हमारे शास्त्रों में यही समय (छठा महीना—क्योंकि पहिले दुधिया दाँत ५ से ७ मास की अवस्था तक निकलते हैं) अन्न-प्राशन का स्थिर किया है। इस से यह न समझना चाहिये कि बालक का दूध छुड़ाकर एकदम अन्न पर लाना चाहिये। एकदम परिवर्तन कर देने से तो पूरी हानि होने की सम्भावना रहती है। इस समय दूध से भिन्न दाल भात या खिचड़ी का चटाना अच्छा है। जिन्हें बिसकुट खिलाना कुछ असंगत नहीं जँचता, वे सूजी का बना हुआ बिसकुट थोड़ा थोड़ा दे सकते हैं। बहुत से घरों में ऐसे समय खोया की या मैदा की बनीहुई मिठाई खिलाते हैं, वैसा करना ठीक नहीं है। क्योंकि दूध से उतर कर बालकों के लिये अन्न का अभ्यास

होनाही हितकारक है। अन्न खाने से कब्ज नहीं होता, मल मूत्र शुद्ध उतरता है। पर, खोया या मैदा खाने से बालकों को अपाचन होकर कब्ज हो जाता है। और उनके पेट में गाँठें पड़ जाती हैं। मोटे आटे की बनी रोटी को मींज कर थोड़ा थोड़ा चटाने का अभ्यास करना भी अच्छा है।

इस परिवर्त्तन में कदाचित् किसी बालक को कब्ज मालूम हो तो नीचे लिखी जन्मघूंटी देनी चाहिये। यह घूंटी केवल दुग्धाहारी बालक को भी दी जासकती है।

—सौंफ की जड़	सौंफ
वायविड़ंग	अमलतास का गूदा
सनाय	छोटी हड़
बड़ी हड़ की छाल	दूधिया वच
जीरा सफेद	अजवायन
गुलाब के फूल	विलास पापड़ा
मुनक्का	उन्नाव
पुराना गुड़	सुहागा भुना हुआ

इन चीजों को बराबर भाग लेकर कूटकर रखले। जब आवश्यकता हो ६ मास के बालक को ३ से ५ मासे तक लेकर एक छटाँक खौलते हुये पानी में डालकर उतारले। १० मिनट

घाद मलकर इसे छानलें। इस जल में दो रत्ती भर काला नमक पीसकर मिलादें और बालक को पिलादें। इससे बालकों का अजीर्ण, कब्ज और अपाचन दूर होता है। छोटी उमर के बालकों को कम और बड़े बालकों को यह दवा तादाद में ज्यादा देनी चाहिये।

बालकों को कदाचित् कोई व्याधि होजाय तो इसका प्रतीकार बहुत शीघ्र करना चाहिये। क्योंकि बालकों की कोमलता के कारण उनपर रोग का प्रभाव बड़ी शीघ्रता से होता है। भोजन के लिये भी बालकों को विशेष आग्रह न करना चाहिये, न उनके भोजन के समय को चूकना चाहिये। कुछ मातायें इतनी लापरवाह होती हैं कि वे प्रेम के कारण बालकों का मुंह रात दिन चलनाही पसन्द करती हैं, और बालकों को कभी कुछ कभी कुछ खिलाया-करती हैं। अथवा अपने काम धन्दों में लगकर उनकी भोजन-वेला को ही भूल जाती हैं।

इस अवस्था में बालकों को फल भी दिये जा सकतेहैं, पर, यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि फल रसीले मधुर और सुपाच्य हों, जहाँ तक हो फल इस प्रकार देने चाहियें जिसमें फलों का रस-भाग बालक के पेट में जाता रहे, पर उसका कठिन भाग (खुभरा) या टुकड़ा पेट में न जाने पावै। प्रथम तो बड़ा

टुकड़ा पेट में जाने से पचता नहीं, फिर यदि पेट में जाने से प्रथम कण्ठ में ही अटक गया तो बालक को पूरा कष्ट झेलना पड़ता है। इसलिये यह भी आवश्यक है कि बालकों को अन्न या फल खूब चबाने का अभ्यास डालना चाहिये। उन्हें यह बात हर तरह से सिखाना चाहिये। यह अभ्यास सिखाना पड़ता है। कुदरती अभ्यास से बालक केवल निगलना ही जानते हैं।

शरीर की वृद्धि बाल्यकाल में इतनी शीघ्रता से होती है, जितनी कि और किसी अवस्था में नहीं होती। इसी लिये बालक को इस समय खुराक की विशेष आवश्यकता होती है। खुराक से ही शरीर के भरण पोषणका मुख्य कार्य सम्पन्न होता है, पर, इस नियमपर चलतेभी माताओं को बालकों की खुराक का परिमाण जरूर ध्यान में रखना चाहिये। बालक प्रायी दिन में ४। ५ बार भोजन पासकते हैं और सम्भवतः पचा भः सकते हैं, किन्तु, जितनी बार जितनी खुराक खाकर पचा सकें उन के लिये वही परिमाण ठीक हो सकता है। माता को उचित है कि प्रथम बार के भोजन के पचने पर ही बालक को दूसरी बार भोजन दें। अच्छी प्रकार पचा हुआ भोजन वास्तव में पौष्टिक हो सकता है अन्यथा रोग कारक होता है। भोजन के समय कुछ घरों में चाय काफी

का भी विधान होता है और वे अपनी चाल के अनुसार बालकों को भी पिलाते हैं, यह चाल अच्छी नहीं। बालकों को कोई भी दुर्व्यसन वाली वस्तुओं और नशों से सदा दूर रखना चाहिये। चाय पीने से बालकों का विशुद्ध पाचन बिगड़ जाता है। इसी प्रकार कुछ मातायें अपने बालकों को अधिक समय तक सोता रखने और निज का काम निपटा लेनेके लिये अफीम देने का अभ्यास डालती हैं। इसी दुरभ्यास के कारण कई वार बालकों को मृत्यु के मुख में जाना पड़ा है। बालकों के कोमल ज्ञानतन्तु नशीली चीज़ोंके योगसे विलकुल कठोर और निकम्मे हो जाते हैं। कई वार ऐसी दशा में बालकों का जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। उनकी चैतन्यावस्था मुर्दा जैसी, प्रतिभा लुप्त और स्फूर्ति नष्ट हो जाती है। बालकों का भोजन प्रायः सादा होना चाहिये। अधिक मसाले, घी (या तेल) वाले भोजन बालकों को कभी न खिलाना चाहिये। इन से भी उनका पाचन-क्रम विगड़ जाता है।

बालकों का स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये उनको साफ सुन्दर रखना चाहिये। साफ रखने के लिये मुख्य साधन स्नान है। इसलिये छोटे बालकों को शीत स्थानों में तीसरे दिन और उष्ण स्थानों में प्रति दिन स्नान कराना चाहिये।

स्नान के लिये गरम पानी का उपयोग करना अच्छा है। कुछ माताये ठण्ढे पानी से बालकों को स्नान कराया करती हैं। और वे समझती हैं कि इस कृत्य से बालक पुष्ट और सुन्दर होते हैं तथा बालकों को सरदी सहने का अभ्यास पड़ जाता है। पर यह भूल की बात है। बालकों के लिये गरम पानी से स्नान कराना जितना उपयोगी सिद्ध हुआ है उतना ठण्ढे पानी से नहीं। गरम पानी के स्नान से ये लाभ होते हैं।

१–शरीर का मैल सहज में दूर होता है।

२–चमड़े में कोमलता आती है।

३–रोमकूप अच्छी प्रकार शुद्ध रहते हैं।

४–आराम मिलता है और थकावट दूर होती है।

५–शरीर में रक्त की गति ठीक होती है।

६–शीत सहने की शक्ति पैदा होती है।

ठण्ढे जल के स्नान से ये बातें नहीं होतीं। बालक को जब स्नान कराना हो तब उसके शरीर पर कोई सुगन्धित तैल या औषधियों से बना तैल जो शरीर पुष्ट करने के लिये उपयुक्त हो, मल देना चाहिये। जो सुगन्धित तैल को काम में नहीं ला सकते हों उन्हें सरसोंका तेल काम में लाना चाहिये।

जिन घरों में सावुन लगाने की प्रथा है उन्हें बिनोलिया सावुन बरतना चाहिये। पर सावुन का प्रयोग वालकके मुखपर समझ बूझकर ही करना चाहिये या बिलकुल न करना चाहिये फिर हलके गरम पानी के टब में बालक को खड़ा करके स्नान कराना चाहिये। बालक यदि जल से भय खाता हो तो उसका चित्त किसी दृश्य को दिखाकर वहला देना चाहिये। और उसे जल्दी जल्दी स्नान कराकर साफ तौलिये से पोंछकर कपड़े पहरा देना चाहिये या मुलायम वस्त्रों में लपेटकर सुला देना चाहिये। पोंछते समय बालक के प्रत्येक अङ्ग को अच्छी प्रकार पोंछ देना चाहिये। कोई अङ्ग भूल से गीला बना रहने से गलने लगता है या वहाँ पर कोई अन्य रोग पैदा होजाता है।

वालक को स्नान के समय यदि भूख लगी हो या उसे खाये पिये अधिक समय होगया हो तो पहिले उसे स्नान करा देना चाहिये, फिर खिलाना पिलाना चाहिये। स्नान कराने से पहिले तत्काल बालक को कुछ न खिलाना चाहिये, इस बात का खयाल प्रत्येक माता को अवश्य रखना चाहिये। स्नान के बाद खिला पिला कर सुलाने से बालक का स्वाथ्य सुधरता है, पर उलटा काम करने से उसका स्वाथ्य बिगड़ता है।

स्नान के पीछे बालकों की आँखों में किसी प्रकार का काजल जरूर लगा देना चाहिये। इससे उनकी आँखें निरोग रहती हैं और दृष्टि मजबूत होती है। काजल लगाने से आँखें चमकदार चीजों से कम चौंधियाती हैं और उनका विकास भी होता है।

दूसरा सफाई का काम बालकों की मलमूत्र–शुद्धि का है। जब मालूम होकि बालक मलमूत्र करने वाला है, तब यदि वह कपड़ा पहिने हो तो उसके कपड़े उतार डालना चाहिये। मल–त्याग के पीछे अच्छी तरह जल से शौच क्रिया करा देनी चाहिये। इस काम में विशेष सावधानी रखनी चाहिये। यदि कुछ देर बालक के शरीर में मल लगा रहा तो उससे उसके छाले फुन्सियाँ या अन्य रोग होने की सम्भावना हो जाती है। इस विषय में मलमूत्र—त्याग की इच्छा के लिये बालकों को किसी साङ्केतिक शब्द का ज्ञान करा देने से विशेष सुविधा हो जाती है।

तीसरा सफाई का काम बालकों को वस्त्र पहिनाना है। बालक के पहिने हुये वस्त्र में कहीं मलमूत्र लग जाय तो उसे दूरकर दूसरा साफ वस्त्र पहिना देना चाहिये। बालकों को

मैला कुचैला वस्त्र पहिनाने से उसमें चर्म रोग की वृद्धि होती है। बालक के शरीर पर से उतारे हुये वस्त्र को साबुन या सज्जी से धोकर साफकर देना चाहिये, इतने पर भी यदि वस्त्र में किसी प्रकार की गन्ध आती हो तो उसे धोबी से धुला डालना चाहिये। बहुत से गृहस्थों में बालकों के पोतड़ों (मलमूत्र—त्याग के लिये बचाव के कपड़ों) और पहिनाने के कपड़ों के विषय में बड़ी असावधानी देखी जाती है, ऐसा करना सर्वथा बुरा है। बालकों को पहिनाने के वस्त्र मुलायम रङ्गीन खासकर हरे या खाकी रङ्ग के, ढीले होने चाहियें। बालकों के कपड़ों में गड़नेवाले बटन या पीतल के छल्लेदार बटन न लगाना चाहिये। विशेष सफेद, लाल या चमकदार कपड़े बालकों की दृष्टि के लिये हानिकारक समझे जाते हैं। जिन बालकों के रोगवश लार टपकती है उनकी छाती पर स्पंज की बनी हुई गद्दी लटका देनी चाहिये। जिसमें लार उसी जगह रहकर सारे शरीर को रोगग्रस्त न करे। बालकों को आभूषण न पहिनाना चाहिये या बहुत कम पहिनाना चाहिये। यदि आभूषण पहिनाना हो तो बहुत हलके पहिनाना चाहिये। पैरों में भारी कड़े और छाती पर भारी भारी कठले पहिनाना बालकों के स्वास्थ्य को खराब करता है।

बालकों के स्वास्थ्य ठीक रखने का दूसरा मार्ग अच्छी निद्रा दिलाना है। यह नियम है कि जन्म से पीछे कुछ सप्ताहों तक बालक अपना अधिकांश समय सोने में खोता है, यदि वह कुछ देर जागता है तो केवल दूध पीने और मल त्याग के लिये। दूध पीकर फिर सो जाता है। छः सप्ताहों बाद उसके जागरण की मात्रा बढ़ने लगती है। ऐसी दशा में माताओं को भी चाहिये कि उनका मन बहलाकर निद्रा की मात्रा धीरे धीरे कम कराती रहें। यदि ५।६ महीने की अवस्था तक उनके सोने की मात्रा में कोई कमी न की जाय तो फिर बालकों की आदत खराब हो जाती है और इससे फिर उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इससे हमारा यह अभीष्ट नहीं कि निद्रा के आने पर बालक को अनावश्यकता से जगाया जाय अथवा सोते हुये को जबरन जगाया जाय। इससे तो उसके स्वास्थ्य की हानि होती है। हमारा अभीष्ट यह है कि जगते हुये बालक को बहलाकर कुछ देर अधिक जगने दिया जाय जिससे उसकी निद्रा का परिमाण धीरे धीरे कम पड़ता जाय। ऐसा न हो कि बालक जगा और उसने इधर उधर देखा, कोई उसके मन बहलाव की सामग्री न मिली तो फिर वह सो जाय, ऐसे ही ढङ्ग से बालकों को बारम्बार सोकर अधिक सोने का दुरभ्यास पड़ जाता है जो वास्तव में हानिकारक होता है।

~~७—दूध पिलानेवाली का पुरुष से संसर्ग न होता हो और न वह किसी प्रकार की चिन्ता में मग्न हो।~~

बालकों का निद्राभङ्ग करना भी महा पाप है। बहुत बार देखा गया है कि इस काम में उनकी मातायें ही विशेष दोष भागी होती हैं। कुछ मातायें विशेष निद्रालु होती हैं, इससे वे बालक को दूध पिलाते पिलाते सो जाती हैं यदि ऐसे समय वे बालक पर गिरगईं तो बालक दबकर असमय जग उठता है और उसका श्वास तक रुक जाता है। अथवा वे अपने बच्चे को पालने या गोदी में विशेष हला झुला कर सोने का अभ्यास डालती हैं जिससे बालक को वैसाही अभ्यास पड़जाने के कारण जहाँ जरा हिलाना झुलाना कम हुआ कि बालक जाग उठता है।

इसके लिये साधारणतः नीचे लिखे नियमों पर चलने से यह दोष दूर होसकता है। जाड़े के दिनों में विशेषतः छोटे बालक का माता के पास सोना आवश्यक है, क्योंकि उन दिनों का शीत सहने के लिये बालक के शरीर की प्राकृतिक गरमी यथेष्ट नहीं होती। इससे माता के शरीर की गरमी उसकी पोषक होती है। और समय में प्रथम तो दूध पीने के समय को छोड़कर बालक का प्रत्येक समय माता के पास रहना उपयुक्त ही नहीं। यदि कार्य वश ऐसा न होसके तो माता को चाहिये कि बालक को दूध पिलाकर उसका मुंह

दूसरी तरफ करदे—अपनी तरफ से मुंह फेरदे। खाट भी इतनी बड़ी होनी चाहिये जिसमें माताके सोने से भी बालकके सोने के लिये यथेष्ट जगह बाकी रहे। बालक के पैरों से छाती तक एक हलका कपड़ा पड़ा रहना चाहिये। जिससे मक्खी मच्छर से बराबर बचाव बना रहे। पर यह कपड़ा बालक के मुंह पर न आना चाहिये। कपड़ा फटा न होना चाहिये, कभी कभी फटा कपड़ा बालक के गले में या हाथ पैरों में अटक कर उसे दुःख पहुंचाता है। बालकके सिरके नीचे बहुत हलका पतला तकिया लगाना चाहिये, जिसमें उसकी गरदन ऊंची नीची रहके मोच न खाजाय। बालक के सोने की खाट खूब तनी होनी चाहिये। ढीली रहने से बालक नीचे की तरफ खसक कर प्रायः माता के नीचे भी दब जाया करता है।

इससे भिन्न बालकों की और बातों पर भी माता का ध्यान होना जरूरी है। बालक को खेलने के लिये छोटे खिलौने या गोलियाँ न दी जाँय। जिनको मुंह में डालकर उसे प्राणान्त कष्ट झेलना पड़े। आटा पीसते समय या झाड़ू देते समय बालक को कभी पास न रखना चाहिये। उड़ता हुआ बारीक आटा और गरदा बालक के फेफड़ों को खराब कर देता है। किसी समय बालक को खिलाने का भार किसी छोटे बालक पर न देना चाहिये, जिसमें वह उसे संभाल न सके। बालक के बिछौने एकबार प्रतिदिन धूप में सुखा लेना चाहिये, इससे

वे कपड़े निर्दोष हो जाते हैं। एक वर्ष से अधिक अवस्था वाला प्रत्येक बालक एक अहोरात्र में चारबार और दो वर्ष की अवस्था वाला तीन बार सोता है। फिर वही बड़ी अवस्था में दो तथा एक बार सोने लगता है। इसी प्रकार अवस्था बड़ी होते होते निद्रा कम आने लगती है। माता को चाहिये कि जब बालक दिन भर में दो बार सोता हो तो उसके सोने का समय ऐसा कर देना चाहिये जिसमें उसके भोजन का समय नियमित हो सके। ७-८ वर्ष के बालकके लिये बारह घण्टे की नींद काफी होती है। उपयुक्त निद्रा पाकर इतने समय में बालक अवश्य उठता है, अतः जिस अवसर पर जगे उसे चैतन्यकर देना चाहिये। बहुत थोड़े समय में बालक को कभी न जगाना चाहिये। क्योंकि इस प्रकार उसकी निद्रा भङ्ग करने से कभी कभी बालक का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

बालक के सोते समय दीपक की ज्योति उसके नेत्रों के सामने न होना चाहिये। यदि उस समय उस स्थान में दीपक न रहे तो कोई हानि नहीं। अँधेरे स्थान में निद्रा अच्छी प्रकार आती है और बालक को भय भी नहीं मालूम होता। जिन बालकों को दीपक या बिजली की रोशनी में सोने का अभ्यास डाला जाता है, वे दिल के कमजोर होते हैं। ऐसे बालकों को अँधेरे में प्रायः डर लगा करता है।

बहुत सी मातायें बच्चों को किसी बात से रोकने के लिये प्रायः भय दिखाया करती हैं, नकली भूतों या कृत्रिम नामों से बालकों को डराती हैं, उनका यह अभ्यास बहुत बुरा है। इस से बालकों की सहज निर्भीकता नष्ट होती और वे डरपोक बनते जाते हैं।

बालकों के स्वाथ्य के लिये विशुद्ध खुली वायु का भ्रमण भी अच्छा लाभप्रद है। यह काम हमारे देश में प्रातःकाल और सायङ्काल किया जाना अच्छा है। जिस प्रकार खुली हवा पाकर फूल खिलते हैं उसी प्रकार बच्चों का शरीर भी खुली हवा पाकर विकसित होता है। पर इतना जरूर ख़याल रखना चाहिये कि जब अन्धकार चलता हो, तेज सरदी या धूप पड़ती हो, लूवें चलती हों ऐसे समय में बालक को भ्रमण न कराना चाहिये।

बहुत छोटे बालक को सुलाने का भी एक नियम जाने रहना चाहिये, जिससे बालक को कभी हानि न पहुंचे। एक महीने तक के बच्चे को मुलायम, गुलगुली गद्दी पर सुलाना चाहिये। क्योंकि बालक के सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग अधिक कोमल होते हैं। जब तक बालक तीन मास का नहीं होलेता तब तक इसके पृष्ठवंश में (रीढ़ में) ताकत नहीं होती, इसलिये तीन मास से कम उमरवाले बच्चे को धरतीमें नहीं बिठाना चाहिये न उसे खड़ा ही करना चाहिये। ऐसा करने से बालकों की

पीठ में कुरब निकल आताहै। या कमर खम खाकर वे कुबड़े होजाते हैं। ऐसे बालकों को दोनों हाथों से खूब संभाल कर रखना चाहिये। एक खुला हाथ बालक की पीठ और मस्तक के नीचे रहे और दूसरा हाथ उसके कूले और जाँघ के नीचे रहे। यदि उसे हलाना झुलाना हो तो इसी प्रकार हाथों में रखकर इधर उधर हलाना झुलाना चाहिये, नीचे ऊपर उछालना ठीक नहीं। कुछ मनुष्य बालकों को एक हाथ पकड़ के या चाहे जिस प्रकार ऊट पटांग उठा लेते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं, इससे कभी कभी नुकसान हो जाता है। देखा है कि कई बालकों के हाथ एक बार स्थानच्युत होकर बड़ा दुःख मिला है और फिर बार बार ऐसा होने से उन्हें बहुत काल तक हाथों से कच्चा बना रहना पड़ा। बचपन में बच्चों के हाथ पैर इतने कमजोर और उनके जोड़ इतने शिथिल होते हैं कि उन्हें यथोचित रूप से हला चला नहीं सकते। ज्यों ज्यों उनके हाथ पैरों के जोड़ मजबूत होते जाते हैं त्यों त्यों वे हाथ पैर खुद चलाने लगते हैं। चार महीने की अवस्था के लगभग बालक खटिया पर पड़े पड़े अपने हाथ पैर हला हला कर उन्हें सशक्त करते हैं, फिर बैठकर हाथ हिलाते हैं। कुछ मास बाद वे पैरों को संभाल कर उचकते या कूलों के बल घसिटने का अभिनय कर पैरों को सबल करते हैं। एक वर्ष की अवस्था में (यदि वे निर्बल न हुये तो) कुर्सी, दीवाल या अन्यान्य चीजें पकड़

पकड़कर चलने लगतेहैं। यह सब उनकी प्राकृतिक क्रियाहै, जिसे वे स्वास्थ्यावस्था में स्वयं सम्पादन करते हैं। ऐसे कामों से बालकों को कभी रोकना नहीं चाहिये। पर यह संभाल जरूर रखनी चाहिये कि वह अग्नि जल या और खतरनाक चीज़ों से बचा रहे।

बालकों को जब चलाने का अभ्यास डालना हो तो सबसे अच्छा ढङ्ग यह होगा कि उसके दोनों हाथों की बगल के नीचे अपनी हथेलियाँ लगा दो और चलाओ। जब वह एक या दो कदम चलकर पैर उठाने को या धरने को हो तब अपनी हथेलियों को जरा ढीला कर दो, इससे वह सहारा न पाकर कुछ थोड़ा सा लड़खड़ायेगा, पर फिर उसे साध लो। इस प्रकार चलाने में सबसे अच्छाई यह है कि बालक को अपने शरीर का वजन समान भाग बनाये रखने का अभ्यास शीघ्र पड़ जाता है और यही चलने के अभ्यास का मूल सूत्र है। बालकों को चलना सिखाने के लिये इससे भिन्न लकड़ी, मकानों के जँगले, देहली, रहड़, गाड़ी आदि साधन हैं, पर, ये सब सहारा मात्र देते हैं। जल में तैरना सिखाने को भी पहिला साधन विशेष उपयुक्त है। सिखाने वाला कमर के बराबर जल में खड़ा होकर सीखने वालेको छातीके बल अपने हाथों पर लिटाले। सीखने वाले से कह दे कि वह हाथों से पानी को अपने बगल के नींचे से निकालता रहे और बीच बीच में तैरना सीखने वाले को बोझा साधने की शिक्षा देने के लिये अपने हाथों को नीचे गहरे जल में डुबोता रहे। इस प्रकार तैरने वाला बार बार झोंके खाकर जल पर शरीर साधने का ढङ्ग सीख जाता है।

बच्चों के जीवन में दाँत आने का भी एक विशेष ध्यान देने योग्य अवसर है, यह अवसर दोबार आता है, पर, पहिला अवसर कठिन होता है। बालकों के पहिले जो दाँत आते हैं उन्हें दूधके दाँत कहतेहैं, और दूसरे दाँतोंको अन्नके दाँत कहते हैं। दाँतोंका यह नाम करण दूध और अन्नके आहारके कारण किया जाता है। दाँतों के निकलने का अवसर निश्चित नहीं है। किसी बालक के जन्म के समय में ही १। २ दाँत देखे जाते हैं। पर, किसी को आठवें महीनेमें दाँत निकलने आरम्भ होते हैं। तथापि कुछ अनुमित समय में कुछ थोड़ा आगे पीछे जरूर निकल आते हैं। आगे के कोष्ठकों में दोनों प्रकार के दाँतों का हिसाब दिखाया गया है। दोनों दाँतों के निकलने का अवसर प्रायः ऐसाही देखा जाता है।

दूध के दाँत निकलने का अवसर।

क्रम	दाँतों के नाम	निकलने का समय
१	सामने के दो दाँत	५ से ८ महीने तक
२	आजू बाजू के चपटे दाँत	७ से १० महीने तक
३	दोनों तरफ के खूंटे	१४ से २० महीने तक
४	अगली दाढ़	१२ से १६ महीने तक
५	पिछली दाढ़	१८ से ३६ महीने तक

अन्नके दाँत निकलने का अवसर ।

क्रम	दाँतों के नाम	निकलने का समय
१	आगे की दाढ़	७ वर्ष
२	सामने के दाँत	८ वर्ष
३	अजू वाजू के चपटे दाँत	९ वर्ष
४	आगे की दो दाढ़	१० वर्ष
५	पिछले दो खूंटे	११ वर्ष
६	आगे के दो खूंटे	१२ से १२॥ वर्ष
७	वीच की दो दाढ़	१२॥ से १४ वर्ष तक
८	पीछे की दो दाढ़	१८ से २५ वर्ष तक

बालकों के दाँत निकलते समय माताओं को बड़ी चिन्ता करनी पड़ती है। उस समय वालक का आहार घट जाता है और उसे अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है। ऐसे समय में वालक को किस प्रकार दाँत निकलते हैं और किस प्रकार उसे रखना चाहिये यह बता देना आवश्यक है।

सबसे पहिले नीचे की पाँति में सामने के दो दाँत निकलते हैं। इससे पीछे उसी के मुकावले में ऊपर के दो दाँत निकलते हैं। उससे पीछे इनके सहायक आजू वाजू के दो दो दाँत

निकलते हैं। इन आठों दाँतों से बालक फल या अन्न के ग्रास को काटने का काम करता है। इससे पीछे आगे की चार दाढ़ और अगल बगल के चार खूंटे निकलते हैं, जिनसे बालक ग्रास को चबाने और दवाने का काम करता है। पीछे चार दाढ़ निकलती हैं, जिनसे आहार को बारीक चबाकर पेट में डाला जाता है। ये सब दूधिया दाँत कहलाते हैं। कुछ वर्ष में ये सब गिरकर इनकी जगह दूसरे दाँत निकलते हैं जो बहुत दिन स्थायी रहते हैं। लोग उन्हें अन्न के दाँत कहते हैं। ये स्थायी दाँत छठे, सातवें वर्ष से आने लगते हैं। इनमें सबसे पीछे वाली दाढ़ जिसे लोग अक्ल की दाढ़ कहते हैं सबसे पीछे २५ वर्ष की अवस्था तक आती है। इस दाढ़ के निकलते समय मनुष्य को बुद्धि उत्पन्न होजाती है इसलिये उसे अक्ल की दाढ़ कहते हैं।

स्थायी दाँतों की संख्या ३२ होती है। कभी कभी ३० संख्या भी देखी जाती है। पर, वह भी अधिकतर जबड़े की छुटाई पर निर्भर है। इसी प्रकार दाँतों का चौड़ापन या गहरा और छीदा होना प्रकृति परनिर्भर है

जब बालक को पहिले दाँत निकलने आरम्भ हों तब उस के मस्तक को ठण्डा रखना चाहिये। बालक के मस्तक पर यदि बाल बड़े हों तो उन्हें कैंची से छोटे करा देना चाहिये

और शीत समय न हो तो उसे नंगे शिर रखना चाहिये। ऐसे समय यदि कोई जल भाँगरा आदि से बना वृष्य तैल शिर में लगाया जाय तो और भी अच्छा है। बालक के वस्त्र इस समय ढीले होने चाहियें, जिससे उसे गरमी न सतासके और बालक यथेच्छ रूप से हाथ पैर हिलासके। भोजन भी गरम न खिलाना चाहिये। केवल दूध पिलाना अच्छा है। यदि समय गरमी का हो तो बालक को गरमी से विशेष रूप से बचाना चाहिये। नहीं तो उसे ज्वर आने का भय रहेगा।

ऐसे समय बालक को कब्ज मालूम हो तो दिन में एकबार जन्मघूंटी देना चाहिये। यदि पाचन-दोष मालूम हो तो दूधियाबच और अतीस का चूर्ण १।२ रत्ती की तादाद से दिन में दो बार शहद में चटाना चाहिये। दाँत निकलते समय बालकों को पाचन-दोष होकर कै (दूध पटकना) और दस्त आने लगते हैं, पर, औषधि करते रहना चाहिये और इनकी चिन्ता न करनी चाहिये।

कुछ चिकित्सकों की राय है कि इस समय बालकों के जबड़े में अँगुली से रगड़ते रहना चाहिये, अथवा रबड़ या ऐसीही कोई कड़ी चीज बालक को चबाने को देनी चाहिये जिससे दाँतों का निकास शीघ्र होता है। इस अवस्था में यदि पुष्ट हो तो उसे कूदने का अभ्यास सिखाना चाहिये,

कुदने के अभ्यास से भी दाँत निकलने में प्रायः सहायता मिलती देखी गई है। दन्तोद्भेद रोग जो कि दाँत निकलते समय होते हैं कमजोर बालकों को बाधक होते हैं। अतः बालकों को बहुत कुछ बचाने का एक यही प्रयत्न करना विशेष अच्छा होगा कि उन्हें सबल बनाये रखना चाहिये।

बालकों के लिये दूसरा कष्ट का अवसर वसन्तरोग (माता शीतला या चेचक) है, इसके निकलने का अवसर नियमित नहीं है। किसी बालकको किसी अवस्था में, किसी को किसी अवस्था में निकलती है। यह रोग प्रायः वसन्त ऋतु में होता है। एक बालक के होते ही संक्रामकता के कारण अड़ोस पड़ोस के बालकों के भी हो जाता है। पहिले यह रोग प्रायः मारक होता था, पर, अब उतना मारक नहीं होता। इसकी रोक के लिये जेनर साहब का टीका अच्छा प्रतिषेधक उपाय है। इससे वसन्तरोग का विशेष भय नहीं रहता। जिन्हें इस रोग पर देवता की भावना है उन्हें हम कुछ नहीं कहना चाहते। पर हम इसे रोग मानते हैं। देखा भी जाता है कि जो इस रोग का प्रतीकार नहीं कर पाते, वे बच्चों को नेत्र, नासा, कर्ण, वाणी हीन ही नहीं जीवनहीन तक कर डालते हैं। अबोध बच्चों पर यह पूरा अत्याचार है।

जिन्हें टीका लगवाना हो उन्हें भी समय पर टीका लगवाना चाहिये। असमय का टीका लगवाना अच्छा नहीं।

टीका लगवाने के लिये जाड़े का समय विशेष अच्छा है, इसमें बालक को विशेष कष्ट नहीं होता। दूसरा समय बालक की तीन मास की अवस्था है। पहिले समय में टीका लगवाने से आगामी वसन्त में रोग का भय नहीं रहता और दूसरे समय पर लगवाया जाय तो दाँत निकलने के समय तक बालक बलिष्ठ हो जाता है। फिर उसे दाँत के रोगों के लिये भी विशेष बाधा नहीं होती।

बालकों की मृत्यु-संख्या एक वर्ष के भीतर बहुत अधिक होती है और यह बात यद्यपि सर्वत्र के लिये है तथापि भारत में यह संख्या बहुत अधिक है। इसका कारण देश की दरिद्रता, रोगों की अधिकता, और बालकों के भरण पोषण के यथार्थ ज्ञान का अभाव है। बड़ी अवस्था में जब फी हजार २५ पुरुषों की मृत्यु होती है तो एक वर्ष के भीतर २०० छोटे बालक मृत्यु मुख में पतित होते हैं। यह मृत्यु-संख्या छः मास के भीतर और भी अधिक होती है। भारत में वर्तमान समय में यह मृत्यु संख्या फी हजार ३०० से ऊपर होजाती है। व्याधि-ग्रस्त मातापिताओं की संतान बहुत छोटी अवस्था में मरती हैं। क्यों कि अनेक रोगों का संक्रामक विष बहुत छोटी अवस्था में ही मारक असर करता है।

बालकों को जो व्याधियाँ होती हैं वे कुछतो जन्मज होती हैं, कुछ शरीर गठन की, कुछ स्वाभाविक, कुछ आहार-परिणाम की और कुछ प्रज्ञापराध की। इन व्याधियों के लिये व्याधि-कारणों या पीड़ाओं का निराकरण करना ही मुख्य चिकित्सा है। अगले भाग में हम संक्षेप में उन व्याधियों का वर्णन करेंगे और चिकित्सा का भी दिग्दर्शन करेंगे। आशा है कि चिकित्सक-गण उस के अनुसार चिकित्सा करके अबोध बालकों का कष्ट निवारण करेंगे।

कुमार-कल्याण बटी।

बालकों को जो बात बात में कमजोरी कफ, खाँसी, दस्त, कै, बुखार, पसुली, पेटकी खराबी, सरदी गरमी से अनेक व्याधियाँ होजाती हैं, उन्हें नष्ट करने की यह अनुभूत दवा है। एक महीने के बच्चे से ५ बरस की उमर के बच्चे तक को दी जाती है। बाल-बच्चेवाले इसे बड़ी चाह से घरमें रखते हैं, जिससे उनके बच्चे तकलीफ से बचते हैं और वे फजूल खर्च से। ३०० गोली की डब्बी का दाम १)

जगद्भास्कर औषधालय

नयागञ्ज,—कानपुर

रोग-परीक्षा ।

किसी भी रोग की जब चिकित्सा करनी होती है तब चिकित्सक को उसकी परीक्षा करनी होती है। यथार्थ रोग-ज्ञान किये बिना रोग का दूर करना बिलकुल असंभव है। बड़े पुरुषों की रोगपरीक्षा जितनी सरल है बालकों की रोग-परीक्षा उतनी ही कठिन है। बड़े आदमी से आप जो प्रश्न करेंगे उसका उत्तर मिलेगा, पर बालक उन में से किसी बात का उत्तर न देसकेगा। फिर बड़े आदमियों के रोगों से बालकों के बहुतसे रोग भिन्नहीं होते हैं, जिन के लिये प्रत्येक चिकित्सक को अपनी भिन्न प्रकार की योग्यता सम्पादित करनी पड़ती है। चिकित्सक अपनी योग्यता से बालकों के बहुतसे रोगों को उनकी आकृति प्रकृति से और पोषकों के कहने सुनने से अनुमान करता है। बालकों के अङ्ग प्रत्यङ्ग की परीक्षा उस प्रकार होना असंभव है जैसे कि बड़े पुरुषों की। आप को जिव्हा देखनी है, क्या छोटा सा बालक आप की आज्ञा पातेही जीभ निकाल देगा? कदापि नहीं। ऐसी दशा में यदि बालक रोता है तो वह मुंह फाड़कर रोता है; इसलिये टेढ़े सीधे होकर या झुक कर चट पट जीभ देखलीजिये। यदि बालक रोता नहीं और मुंह भी नहीं खोलता तो उसे किसी चीज के खिलाने के बहाने मुंह खुलाइये और झट से जीभ देख लीजिये।

इस प्रकार बालक को बहला फुसला कर, खिलौना देकर किसी प्रकार भी उस के अङ्ग प्रत्यङ्ग और रोग की परीक्षा की जासकती है। इस कार्य के लिये कोई विधि-विहित नियम निर्णीत नहीं होसकता। वास्तव में चिकित्सक को बालक के निदान-निर्णय में बालक की प्रकृति, समय और चेष्टाओं को देखकर बड़े अध्यवसाय से काम लेना पड़ता है। जहाँ पर पीड़ा विशेष होती है वहाँ पर सोतेहुये या सम्मोहनविधि से अचेत किये हुये बालक की परीक्षा करनी होती है। सोतेसमय बालक की रोग-परीक्षा सहज और ठीक होती है। उस समय देखना चाहिये कि बालक को श्वास कैसा आता है? उस के अङ्ग प्रत्यङ्ग किस भाव से, किस ओर, कैसे रक्खे हुये हैं? अमुक स्थल में पीड़ा या रोग होनेसे ही बालक इस आकृति में सोता है या अन्य कारणवश। बालक के मुख का वर्ण, चैतन्यभाव और प्रभा कैसी है, ओष्ठ सूखे हैं या सरस, देह के घर्म की क्या व्यवस्था है, सूजन कहाँ कहाँ है, श्वास रुककर आता है; श्वास निद्रा का है या बेहोशी का, छूने से वह रोता है या चमक उठता है, सोते समय दाँत किरकिराता है या नहीं, आँखें ठीक बंद हैं या नहीं, बार बार करवट बदलता है या नहीं, ऐसी बातें बालक के सोते समय अच्छी प्रकार जानी जासकती हैं।

नाड़ी पर अँगुली रखकर उसकी गति का भी ध्यान पूर्वक निरीक्षण करना चाहिये। नाड़ी कैसी चलती है, किस दोष की चलती है, परिमाण से अधिक चलती है, या न्यून, उष्ण है या शीत? जबतक बालक की सोते समय परीक्षा की जाय तबतक उसे जगाने का जरा भी प्रयत्न न किया जाना चाहिये। कुछ मनुष्यों (या माताओं) का नियम है कि वे चिकित्सक को देखतेही सोते हुये बालक को फौरन जगाकर दिखाने को दौड़ते हैं, पर यह बात मूर्खतापूर्ण है। सोते समय परीक्षा में जो सुविधा होती है वह जागने पर या एकाएक जगाने पर नहीं होती।

यदि जगाने की आवश्यकता हो तो उसे बहुत धीरे धीरे जगाया जाय और जगते समय उसके चेहरे की उदासी या बेचैनी, नेत्रों का भाव, नासिका की तरी या खुश्की, और स्वर की दशा पर ध्यान देना चाहिये।

यदि शरीर की परीक्षा करनी हो तो बालक के कपड़े हटा कर चर्म का रङ्ग, गरमी सरदी, फोड़े फुंसी, शोथ, मलमूत्र-द्वार, सन्धि (जोड़ों) और जोड़ों की ग्रन्थियों की दशा पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

मुख के भीतर देखना हो तो अपने सामने बालक की माता को बैठाकर उसकी गोद में बालक को लिटा दे और दोनों

हथेलियों से बालक की कनपटियों को थामले। यह काम माता करे या चिकित्सक, दोनों कर सकते हैं। जब बालक इस प्रकार वश में हो जाय तब उसके मुख में अँगुली डालकर दाँत मसूढ़े जिव्हा और मुंह के छाले आदि की परीक्षा की जा सकती है। इस परीक्षा में बालक के निश्चल हो जानेसे परीक्षा सहज में हो जाती है। यदि बालक विशेष चञ्चल और बलिष्ठ हो तो उसके हाथ पैर पकड़ने के लिये तीसरे मनुष्य की भी जरूरत पड़ती है।

रोगी के फुप्फुसों की परीक्षा की आवश्यकता हो, तो ठोक पीटकर देखने से प्रथम कानों से उसके शब्द का ज्ञान कर लेना विशेष अच्छा है। शब्दतीव्र हो तो फुप्फुसों के पास कान लेजाकर, या अँगुली टेककर परीक्षा कर लेनी चाहिये। पर शब्द मन्द हो तो आकर्णनयंत्र (स्टेथिस्कोप) द्वारा यह परीक्षा सहज में हो सकती है। यंत्र द्वारा परीक्षा करनी हो तो—यंत्र चाहे पीठपर लगाया जाय चाहे छाती पर—रोगी को बैठाकर या करवट से लिटाकर परीक्षा करना उत्तम है। औंधा लिटाने से पेट दबकर रोगी की श्वासक्रिया विकृत हो जाती है और सीधा लेटा रहने से भी कुछ दबजाने से फुप्फुसों का शब्द यथार्थ नहीं मालूम होता। यंत्र भी ऐसी जगह लगाया जाय, जहाँ से फुप्फुस पास पड़ें। यंत्र के व्यवधान में पसुली की हड्डियाँ न आजायँ, नहीं तो शब्द का यथार्थ ज्ञान ही न होगा।

जिस प्रकार रोगी अपनी वर्त्तमान दशा में यथेष्ट श्वास प्रश्वास लेता रहे उसी प्रकार परीक्षा करना सर्वोत्तम है।

यंत्रकी अपेक्षा खाली और ठोसपन जानने के लिये अंगु-लियों से ठोककर शब्द जानलेने की विधि सुगम और अच्छी है। पर जरा होशियार बालक ठोंकने की गति देखकर घवरा भी सकता है। वैसी दशा में वह भयभीत हो, टेढ़ा मेढ़ा हो या चिल्ला उठे तो वह क्रिया निष्फल होजाती है। रोने में भी यह क्रिया निष्फल होजाती है। ऐसी दशा में आकर्णन यंत्र द्वारा परीक्षा करना ही ठीक है। यदि बालक रोनेही लगजाय तो उसे बहलाना चाहिये। कदाचित् वह न बहल सके तो जब जब वह रोते समय बीच में श्वास ग्रहणकरे, तब तब यंत्र से उस का श्वास-शब्द सुनना चाहिये।

जिस आकर्णन यंत्र का नाम हम ऊपर देआये हैं वह बड़े शहरों की डाक्टरी दुकानों में प्रायः ष्टेथिस्कोप कहने से मिलते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं। दो-नलीवाला अच्छा होता है और वह ४-५ रुपये में मिलता है। इस यंत्र द्वारा श्वासों की गिनती करनी चाहिये। प्रायः बालक को प्रति मिनट में—जन्म समय ३२ से ३६ बार और कुछ दिन बाद २८ से ३० बार तक श्वास आता है। कभी कभी इस गणना में फर्क भी पड़जाता है। आप देखेंगे कि कुछ बालक स्वेच्छा से कभी कभी आधी

मिनट तक श्वास को रोकलेते हैं और बाद में जल्दी जल्दी श्वास लेने लगते हैं। यदि दैवात् यही घटना परीक्षा के समय घटी तो श्वास की संख्या का यथार्थ ज्ञान होना असंभव है।

बालकपन में जिस प्रकार श्वास की संख्या विशेष होती है उसी प्रकार दिल की धड़कन और नाड़ी की गति भी अधिक होती है। कभी कभी बालक चिकित्सक या अजनबी आदमी को देखकर भयखाता है। ऐसी दशा में नाड़ी और भी अधिक चलने लगती है और ऐसी दशा में उसकी संख्या भी नियमित नहीं रहती। इससे चाहे श्वास-परीक्षा हो चाहे नाड़ी-परीक्षा दोनों ही बालक के सोते समय करना विशेष उपयोगी है। जन्म से कुछ मास तक नाड़ी की चाल प्रति मिनट १२० से १४० तक रहती है और दूसरे वर्ष १०० से १२० तक। इसी प्रकार ज्यों ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती है त्यों त्यों नाड़ी की गति और श्वास की संख्या कम होती जाती है। किसी किसी रोग में इससे व्यतिक्रम भी हो जाता है। जैसे-दाँत निकलते समय नाड़ी की गति संख्या का कम होना। क्षय के आरम्भ में नाड़ी की गति कम होना, परन्तु क्षय की दशा में उसी का द्रुत गति होना अथवा विषमगति होना। यह दशा स्वस्थावस्था में नहीं होती। तब भी नाड़ी या श्वास-संख्या की न्यूनाधिकता से रोग परीक्षा में बहुत बार विशेष सहायता मिलती है, यह बात आगे निदान में प्रायः वर्णन की जायगी।

तन्दुरुस्ती में श्वास-संख्या से नाड़ी की संख्या प्रायः ३॥ या ४ गुनी रहती है। पर किसी समय रोग-विशेष में कुछ काल के लिये यह नियम टूट जाता है। यदि श्वास-संख्या ६० हो और नाड़ी की चाल प्रति मिनट १२०-१४० हो जाय तो समझना होगा कि रोगी को श्वास की पीड़ा है। स्मरण रखना चाहिये कि वक्षोविकृति, अस्थि-विकार स्नायवीय पीड़ा आदि में प्रायः ऐसा हो ही जाता है। यदि श्वास-संख्या में अधिक, शीघ्रता से और कष्ट से हो तो समझना चाहिये कि बालक को फलगु (इन्फ्लुएञ्जा) कर्कोटक (न्यमोनिया) शीत कास (ब्रोंकाइटिस) या फुप्फुसकला-विकार (प्लूरसी) आदि कोई भी फुप्फुस-विकार है।

जरा सबोध बालक के हृत्पिण्ड की परीक्षा करना सहज काम नहीं है। बालक के विचलित या अधीर होने के कारण भी दिलकी चाल में अन्तर पड़ता है। आकर्णन यंत्र से उसकी चाल का कुछ अनुभव किया जा सकता है, पर, वह भी धीरे से। यंत्र को विशेष दबा देने से भी उसका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। अधिक दबने से यंत्र केवल श्वासगति बताने के कारण सायँ सायँ करने लगता है।

कण्ठ की परीक्षा करनी हो तो कण्ठवीक्षण यंत्र (लेरिङ्गस्कोप) से करना चाहिये। पर, बालकों की कण्ठ परीक्षा शा-

यदही इससे होसके, क्योंकि उनका यंत्र लगाने देनाही सर्वथा असम्भव है। इससे बालकों की कण्ठ-परीक्षा उनके रोने के शब्द या गले की आवाज़ से जान लेनाही सुकर है। मुंह खोल कर छोटी चम्मच का डण्डा या अंगुली से जीभ दबाकर भी गले की और कव्वे (जो भीतर गले में लटकता है) की परीक्षा कर सकते हैं, नाक पकड़कर बालक का मुंह खुला सकते हैं। पर कभी कभी बालक की जिद के आगे ये सभी उपाय निकम्मे पड़ जाते हैं।

कभी कभी बालकों के फुप्फुसों या फुप्फुस-कला से एक अस्पष्ट और विचित्र शब्द निकलता है जो बड़े पुरुषों में नहीं पाया जाता। फिर छोटे छोटे बुल्ले फूटने का सा शब्द सुनाई देता है वह श्वास छोड़ते समय ही सुनाई देता है, श्वास लेते समय नहीं। जन्म से लेकर २ वर्ष के भीतर बालकों की श्वास क्रिया पेटपर अधिक क्रियाशील रहती है। इससे श्वास लेते समय पँसुलियों के पास बालक के पेट में गड्ढा पड़े या कुछ तनाव हो तो उसे फुप्फुस-विकार समझना चाहिये। इसी प्रकार बालक के कपाल के अधिपति मर्मपर या छाती की धुक-धुकी पर भी ध्यान रखना चाहिये। इनमें यदि विशेष गड्ढा पड़ता हो तो बालक को विशेष कमजोर और क्षयाक्रांत समझना चाहिये।

यों तो शारीरिक ताप की परीक्षा नाड़ी-ज्ञान और शरीर

स्पर्श से ही की जा सकती है, पर प्रत्येक चिकित्सक तापमान यंत्र (थर्मामेटर) से भी कर सकते हैं। थर्मामेटर प्रत्येक हाथ पैर और गलकी संधि में लगाया जा सकता है (समझदार-बड़ी उमर वाले-बालक के मुंह में (जीभ के नीचे) भी लगाया जा सकता है। पर छोटे बालक के मुंह में न लगाकर गुदद्वार में लगाना विशेष अच्छा है। जन्म दिन के अहोरात्र में बालक का शरीर ताप १००—४ डिग्री रहता है, दूसरे दिन ९८—६ डिग्री हो जाता है। फिर वह स्थायी होकर ९८ से ९९—५ तक प्रायः रहता है। यह परिमाण स्वस्थ अवस्था का है। बीमारी की हालत में यह बढ जाता है)

बालकों की मूत्र-परीक्षा होना असम्भव है। क्योंकि उनके मूत्र के संग्रह का कोई उपाय ही नहीं। बड़ी आवश्यकता हो तो चतुरता से मूत्र शलाका द्वारा ग्रहण किया जा सकता है पर बालिकाओं के शलाका द्वारा प्रयोग न कर स्पञ्ज के टुकड़े को जननेन्द्रिय के पास लगा रखना चाहिये और मूत्र कर देने पर उसी स्पञ्ज के टुकड़े से मूत्र निकालकर वर्ण आदि देख लेने चाहिये।

इसी प्रकार बालकों की मल-परीक्षा भी जरा कठिन है। बालक बिछौने में मल परित्याग करते हैं, तत्काल ही मूत्र कर देते हैं इससे उनका भिन्न भिन्न रखना और परीक्षा करना

दुष्कर है (थोड़े दिनों तक केवल दूध पीते रहने से बालकों का मल गन्धरहित, कुछ पीला, कुछ हरा, कीट सरीखा, चिकनाहट चमक लिये होता है। किसी किसी बालक को गहरा पीला होता है। पर, मल विशेष पतला, काला काला, फटा हुआ, दुर्गन्धित और परिमाण में होता हो तो उसे पेट के विकार से समझना चाहिये। बालकों के मल की परीक्षा तत्काल ही ठीक होती है। देरी में मल का वर्ण बहुत शीघ्र पलट जाता है। पेट के विकार से बालक बहुत शीघ्र सूखने लगता है। बदहजमी से फटे दस्त आया करते हैं, आँतों के विकार से मल थोड़ा गाँठदार काला और कफ मिला हुआ आता है। यकृत् की क्रिया मन्द होने से मल खाकी, कीचड़ जैसा, कुछ लाल वर्ण भी होता है और फूला हुआ होता है। अन्न विकार की अधिकता, मोतीझरा, आमातीसार, रक्तातीसार, बालशोष रोग में बालक को लाल रङ्ग का मल उतरता है और उसमें कुछ टुकड़े से होते हैं। केवल पाचकरस विकृत होने से मल का रङ्ग हरा होता है और यकृत्, पाचकरस, जठराग्नि तथा आँतों की क्रिया खराब होने से मल में चिकनाहट आती है।)

बालकों का रोना ही विशेष रोग का सूचक समझा जाता है। पर रोना अनेक कारणों से हो सकता है। इस लिये रोने का कारण भी प्रत्येक चिकित्सक को ध्यान पूर्वक देख लेना चाहिये। रोने के साथ खाँसना, रह रहके रोना, रोते समय

स्वर का बैठना इत्यादि से कई बार रोग परीक्षा हो जाती है। रोते समय ऐंठना या हाथ पैरों को पेट की ओर सिकोड़ना पेट के दर्द का चिन्ह है। जो बालक समझदार है उसका कोई भी अङ्ग स्पर्श करके पूछा जा सकता है कि उसे कहाँपर दर्द मालूम होता है। पर यह बात भी कभी कभी विफल पड़जाती है, सिरके दर्द में बालक पेट का दर्द बताने लगता है। किसी स्थल को छूकर यदि पूछा जाता है कि यहाँ दर्द है ? तो उत्तर मिलता है–' हाँ है , पर जरा देरमें पूछो कि यहाँ दर्द तो नहीं है तो कहता है–' नहीं है , ऐसे समय की समस्या चित्त को विश्वास नहीं दिला सकती। इससे ऐसे सभय बड़े अध्यवसाय से काम लेना चाहिये। यदि सोते हुये बालक का अङ्ग दबाकर दर्द की परीक्षा की जाय तो विशेष अच्छा है।

सोते समय छोटा बालक अपने हाथों पैरों को ऊपरी तरफ सिकोड़कर सोता हो तो समझना चाहिये कि यह उसका स्वाभाविक शयन है। क्योंकि यह ढङ्ग उसका गर्भ-काल में सीखा हुआ है। और ढङ्ग से यदि बालक सोता हो तो उसके किसी प्रकार के रोग की सम्भावना हो सकती है।

शुश्रूषा ।

रोगावस्था के समय बालकों की सेवा शुश्रूषा करने के लिये होशियार आदमी की आवश्यकता है। जो बालक की स्वाभाविक बातों से खूब वाकिफ हो, बालक जिसके लालन पालन से प्रसन्न हो, बालक को हँसाकर, बहकाकर या धमका-कर जो औषधि या आहार का उपयोग करा सके और बालक पर प्रेम रखता हो; वही व्यक्ति इस सेवाकार्य के लिये विशेष उपयुक्त माना जा सकता है। यद्यपि ये सद्गुण विशेषतया माता पिता में ही मिलते हैं, परन्तु कभी कभी प्रेमकी अधिकता के कारण उनके यथार्थ सेवक भाव दूर हो जाते हैं। अधिक प्रेम रखने वाले माता पिता बालक के दुःख से अधिक कातर होकर दवा देना, पथ्य देना, मलहम पट्टी कराना भूल जाते हैं, या करते तक नहीं। यह प्रेमातिरेक रोगी बालकों के लिये कभी कभी तो प्राणघातक तक हो सकता है। इस लिये बालकों की रोगावस्था में दूसरा व्यक्ति ही सेवा शुश्रूषा करे तो विशेष अच्छा हो सकता है।

सेवक के लिये नीचे लिखी बातों का परिज्ञान होना बहुत ही जरूरी है।

१–बालक का स्वभाव कैसा है।

२-रोगकी क्या दशा है। दिन रात्रि में बालक की कौन कौन दशा परिवर्तित होती है।

३-बालक किस प्रकार औषधि अथवा आहार का उपयोग सुख से कर सकता है।

४-बालक की स्वभावप्रिय कौन कौन वस्तु हैं।

५-बालक सुख से किस प्रकार सो सकता है।

६-चिकित्सक रोगी के लिये क्या क्या हिदायतें बतला गया है, उनका सदुपयोग और फलाफल पर ध्यान रखना।

७-चिकित्सक से सभी बातें ठीक ठीक बता देना।

८-आवश्यक बातों के विषय में चिकित्सक से पूछ लेना।

इन सब बातों के अतिरिक्त बालकको अधिक वायु, अधिक धूप, रोशनी या ठण्ढ की जगह में रखना। मुंह खुला रखकर सुलाना। उस मकान में कोई तीव्र शब्द न होने देना। पथ्य देते समय यह विशेष रूपसे ध्यान रखना कि यह पथ्य बालक हजम कर सकेगा या नहीं। बालक के कपड़े-चाहे वे मल मूत्र के लिये ही बिछाये जाते हों-सदा स्वच्छ होने चाहियें। मैले कपड़ों का प्रयोग करना भी बालक के रोगों को एक प्रकार अवसर देना है।

पथ्यापथ्य।

बालकों का प्रधान पथ्य दूध है। उससे उतरकर अन्न की कोई मुलायम बनी हुई चीज खिचड़ी आदि हो सकती है।

साधारणतः इस विषय में हम प्रथम ही लिख आये हैं। यह लिखना उसके लिये पिष्टपेषण मात्र है। रोगावस्था में जैसा भी अवसर हो; पथ्य की विशेष आज्ञा चिकित्सक से ले लेनी चाहिये। रोगावस्था में—सागूदाना, दूध, खिचड़ी, लाजमंड, मुद्गमंड प्रायः दिये जा सकते हैं। पर कौनसा पथ्य बालक को उस समय देना उचित होगा, यह बात बर्त्तमान चिकित्सक निर्धारित कर सकता है। तथापि रोगावस्था के विशेष अवसरों पर आगे चलकर कहीं कहीं हमें उचित जचेगा तो विशेष व्यवस्था भी लिखेंगे, उसपर पाठकों को अवश्य लक्ष्य रखना चाहिये।

संक्षिप्त

निदान और चिकित्सा।

सद्योजात रोग।

बालक के जन्म के समय प्रसूति के दश दिनों के भीतर जो रोग हो उसे सद्योजात कहते हैं।

अकालजन्म।

जिस बालक का गर्भकाल पूर्ण न हुआ हो; उसके जन्म

को अकालजन्म कहते हैं। अकालजन्म में बालक अनेक रोगों से युक्त और जीवन-शक्तिहीन पैदा होता है। अकालजन्म में बालक के शरीर का वजन स्वाभाविकता से कम (तीन पाव से कम) होता है। समय की न्यूनता से उसमें कभी कभी अङ्ग प्रत्यङ्गों की कमी या विकृति और जीवन-शक्तिहीनता होती है। जैसे-८ मास के बालक का जन्म संदेहयुक्त होता है। इसी प्रकार यदि जन्म के समय बालक यथार्थ स्वर से रो न सके, उसकी नाड़ी न चलती हो, सुस्त और चुप चाप पड़ा रहे, बहुत ही कमजोर श्वास लेता हो, दूध पिये ही नहीं, शरीर की गरमी ८२-८ से ८६ डिग्री ही रखता हो, मुंह सूखा, चेष्टा-मुखप्रभाहीन हो, जिसके नख, चर्म, मलद्वार, जननवंत्र विकृत हों उस बालक का जीवन शक्तिहीन समझा जाता है। किन्तु ऐसी दशा में जन्म होते ही बालक को यथाशक्ति साफ करके रुई के गालों या फलालेन आदि में लपेट कर सुरक्षित रूप से रखना चाहिये। यदि वह मुखसे दूध न ले तो यन्त्र द्वारा नासिका से दूध पहुँचाया जा सकता है। इस प्रकार जिस प्रकार बने उसकी जीवन रक्षा-करनी चाहिये, किन्तु इतने पर भी जीवनशक्तिहीन बालक का जीवन रक्षित होना प्रायः मुश्किल पड़ जाता है।

नाभि-रोग।

नाभिनाल काटने की असावधानी, काटने वाले यंत्र शस्त्रों

की खराबी, जलसंयोग आदि अयथोपचार या ऐसे ही कारणों से बालकों के नाभिशुण्ड, नाभिपाक, नाभि–स्राव, नाभि–व्रण, आदि रोग पैदा होते हैं। नाभि काटते समय यदि नाल खिचता है तो नाभि गभीर न होकर बाहर निकल आती है और वह हाथी की सूंड की तरह बाहर लटकी रहती है, उसे नाभि शुण्ड कहते हैं। नाभि नाल काटने पर यदि उसके सुखाने का प्रयत्न पूरा न हुआ हो तो नाभि–पाक आरम्भ होजाता है और कुछ काल में इसी के संक्रामक विष से नाभि–व्रण होजाता है। कभी कभी नाभि से इस प्रकार पाक होकर मवाद नहीं, रक्त बहने लगता है, या पीला पीला पानी सा अथवा पीपही बहनें लगती है तो इसे नाभिस्राव कहते हैं।

नाभिशुण्ड में नाभि को हाथ से दबाकर–यथास्थान बैठाकर एक गद्दी रखकर पट्टी बाँध देना चाहिये। अथवा नाभि बैठाकर उसपर यदि स्राव मालूम हो तो पठानीलोध और सङ्जराव का बहुत बारीक चूर्ण भरकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। यदि उसमें व्रण और संक्रामकता के कारण कुछ कृमिदोष मालूम होता हो तो कृमिघ्न चीजें–कपूर, बायबिड़ङ्ग, कबीला, जस्ते की भस्म आदि चीजें–बारीक पीसकर उनका प्रयोग करना चाहिये। इन प्रयोगों में पट्टी बाँधने की ही विशेष आवश्यकता है। पट्टी के उचित रूप से बाँधने और सँभाल रखने से ही ये रोग सहज में दूर हो सकते हैं।

अभिष्यन्द ।

कभी कभी २।४ दिनके पैदा हुये बच्चों के भी नेत्रों में अभिष्यन्द रोग पाया जाता है। पाश्चात्य चिकित्सकों का कथन है कि यह रोग आतशक और सूजाक से दूषित माता पिता की सन्तानों के ही विशेष पाया जाता है। पर साधारणतः भी गर्भ के मल या माता की जननेन्द्रिय के दूषित मल (जरायु) द्वारा नेत्रों के संसर्ग होने से यह अभिष्यन्द हो जाता है। इससे बालक नेत्र नहीं खोल पाता, नेत्रों में बार बार पानी या कीचड़ आता है। पानी का रङ्ग पीला, लाल या मवाद जैसा होता है। आँखें लाल, गँदली रहती हैं। आँखों के पपोटे सूज जाते हैं, विशेष कर ऊपर के पटल में अधिक सूजन होती है।

इस रोग में नेत्रों का मल बार बार साफ करते रहना चाहिये। मल साफ न करने से कभी कभी अक्षिगोल में व्रण हो जाता है, जिसका आरोग्य होना कष्टसाध्य ही होता है। जहाँतक बने आँख को कुछ खोलकर १५-१५ मिनट पर रुई के गाले से पोंछता रहे। नेत्रों की मल शुद्धि का दूसरा उपाय यह भी है कि भभके के पानी में फी सदी ५ भाग सुहागा मिला दे और इस पानी को १५-१५ मिनट में ५-५ बूंद आँख में डालता रहे। इस प्रकार नेत्र का मल सहज ही में शुद्ध हो जाता है। ऊपर के जल की भाँति सूजन कम हो जाने पर

काष्टिक लोशन का भी व्यवहार किया जासकता है। आराम होने पर बालक नेत्र खोलकर देखने लगता है। जब तक आराम न हो जाय तब तक बालक को अंधेरे में रखना चाहिये।

यह रोग यदि बालक के जन्म से ३।४ सप्ताह देरी से हो तो सुखसाध्य होता है। बहुत छोटे (२।४ दिन के) बालक के होना रोग की दुःसाध्यता का लक्षण है।

धनुष्टंकार।

यह भी बालकों को प्रायः छोटी अवस्था में ही होता है। इसे करेड़ा भी कहते हैं। यह एक प्रकार का वातरोग है। पर, पाश्चात्य चिकित्सक इसे संक्रामक मानते हैं और उनका कहना है कि यह रोग प्रायः नाभिरोग-ग्रस्त बालकों को होता है। नाभिरोग के जीवाणु या बाहरी धूल, राख, माटी में मिले हुए जीवाणु इस रोग के उत्पादक हैं। इस रोग में हाथ पैर पीछे ऐंठते हैं, सबसे प्रथम अर्दित रोग की तरह मुखमण्डल के स्नायुजाल पर इसका असर होता है। यदि इस रोग का दौरा दूध पीते समय हुआ तो बालक मुख में लगे हुये आँचर को काटता है। उसकी मुखाकृति हँसने कीसी मालूम होती है। पर धीरे धीरे वह धनुष की तरह ऐंठकर लकड़ी होजाता है। जबड़ा कभी बन्द होता है पर अकसर खुला रहता है। श्वास बड़ी मुशकिल से आता है। नाड़ी की गति मन्द या

क्षीण होजाती है। शरीर में इतनी जबरदस्त पेंठन होती है कि यदि बालक कुछ भी होश में होता है तो चीख उठता है। शारीरिक उत्ताप १०४ से १०७-६ फारनहीट तक हो जाता है। दौरा शान्त होनेपर नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। बालक का मुखमंण्डल पसीने से गीला और कुम्हिलायासा हो जाता है। कभी कभी यह दौरा कई मिनट तक रहता देखा गया है। दौरे के समय बालक की विशेष सँभाल रखनी चाहिये। उस समय उसे पटक देना, दबाना या घबराकर उलटा सीधा करना बड़ा बुरा काम है। दौरा शांत होनेपर बालक को दूध पिलाना और बलकारक औषध देना उचित है।

इस रोग में वातरोग के अधिकार में लिखे हुये चिन्तामणि, कृष्ण या रक्त चतुर्मुख, कस्तूरी भैरव और मकरध्वज रस दिये जा सकते हैं। बालक के सर्वाङ्ग में नारायण तैल और बालक विशेष कृश हो तो माषादि तैल का मर्दन करना चाहिये।

रक्तातिसार।

यह रोग बहुत कम होता है। उन्हीं बालकों को प्रायः होता है जिनका आमाशय और पक्वाशय ठीक नहीं है। आमाशय की विशेष विकृति से कभी कभी वमन में भी रक्त आ जाता है। पर, पक्वाशय की विकृति से केवल दस्तों में ही खून आता

है। यह खून काले रङ्ग के दस्तों के साथ आता है। कपड़े पर मलके लगने पर रक्त का धब्बा अलग ही दिखाई देता है। इस रोग में बालकों के हाथ पैर ठंढे पड़ जाते हैं। १०० में ५०–६० की मृत्यु हो जाती है।

इस रोग में कच्ची बेलगिरी, अतीस, माजूफल, दुधिया-बच और पाढ़ का चूर्ण १ रत्ती से ४ रत्ती तक अवस्थानुसार देते रहना चाहिये। दूध की मात्रा कम कर देनी चाहिये, जिससे वह सहज में पच जाय। बालक को निद्रा और आराम देने का विशेष आयोजन करना चाहिये। बालक के लिये मकरध्वज अथवा केवल केशर का प्रयोग भी अच्छा रहता है।

निर्माण-विकार।

ईश्वरेच्छा से, माता पिता की कुचेष्टा से या कर्मदोष से कभी कभी बालकों के शरीर या अङ्ग प्रत्यङ्गों में भिन्न भिन्न प्रकार के निर्माण-विकार देखने में आते हैं। जैसे–किसी भी अङ्ग प्रत्यङ्ग का विकृत होना, छः अङ्गुली हो जाना, कुबड़ापन, रावणखण्डापन, मुंह का टेढ़ापन, दो अङ्गों का जुड़जाना इत्यादि।

इन रोगों का कोई नियमित रूप नहीं, नियमित चिकित्सा नहीं। इससे इनका वर्णन करके हमें पुस्तक का व्यर्थ आकार

बढ़ाना अभीष्ट नहीं है। इसी से हम इस विषय को यहीं पर समाप्त करते हैं।

संक्रामक रोग।

कुछ रोग ऐसे होते हैं जो एक व्यक्ति से किसी न किसी प्रकार से दूसरे व्यक्ति में पहुँच जाते हैं। उनका यह संक्रमण देश, जल, वायु द्वारा भी होता है और स्पर्श या सहभोज सहवास द्वारा भी। कीटाणु-शास्त्रज्ञ पिछलामत मानते हैं और उनका कहना है कि गरद, गुब्बार, स्पर्श आदि से रोगों के उत्पादक कीटाणु श्वास, रोमकूप, भोजन या घावों के मार्ग से एक व्यक्ति से दूसरे के देह में पहुँच जाते हैं। ऐसे ही संक्रामक रोग एक से दूसरे पर संक्रमण करते रहते हैं। इस अधिकार में ऐसे ही संक्रामक रोगों का वर्णन आवेगा।

गुड़िका-ज्वर।

बालकों को यह ज्वर प्रायः होता रहता है। पूर्ण रूप से रूप व्यक्त होने में इस ज्वर में १२-१४ दिन लग जाते हैं। जब तक दाने नहीं निकलते; यह ज्वर साधारण ही समझा जाता है। घर या पड़ोस में किसी बालक को यह ज्वर हुआ कि शीघ्र ही या देरी में दूसरे बालकों को भी हो जाता है। ज्वर के आरंभ में बालक को बड़ी बेचैनी रहती है। स्वभाव चिड़-

चिड़ा हो जाता है, खाँसी आती है, जुखाम होकर नाक बहने लगती है, अग्नि मन्द हो जाती है, आखें कुछ सूजी सी और गुलाबी रङ्ग की हो जाती हैं। कभी कभी नकसीर भी फूट जाती है और गले में गाँठें पड़ जाती हैं। शारीरक ताप १०० १००-४ फारनहीट् और कभी कभी १०२ डिग्री से भी कुछ अधिक देखा जाता है। इस ज्वरकी वृद्धि कभी कभी विचित्र होती है, एक बार चढ़कर कम हो जाता है फिर दूसरी बार चढ़कर दाने निकलने तक बराबर तेज रहता है। चौथे या पाँचवें दिन मुख पर कुछ दाने दिखाई देने लगते हैं, पर एक अहोरात्र ही में ये सारे शरीर में आगे पीछे निकल आते हैं। कभी कभी इन दानों का आरम्भ छाती से होता है और मुंह पर पीछे निकलते हैं। ये दाने कहीं बिरल और कहीं सघन होते हैं। दबाने से एक बार वे मालूम से हो जाते हैं, पर फिर उभड़ आते हैं। एक या दो अहोरात्र में जब तक पूरे दाने नहीं निकल आते, ज्वर की गति तीव्र रहती है। प्रातःकाल ज्वर कुछ कम रहता है पर मध्यान्होत्तर १०२ तक होजाता है। पर कभी कभी सायङ्काल भी हलका ज्वर ही देखा जाता है। दाना निकलने पर भी यदि ज्वर तीव्र हो, खाँसी और जुकाम अधिक मालूम हो तो शीतकास और न्यूमोनिया का अनुसन्धान कर लेना चाहिये। इनके होने से रोग असाध्य हो जाने का भय रहता है। ये दाने निकलकर ३।४ दिन में ही शांत होजाते हैं। कुछ दिन तक उनका केवल दाग़ रह जाता है।

हमारे देश की स्त्रियाँ इसे प्रायः माता (चेचक) में ही गिनती हैं। बालक के ज्वरित होने और दाने निकलने पर वे उसे माता कहकर ही अपने अभीष्ट उपचार करती हैं। ज्वर रहते भी इस रोग में बालक कभी कभी खेलता ही रहता है इससे इसे स्त्रियाँ 'खेलनी माता' कह देती हैं। हमने इसे वसन्त (चेचक) रोग में इस लिये नहीं माना है कि इसके दानों में पीव नहीं पड़ती, न चमड़ा उधड़ता है। इस में जब अधिक ज्वर हो जाता है तो कुछ बालक अचेत हो जाते हैं, श्वास अधिक बढ़ जाता है, सरदी के लक्षण दिखाई देते हैं और खाँसी जोर पकड़ जाती है। स्वर साधारणतः क्षीण हो जाता है और मुंह की भीतरी झिल्ली लाल पड़जाती है। रोग में दस्त आना या दस्तों में खून आना इस रोग का उपद्रव होता है। इस उपद्रव से कभी कभी नाड़ी भी गिर जाती है।

इस ज्वर की हलकी अवस्था में चिकित्सा की विशेष आवश्यकता नहीं है। रोगी को गरिष्ठ चीजें खट्टे पदार्थ और भर पेट न खिलाना चाहिये। दूध, सागूदाना, कूटू के लावा या दाल का पानी पथ्य में देना चाहिये। ज्वर के लिये सञ्जीवनी वटी, ज्वरांकुश, अतिसार हो तो आनन्द भैरव, स्वच्छन्द भैरव शीतकास का उपद्रव हो तो कट्फल चूर्ण, यवक्षार, कल्पतरु रस सब चीजें पारी पारी से थोड़ी थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। छातीपर कपूर, घी, सैंधा नमक मिलाकर मर्दन करना

और गरम किये हुये हाथ से सेंकना चाहिये। दाने शांत हो जाने पर अतीसार हो तो केवल अतीस का चूर्ण शहद के साथ चटाना चाहिये। रोग के समय कास रहा हो और बालक निर्बल हो तो चौभुजी चटनी के साथ द्राक्षासव १ मास तक देना चाहिये।

रक्त ज्वर (लालबुखार)।

यह स्पर्श से विशेष फैलता है। इसके आरम्भिक काल में शरीर का वर्ण रक्त हो जाता है, दाने भी लालरङ्ग के ही निकलते हैं। ४।५ दिन बाद वे दाने सब मिलकर एक हो जाते हैं। यह ज्वर अभी भारत में नहीं हुआ है। २० वर्ष बाद सम्भव है कि भारतीय चिकित्सकों को इसकी चिकित्सा का अवसर मिले। यह संसर्गज और द्विदोपज व्याधि है।

जर्मनी की माता।

यह बहुत हलकी माता होती है। ज्वर भी इसमें साधारण १०० फारनहीट तक रहता है। कभी कभी इसके लक्षण लाल बुखार के जैसे होते हैं और दाने भी लाल निकलते, हैं पर अधिक लाल नहीं। हम इसे अपने यहाँ की माता के भेद में ही मानते हैं, अतः इसके लक्षण और चिकित्सा वसंत रोग के अनुसार ही मानना उचित है।

साधारण वसंत ।

कुछ बालकों को एक प्रकार की साधारण माता निकलती है । इसका जोर प्रायः ८ से १६ दिन तक रहता है । इस में कुछ मंदाग्नि, सामान्य ज्वर, भूखकी कमी, प्यास अरुचि, कब्ज, चिड़चिड़ापन होता है । १ या दो दिन बाद शरीर में जो दाने निकलते हैं उनमें अधिकतया जल ही रहता है । नये दाने ७।८ दिन में सूखकर झड़जाते हैं और उनके दाग़ अधिक नहीं होते । यदि ये दाने खुजला लिये जाँय तो घाव भी हो सकते हैं ।

साधारणतः इस रोग में बालक के पथ्य और शुश्रूषा में ध्यान रखना चाहिये, चिकित्साकी इसमें विशेष आवश्यकता नहीं है । यदि आवश्यकता भी हो तो सञ्जीवनी बटी और लोकनाथ रस से काम चलाया जा सकता है ।

टीके की माता ।

वसंत रोग (चेचक) के लिये जो बालकों की भुजाओं पर टीका लगाया जाता है उससे जो दाने उभड़ते हैं उन्हें टीके की माता कह सकते हैं । यह टीके के द्वारा शरीर में 'लिम्फ, लस पहुँचने से ही होता है । यह भारी चेचक न निकलने में बहुत कुछ सहायक होता देखा गया है ।

यह टीका जब बालक बलिष्ठ और स्वस्थ समझा जाता है तभी लगाया जाता है। जहाँ टीका लगाना हो (कुहनी और खवे की हड्डी की एक तिहाई दूरी पर) बायें हाथ के अँगूठे से जरा मल दे और छूरी पर थोड़ा लिम्फ-लस लगाकर उस स्थान पर रगड़ दे। रगड़ देने पर जब चमड़ा साफ हो जाय तब नश्तर से हलका चीरा सा लगादे। यदि यह कार्य अच्छी प्रकार हो जाता है तो दाने अच्छी प्रकार उठते हैं और उस समय नीचे लिखे लक्षण भी खासे होते हैं। पर टीके की क्रिया कम होती है तो वे लक्षण बहुत साधारणही होकर रहजाते हैं।

जिस जगह पर टीका लगता है तीसरे दिन उस जगह पर लाल छाला उठता है। इस छाले में प्रायः पहिले पानी होता है। फिर वह पककर मवाद हो जाता है। तब बीच में सफेद मवाद और चारों तरफ लाल लाल मण्डल होजाता है। यह मण्डल कड़ा होता है और दबाने से या छूने से दर्द होता है। यदि दाना की गुलाई इञ्च का एक तृतीयांश और लाल मण्डल का आकार एक या डेढ़ इञ्च का हो तो अच्छा उठान समझा जाता है। पकने पर इस दाने का मध्यभाग कटोरीकी तरह गहरा हो जाता है और किनारे ऊपर ऊपर उठ आते हैं। दाना उठने पर इसमें जोर से ज्वर आता है पर २।३ दिन में वह हलका पड़ने लगता है और १४ दिन में सब बातें शान्त पड़ जाती हैं। २०-२५ दिन में छाले की पपड़ी उतर जाती

है। घाव का दाग लाल या कुछ बैंगना रङ्ग का होता है। जिनको दाग गहरा होता है उनके यह निशान जन्म भर भी रहता है।

जब आराम होनेपर भी घाव न सूखा हो तो उसपर वेसलीन, घी और कत्था मिलाकर या पुराने घड़े का टुकड़ा पानी में घिसकर लगाना चाहिये। और भी उपाय किये जा सकते हैं, पर इस विषय में चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिये। इन दानों में कोई भय की बात नहीं है। यदि लापरवाही की जाती है तो बालक अधिक दिन दुःख पाता है। दाना उठते समय छिल न जाय ऐसा उपाय अवश्य करना चाहिये। इस लिये उस समय बालक को बिना बाँहों का कुरता या बगडी पहिराना अच्छा है।

बसंत रोग।

बसंत से हमारा मतलब चेचक या माता से है। यह रोग प्रायः वसन्त ऋतु में ही विशेष जोर पकड़ता है, इस लिये इसका वसन्त नाम बहुत कुछ सार्थक है। प्राचीनायुर्वेद में इसे मसूरिका कहा है। इसका मसूरिका नाम मसूरसदृश दाने होने से माना गया है।

इस रोग का मूल किस देश में और किस समय उत्पन्न

हुआ इसका प्रमाण सन्दिग्ध है। पर, भारत में यह रोग शाक्तों के समय में ही प्रादुर्भूत हुआ, इसमें सन्देह नहीं। आज तक के वर्त्तमान परहेज—छूत छात के बचाव इस—बात के स्पष्ट प्रमाण हमारे घरों में आज तक प्रचलित हैं। यद्यपि बहुत सी बातें जो हमारे प्राचीन खुले घरों में पहिले मानी जाती थीं आज भी शहरों की तङ्ग गलियों और बन्द घरों में मानी जाती हैं और उनसे बराबर हानि होती है, पर उन सबका अस्तित्व हमारे उसी शाक्त समय से है। इस रोग की चिकित्सा और भारत में उसके प्रचार की न्यूनता का भी यही कारण है। शाक्तों में पूजा पाठ का माहात्म्य विशेष मान्य था, वही अन्त में हमारी भक्तिभावुका माताओं में आजतक भी मान्य होगया। इसी कारण चिकित्सा को जैसा अवसर मिलना चाहिये था न मिला, न चिकित्सा के तारतम्य से इस विषय में चिकित्सकों का कुछ ज्ञान ही बढ़ा।

डाक्टरी में इसे छूत ही कारण माना है। जो कुछ भी हो यह रोग स्पर्शास्पर्श होते रहने पर भी घर के बालकों में एक दूसरे के होता रहता है। कुछ लोगों का कथन है कि यह गर्भ के समय की गरमी है, जो काल पाकर एक बार शरीर से अवश्य निकलती है। इस कथन की सत्यता में बहुत कुछ संदेह है। एक तो बालक से लगाकर वृद्ध तक को यह रोग होता है। फ़िर किसी को एक बार, किसी को अनेक बार यह रोग

होता है, पर किसी को यह एक बार भी नहीं होता। यदि इसे गर्भाशय की गरमी ही मानें तो उसका प्रकोप प्रत्येक बालक को प्रथम गरमी की ऋतु में होना स्वाभाविक होना चाहिये, पर यह रोग अपनी इच्छानुसार अनियत अवस्था में होता है। हमारी रायमें यह रोग बारबार नहीं होता। अनेक बार स्त्रियाँ अन्य प्रकार की फुन्सियों या लाल अन्हौरियों पर चटसे बसंत का प्रकोप मान लेती हैं यह उनकी रोगविषयक अज्ञानता है। किसी किसी स्त्री को हमने यह बात अनेक बार कहते सुना है कि अमुक बालक को " खेलनी मालनी माता „ या "ढाई दिन वाली माता„ है। आश्चर्य का विषय है कि इस प्रकार की माताओं में बालकों को ज्वर या अन्य कोई कष्ट नहीं होता। न इनके दानों की तुलना बसंत रोग (मसूरिका) के दानों से होती है। पर यह बात स्त्रियाँ अपनी मति के अनुसार जबरन समझ लेती हैं।

बसन्त रोग के आरम्भ में ज्वर अवश्य होता है कभी कभी १०४ डिग्री तक होजाता है। अधिकांश बालकों को शीत लगकर ज्वर आता है, पर, किसी को बिना शीत ज्वर के भी बसन्त का प्रादुर्भाव हो जाता है। दोष दूष्यों की तीव्रतापर दानों का जल्दी या देरी से निकलना निर्भर होता है। ज्वर के आरम्भ में बालक उदास और भयशील रहता है। ज्वर के आरम्भ में भी ये लक्षण रहते हैं, पर शरीरताप, भय की मात्रा, मुंह की

जाती बढ़ती जाती हैं। किसी बालक को एक सप्ताह और किसी बालक को डेढ़ सप्ताह तक ज्वर आकर दाने निकलते हैं। इस ज्वर में प्यास, जीकी मचलाहट, दस्त, खाँसी शिर-दर्द का प्रायः विकल्प (होना न होना) बना रहता है। निद्रावस्था में भी बालक का भय खाकर चौंकना प्रायः बना रहता है। ज्वर की तीव्रता सन्निपात को भी मात करती है, पर कभी कभी ऐसा नहीं भी होता। भय के साथ प्रलाप (बकवास) भी बना रहता है। पृष्ठवंश में दर्द होता है और गले की नसें फड़कने लगती है। आमाशय में भारीपन और मांसल स्थलों में जलन के साथ साथ पीड़ा होने लगती है।

इस रोग में पित्त और वायु की ही प्रधानता पाई जाती है। किसी किसी रोगी में जुखाम के अंश से कफ भी पाया जाता है। पर, वह प्रायः अप्रधान ही होता है। इस रोग में रक्त, रसवाहिनी कला, त्वचा और कुछ अंश में मांस दूषित होता है। कलाओं (झिल्लियों) के अतिदूषण के कारण कुछ रोगियों के कान, नाक, मुख, आमाशय, मूत्राशय, आदि के कोई कोई रोग मरणपर्यन्त साथी हो जाते हैं। कभी कभी यह रोग इन कारणों ही से मारक भी हो जाता है।

इस रोग में शरीरपर दो प्रकार के दाने निकलते हैं। एक छोटे दूसरे बड़े। बड़े दाने रोग की विशेषता के चिन्ह हैं। छोटे दानों में रोगी के लिये किसी प्रकार की चिन्ता की बात

नहीं रहती है। दोनों ही दानों का उठाव एकसा होता है। पहिले मुखपर, फिर धड़पर और पीछे पैरों में गहरे या हलके लाल रङ्ग के चिन्ह दीखते हैं। ये ही चिन्ह फिर अपना पूरा रूप धारण कर लेते हैं। ये चिन्ह मुख पर अधिक और बाकी स्थलों पर विरले होते हैं। कहीं कहीं पर ये चिन्ह ५-७ एक जगह गुच्छे के आकार में होजाते हैं, जो पूर्ण रूप होनेपर सब एक में मिल जाते हैं।

पहिले पहिल जो लाल चिन्ह दिखाई देते हैं वे धीरे धीरे बढ़ते और ऊंचे होते हैं, और फोड़े फुन्सियों की तरह इनमें मुंह नहीं होता। इसी लिये इनके और उनके उठाव में अन्तर रहता है। दानों का आकार लाल रङ्ग से पलटकर सफेद होता है और उनमें छालों की तरह सफेद जल भर जाता है। यह जल पहिले स्वच्छ होता है, फिर मलिन हो चलता है और दाने शिथिल होने लगते हैं। पर इनके ऊपर की त्वचा छाले की अपेक्षाकृत कड़ी-दरदरी-होती है। इन दानों का जल एक साथ नहीं निकलता; न सूखता ही है। दानों में खुजली आरंभ ही से रहती है। ७-८ दिन में इन दानों के फूटने से थोड़ी सी पीप निकलती है, पर, जो दाने नहीं फूटते उनकी पीप सूख-कर दाल बंध जाती है। यह सब काम १० से १५ दिनके भीतर होता है।

दाल उतरने पर उस स्थान पर लाल या कुछ गुलाबी भूरे

रङ्ग का गढ़ा नजर आता है जो १–१॥ मास में पूरा हो जाता है। जहाँ के दाने पककर बिगड़ जाते हैं उस जगह के गढ़ों का पुराव नहीं होता। ऐसे गढ़े (व्रण) बहुत से मनुष्यों के सदा चिन्ह स्वरूप रह जाते हैं।

यदि रोग की अधिकता न हो, दाने विरले हों, छोटे हों तो रोग साध्य होता है। अधिकता में रोग कष्टसाध्य होता है। रोगावस्था में शरीर के किसी भी मार्ग से या दानों से खून जारी होता है तो भी रोग कष्टसाध्य हो जाता है। जिन दानों का रङ्ग काला और उठाव बन्द हो जाता है वह रोग असाध्य हो जाता है। इसी प्रकार जिन स्थानों का ऊपर उल्लेख कर आये हैं उनकी लसीली झिल्लियों पर इस रोग का असर हो जाता है तब उन स्थानों में अनेक रोग होजाते हैं, उन रोगों के कारण भी वह रोग असाध्य हो जाता है।

दाने फूटकर घाव और दुर्गन्धि फैलना, आँख सूजना और आँखों में घाव होना, कानकी भीतरी हड्डी गलकर कान बहना, नाक की हड्डी गलकर नाक बैठना, खाँसी की तीव्रता, न्यूमोनिया, फेफड़ों का बिगाड़, जिव्हा पर घाव होना, आमाशय अथवा पेट की अंतड़ियों की सूजन, मूत्राशय के अन्य विकार, जननेन्द्रिय की सूजन या घाव, अण्डकोषों के घाव आदि उपद्रव इस रोग में पाये जाते हैं।

कभी कभी यह रोग गर्भस्थ बालक को भी हो जाता है; ऐसी दशा में प्रायः गर्भपात होजाता है। जिन स्त्रियों के गर्भावस्था के समय दैववशात् यह रोग हो जाता है, उन्हें भी गर्भपात हो जाता है।

बालक को बसन्त रोग के चिन्ह प्रगट होने पर उसकी कौनसी चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिये, इस विषय में बड़ा मतभेद है। इसी मतभेद की कृपा से इसकी चिकित्सा नहीं होने पाती और बचे तो देवीच्छा से, न बचे तो देवीच्छा॥ स्त्रियाँ कहती हैं कि बस; बालक पर आगन्तुक पुरुष (या व्यक्ति) की छाया पड़ी कि महाराणी रुष्ट हो जायँगी। ऐसी दृढ़ भावना में मूर्ख माली और मालिन और भी उन्हें भड़का देते हैं। क्योंकि उनके महत्व का वही स्थल है। पीछे उन्हें कोई कौड़ी को नहीं पूंछता। इस लिये इस समय बहती गङ्गा में हाथ धोकर या अपना महत्व बघारकर वे भी लाभ उठाते हैं। पर, दुःख है कि उनकी एक दो घटनायें विज्ञान-सम्मत होनेपर भी बाकी सब शैली मूर्खता-सम्मत होती है। फिर भी पठित मनुष्यों में कभी इच्छा से कभी अनिच्छा से (स्त्रियों के हठ से) इस शैली का बोलबाला चलता ही जाता है।

खैर कुछ भी हो, इसकी चिकित्सा आवश्यक है। बालकों को एक साल के भीतर जेनर साहब का टीका लगाने से बा-

लकों को जिस प्रकार वसन्त रोग के दुःख का अनुभव नहीं करना होता है उसी प्रकार चिकित्सा करने से इस रोग का प्रतिषेध भी होता है।

ज्वर के आरम्भ में एक दिन कोई औषधि न दी जानी चाहिये। यदि दी जाय तो भी वह ज्वर को उतार देने वाली न होना चाहिये। वसन्त रोग के ज्वर की आरम्भिक दशा से दाने निकलने तक लोकनाथ रस ३।४ चावलभर अथवा नागरमोथे का चूर्ण २२ रत्ती की मात्रा से शहद में चटाना चाहिये। प्यास की अधिकता में और खाँसी में बहेड़े की गिरी को पीसकर शहद में चटा सकते हैं। कुछ का मत है कि इस रोग का आक्रमण सहसा होता है इस लिये कुछ आहार अपक्व दशा में ही कोष्ठ में मौजूद रहता है, अतः उसके परिपाक के लिये सञ्जीवनी का प्रयोग करना चाहिये॥

बाहरी छूत वायु के बचाव के लिये नींब की पत्तियों की धूनी देना या नींब की पत्तियों को घरमें टाँगना लाभदायक है।

जब दानों का प्रथम रूप दिखाई देने लगे उस समय बालक में सुस्ती, ज्वर की कमी; शरीर की शीतलता अधिक या शीत लग जानेसे होने वाले बिकारों की सम्भावना प्रतीत हो तो दिन और रात में कई बार करके १ चावल से ४ चावल तक कस्तूरी बालक को दे देनी चाहिये। दाने निकलते समय दिन रात में

लवङ्गादि चूर्ण और शुक्ति भस्म की ६–७ मात्रायें शहद में देनी चाहियें। बालक की अवस्था देखकर मात्रा की कल्पना होनी चाहिये। लवङ्गादि चूर्ण एक रुपये भर में दो आने भर–शुक्ति भस्म मिलाकर देना उचित है। तीन वर्ष के भीतर के बालक को ४ चावल भर और ५ वर्ष तक के बालक को १ रत्ती और १० वर्ष तक के बालकों को २ रत्ती एक की मात्रा देना चाहिये।

जब दानों में जल भरने के बाद मलिनता आकर झुर्रियाँ पड़ने लगें तब कण्डे की राखको कपड़छान करके बालक के बिछौने पर और देहपर लगा देना चाहिये। जहाँपर दाने फूट कर विशेष पानी निकलता हो वहाँ राख विशेष रूपसे लगाना चाहिये, इसके दो लाभ हैं। राखके क्षार के कारण चर्म अधिक समय तक तरी नहीं देती। तरी देने वाले छिद्र क्षार के कारण बंद होकर जल्द सूख जाते हैं। फिर सूख जाने के कारण बालकों के शरीर में कपड़े चपटकर दुःख नहीं देते।

बालकों के बिछावने के वस्त्र इस अवसर पर नित्य बदल देना चाहिये। पहिराने के स्थान में बालकों पर कोई स्वच्छ वस्त्र ओढ़ा देना ही अच्छा है, ऐसी दशा में बालक को नङ्गा ही रखना चाहिये। बालकों को उठाने या करवट बदलाने के समय यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उनका बदन कहीं से छिल न जाय और उनके दानों का चेप अपने हाथ पैरों में न लग जाय।

जिन बालकों को प्रलाप और शीताङ्ग हो गया हो या होने का भय हो उन्हें मृत्युञ्जय रस या कस्तूरी भैरव रस देना चाहिये।

जब कि दाने अधिकांश दशा में सूखने पर आ गये हों तब बालक के खान पान पर ध्यान देना चाहिये। यदि बालक को कब्ज हो या मल कठिनता से सूखा रूखा होता हो तो मुनक्का खिलाना चाहिये। जब तक दाने सूखने पर आवें तब तक बालकों को दूध या ऐसी तर चीजें न देना चाहिये जिनसे दानों में तरी पहुँचने का भय हो। बालकों को चने के बने पदार्थ (लड्डू आदि) या भुने हुये चने ही विशेषतया दिये जाते हैं। इससे दानों में तरी की अधिकता नहीं होने पाती। बालक के खाने के पदार्थों में मिर्च और नमक भी नहीं होना चाहिये। इनके होने से दानों में जलन और खुजली पैदा हो जाती है।

वसन्त के उपद्रव हों तो उनकी चिकित्सा चिकित्सक द्वारा अवस्थानुसार करानी चाहिये।

दानों के सूखनेपर बालक के शरीरपर चंदनादि तैल लगा देना चाहिये। यदि कोई दाना पक गया हो तो उसपर शीत क्रिया करके पाक को रोकना चाहिये। ऐसे घावको नींव के शीतल काढ़े से धोकर हंसराज की पत्ती की टिकिया बाँधनी चाहिये। साधारणतः खान्नी या मुलतानी मिट्टी अथवा गेरू का

लेप भी छोटे मोटे घाव की चिकित्सा के लिये कभी कभी पर्याप्त हो जाता है।

वसन्त रोग के आरोग्य होनेपर हाथ पैरों के तलुओं में विशेष जलन हो तो मेंहदी की ताजी पत्ती पीसकर लेप करना चाहिये। इससे यह दोष दूर होजाता है। खाने के लिये सितोपलादि चूर्ण अथवा तालीसाद्य चूर्ण शुक्ति या चन्द्रलिद्ध प्रवाल मिलाकर पहिले लिखे हुये (लवङ्गादि चूर्ण के) प्रमाण से शहद में चटाना।

जब सब दाने सूखकर उनकी टिकिया उतर जायँ तब बालक को हलके गुनगुने जल से स्नान कराना आरम्भ कर देना चाहिये। उसी समय से बालक की पाचनशक्ति के अनुसार पौष्टिक भोजन भी आरम्भ कर देना चाहिये।

जिन बालकों को अन्न खाने का अभ्यास हो उन्हें सामयिक मधुर फल अवश्य खिलाने चाहिये। फलों से बालकों के कोठे की गरमी बड़ी ही सरलता से दूर होती है।

मूल–शोथ।

यह शोथ कान के नीचे और ठोड़ी की हड्डियों के मध्य स्थान पर प्रायः होता है। कभी कभी अंडकोशों के ऊपर और अगल बगल में भी होजाता है। इस शोथमें प्रायः हलका ज्वर आता

है, पर कभी कभी अधिक भी देखा गया है। ज्वर की गति शोथ के अनुसार बढ़ती घटती है। शोथ का स्थान लाल रङ्ग का, चिकना, कड़ा और पीड़ा युक्त होता है। और मूल शोथों को छोड़कर कर्ण-मूलशोथ कभी कभी विशेष कष्टप्रद अथवा मारक तक हो जाता है।

शोथ आरम्भ होने पर उस पर योगराज गुग्गुलु अथवा अफीम और सोंठ घिसकर लगाना चाहिये। लेप गरम हो तो विशेष अच्छा है। शीत समय हो तो लेप के ऊपर से रुई भी बाँध देना चाहिये। खाने की औषधि देने की विशेष आवश्यकता नहीं। यदि ज्वर हलका करना हो तो या पेट का विकार मालूम हो तो सञ्जीवनी वटी या लोकनाथ रस शहद में चटा देना चाहिये। शोथपर यदि पैत्तिक लक्षण विशेष हों, दाह की की अधिकता और ग्रीष्म का समय हो तो ठंढा लेप भी लगाया जा सकता है। इससे अधिक तथा शीघ्र लाभ होता है। पर यह बात पहिले खूब विचार लेना चाहिये।

मोतीझरा।

यह रोग बहुत छोटे बालकों को नहीं होता। इसमें आरंभ में ज्वर होकर वह घटता बढ़ता रहता है। यह ज्वर अपनी अवधि पूर्ण करके भी घटता नहीं। शरीर ताप विशेष रहता है, प्यास अधिक रहती है, बालक तलफता है, कभी कभी प्रलाप

करता और चौंकता है। बेहोशी या आलस्य विशेष रहता है। पेट खराब होने से आरम्भ में ज्वर के साथ दस्त भी लगते हैं। पर कभी कभी शरीर-ताप की विशेषता से रोग आरोग्य होते रहने पर पीछे दस्त लगते हैं। पिछले दस्त लाभप्रद हैं, पर पहिले दस्तों में कभी कभी रोग बिगड़ भी जाता है। ७ से १६ दिन तक ज्वर रहकर शरीर पर सफेद दाने निकलते हैं। ये दाने कण्ठ से आरम्भ होते हैं और हजारों की तादाद में पँसुली, पेट, पीठ, पैरों में निकलते चले जाते हैं। छाती पर धुक धुकी के पास अधिक दाने निकलना ठीक नहीं। उनसे रोगी को घबराहट बढ़ जाती है। कभी कभी रोगी असाध्य भी हो जाता है। एक बार दाने निकलकर यदि गायब होजाते हैं-उनका जोर घट जाता है, जो प्रायः सरदी से या शीत उपायों से होता देखा गया है-तो कष्टसाध्यता हो जाती है। नाभि के नीचे निकल आनेपर रोग का वेग अधिकांश में कम होने लगता है और फिर उसके असाध्य होने का संशय नहीं रहता।

इस रोग के आरम्भ में केशर, कस्तूरी, लौंग का प्रयोग विशेष किया जाता है जिससे दाने अच्छी प्रकार निकल आवें। ज्वर की दशामें सञ्जीवनी, ज्वरांकुश (त्रिकटुवाला) लोकनाथ रस या स्वच्छन्द भैरव रस देना चाहिये। जब ज्वर कम हो जाय और दाने भी मुरझा जायँ, बालक को कुछ खाँसी,

उदर रोग और कमजोरी प्रतीत हो तो थोड़ी मात्रा में लव-ङ्गादि चूर्ण का प्रयोग करना चाहिये। पथ्य में दूध का प्रयोग अच्छा रहता है। जो बालक अन्नाहारी हों, उनको अन्न (विशेषकर भात) न देकर कूटू की खील या रोटी देनी चाहिये। आरम्भिक दशा में ज्वर के साथ दस्त हों तो उनके कम होने का प्रबन्ध करना चाहिये। शीत विकार हों तो कस्तूरी भैरव, आकारकरभादि चूर्ण या केवल केशर का प्रयोग करना चाहिये।

मास्तिष्कज्वर।

यह ज्वर भारत में कम होता है। जहाँ विशेष होता है वहाँ भी छोटी अवस्था वाले अपक्व-मस्तिष्क बालकों में होता है। बालिकाओं से बालकों में इसका असर विशेष देखा गया है। इसमें सुषुम्नाकाण्ड, पृष्ठकशेरुका और मस्तिष्ककला (भेजे की ऊपरी झिल्ली) विकृत होती हैं। शवव्यवच्छेद करके देखा गया है कि इस रोग के रोगियों का सुषुम्ना-काण्ड मस्तिष्क और रक्ताशयों का रक्त जमा हुआ रहता है। इसमें रक्तसञ्चालन की न्यूनता या रक्तसञ्चालनक्रिया के बन्द होने से ही मृत्यु होती है। इस रोग का दौरा जाड़े में, सोते समय प्रायः होता है। इसमें पहिले चक्कर से आते हैं, शिर में असह्य पीड़ा होती है और रोगी भ्रान्त-बधिर सा होजाता है। इसमें बेचैनी और चौंकना भी होता है। ग्रीवा की नसें तनी सी मा-

लूम होने लगती हैं, दृष्टिस्तब्ध होने लगती है और नाड़ी तथा श्वास गति द्रुतगामिनी होजाती है। रोगी सचेतन होकर भी अचेतन सा बना रहता है। स्वभाव चिड़चिड़ा और रात्रि को प्रलाप होता है। ज्वर की गति मध्यम और बेचैनी विशेष होती है। रोगी खाट पर हाथ पैर सिकोड़कर कूबड़ निकाल कर सोता है। कभी कभी अज्ञानावस्था में ही मलमूत्रत्याग भी हो जाता है। अधिक तर यह रोग असाध्य या कष्टसाध्य ही होता है।

इस रोगमें सारस्वतारिष्ट, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्ण भस्म, श्वेताभ्रभस्म और मौक्तिक देने से लाभ होता है। मकरध्वज का प्रयोग भी इनके साथ किया जा सकता है। यदि रोग कुछ दिन तक बना रहकर विशेष नहीं बढ़ा तो समझना होगा कि अब यह धीरे- धीरे शांत हो जायगा। इस ज्वर की निर्बलता और दुर्बलता महीनों में शान्त हो पाती है।

गलौघ।

इस रोगको डाक्टरी में डिपथीरिया कहते हैं। इसमें गल नलिका में विकार होता है। जिह्वा का पश्चात् भाग, अलि-जिह्वा (कव्वा), गल-ग्रन्थियाँ दूषित होकर फूल जाती हैं। साध्य दशा में बालक कुछ बोल सकता है, रोता है तो बड़े कष्ट से, फटे स्वर से और रुक रुक कर। मुख के भीतर देखने से

गले में लाल रङ्ग की सूजन और गला रुका हुआ मालूम होता है। ज्वर की गति १००–१०१ के लगभग होती है।

कष्टसाध्य दशा में ये लक्षण विशेष होते हैं। खाँसने, बोलने या मुख देखने में यदि गले में आघात पहुँचा तो मुंह से खून या फीका पीला लाल पानी आता है। बालक को श्वास लेने में कष्ट होता है, वह दूध नहीं पी सकता, न रो ही सकता है। इसमें जिह्वा पर मैल जमा रहता है और मुख से दुर्गन्धि आती है।

असाध्य दशा में श्वास बहुत रुककर आता है। ज्वर तीव्र होता है, नाड़ी की गति क्षीण और द्रुतगामिनी होती है। जरा बोलने या रोने का प्रयत्न करते ही मुंह काला पड़ जाता है। कभी कभी दस्त, नाक से या मुख से मांस धोवन का जैसा लसदार पानी आने लगता है। इस दशा में मुखसे कभी कभी घाव तक हो जाता है। धीरे धीरे बालक का होश हवाश कम होता है। तन्द्रा रहती है और क्षीणता के लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। इस प्रकार मृत्यु हो जाती है।

यह रोग बड़ा कष्टकर है। जहाँतक हो बालक को सबल रखने की चेष्टा करनी चाहिये। बलवान् बालकों को इसका सहज आक्रमण नहीं होता। आक्रमण होनेपर भी रोग साधारण ही रहता है। आरम्भ में शकरतिगार, शहतूत, मुलेठी का

शर्वत चटाना या दूध में मिलाकर देना चाहिये। वालक की पाचनशक्ति खराब हो तो भुने हुये सुहागे को जल में घोलकर दिन में २।३ वार देना चाहिये। साधारणतः शोथघ्न कफघ्न, स्वर-संशोधक और मुलायमी पैदा करने वाली औपधियाँ होना चाहिये।

ज्वर के लिये लोकनाथ रस, वालरस, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुक्ति भस्म, मौक्तिक भस्म का प्रयोग होना चाहिये। उत्तेजक और गरम दवा न देनी चाहिये। पाचनदीपन के लिये अजीर्ण कण्टक, अग्निकुमार रस, यवक्षार का प्रयोग होना चाहिये। और किसी प्रकार का उपद्रव हो तो चिकित्सक को उसकी शांति का उपाय करना चाहिये।

रोगमुक्ति के वाद जब रोगी आहार करने लग जाय तब उसे पौष्टिक औपधि देते रहना चाहिये जिसमें पुनर्वार इस रोग या अन्य रोग के आक्रमण का सन्देह न रहे।

शुष्ककास—कुकुरखाँसी।

पाश्चात्य चिकित्सक इसे विपोत्पन्न मानते हैं, पर, अभी तक उन्हें इसके उत्पादक कीटाणु नहीं मिले। यह रोग कभी एक वालक से अन्य साथ खेलने वाले वालकों को भी होजाता है। यही संक्रामकता का गुण इसके विपोत्पन्न होने का संशय

दिलाता है। हम इसे वातज मानते हैं। सम्भव है कि इसके कीटाणु भी वातात्मक हों और उनका सम्बन्ध केवल श्वास प्रश्वास से ही होता हो, थूक या कफ से नहीं। ऐसी दशा में दृश्य कफ-कीटाणुओं की तरह इसके कीटाणु न लक्षित हों।

यह रोग कफ के सूख जाने या गले की श्वासनलिका में अधिक सूखे वायु गुणों के संपर्क होने या सरदी लगने से आरंभ होता है। इसमें बालक १।२ मिनट तक धौं धौं करता रहता है। मुंह से लार गिरती है; पर कफ नहीं। गले से साँय साँय का शब्द आता है घर्र घर्र का नहीं। कासकी अधिकता से बालक पसीने में लदफद हो जाता है, बमन कर देता है। क़भी कभी इसी अवस्था में उसे मल मूत्र भी हो जाते हैं। कास का वेग हट जानेपर मुंह लाल की जगह काला, शरीर निस्सत्व और थका हुआ हो जाता है। यह बिकट खाँसी है। यह बालकों को अधिक होती है। बड़ों में यह बहुत कम होती है। इसका दौरा १ अहोरात्र से १।२ मास तक रहता है।

यह रोग यदि सर्दी से हुआ हो तो बालक के गले के पास छातीपर नारायण तैल में केसर मिलाकर मलना चाहिये और खाने के लिये चन्द्रामृत रस, चौसुजी, कुंकुमादि या लवङ्गादि बटी देना चाहिये। यदि कफ सूखने से या गरद गुब्बार से हुआ हो तो लऊक सपिस्ता (लसोड़े का शर्वत) शक्कर तिगार

का शर्बत विशुद्ध प्रवाल, एलादिवटी, यवक्षार और मिश्री आदि का प्रयोग करना चाहिये।

रोग रहते और आराम होने की दशा में भी बालक को सुख पूर्वक सुलाने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। ऐसी दशा में द्राक्षासव भी दिया जाय तो कोई हरज नहीं है।

इन्फ्लुएंजा।

पाश्चात्य चिकित्सकों का कहना है कि इस रोग में श्वास पथ और आहारपथ की श्लैष्मिक कलायें शोथ युक्त हो जाती हैं। यह रोग कफ पित्त प्रधान होता है। भारतीय चिकित्सक इसे कफ पित्त प्रधान 'फ्लु,–ज्वर ही मानते हैं। इस रोग की तीन दशायें देखने में आती हैं–पहिली सुसाध्य, दूसरी कष्ट साध्य तीसरी असाध्य।

प्रथमावस्था में ज्वर साधारण या कभी कभी १०४ डिग्री तक, शिर और कमर में अधिक पीड़ा, कमजोरी का अनुभव विशेष, प्यास, हलकी खाँसी, छाती में भारीपन–ठोस आवाज आना, नाड़ी का तीव्र चलना, वस्त्र ओढ़े रहने की इच्छा, जीभ सफेद मलयुक्त, हलकी बेचैनी, सुस्ती। ऐसी दशा में ३ से ५ दिन तक रहकर ज्वर उतर जाता है।

दूसरी अवस्था में ज्वर का १०५ या १०६ रहना, खाँसी का जोर; विशेषकर रातको सूखी खाँसी का आना, नाड़ी तीव्र पेट और छाती में भारीपन, पहले वदवूदार दस्त आना, वेचैनी, चौंकना और प्रलाप, नाक का तर रहना, वार वार करवट वदलना, ६–१० दिन तक ज्वर रहता है।

तीसरी अवस्था में ज्वर की गति तीव्र, प्रलाप, वेहोशी खाँसी की अधिकता, सायँ सायँ शब्द होना, सेंकने से कुछ लाभ होना, गले की खरखराहट, श्वास का वढ़ना, मुंह से वदवू आना, शक्तिक्षय, शिथिलता, हाथ पैरों का विशेष गरम न होना, नाड़ी शिथिलता लिये होती है।

इसकी तीसरी अवस्था न्यूमोनियाँ से मिलती जुलती होती है। रोगी को जहाँतक हो आराम से साफ कमरे में सूखे साफ विछौनों पर सीधा लेटा रहने दे। औषधियों में सञ्जी-वनीवटी लोकनाथ रस, वालरस, कुमुदेश्वर, कट्फल चूर्ण, स्वच्छन्द भैरव, यवक्षार का प्रयोग होना चाहिये। छाती पर मलने के लिये १० वर्ष का पुराना घी कपूर, सेंधा नमक मिला-कर मलना। अथवा कपूर, सोंठ को वारीक पीसकर घी में पकाना और उसकी मालिश करना। ऊपर से रुई या ऊनी वस्त्र की पट्टी वाँध देना। पथ्य में दूध देना हो तो उसमें थोड़ा यवक्षार और मीठी वच मिलाकर देना। हलके सेंक से छाती-

पर सेंक भी किया जा सकता है, पर बहुत कम । तीसरी अवस्था में न्यूमोनिया की चिकित्सा का अवलम्बन ही करना चाहिये ।

पैतृक उपदंश ।

कुछ रोग ऐसे हैं जो बालकों के माता पिता (और कभी कभी पितामह मातामह आदि) के रोग-संसर्ग से सम्बन्ध रखते हैं । जैसे उपदंश को ही लीजिये । उपदंश की विष-क्रिया खून और वीर्य में बराबर मौजूद होने से बालकों को उस रोग के लक्षण रोगी बना देते हैं । इसी लिये आयुर्वेद में कहा है कि

' शुक्रं हि दुष्टं सापत्यं सदारं बाधते नरम् ,

कभी कभी यह रोग वंशानुक्रम से २।३ पीढ़ियों तक में चला जाता है । इस रोग के लक्षण विचित्र प्रकार के होते हैं । उनकी इयत्ता की कोई बात नहीं कही जा सकती । कभी कभी कोई लक्षण चिकित्सकों को आश्चर्य में डाल देते हैं, जिससे वे रोग निश्चय के झमेले में ही पड़े रहते हैं । यह रोग यदि जन्म के साथ पैदा होकर बालक की १ मास की अवस्था के भीतर ही सब लक्षणों से प्रकाशित होता है तो अवश्य मारक होता है । पर, पीछे पीछे इसकी मारकता घटती जाती है ।

इस रोग में रक्त पर विशेष प्रभाव पड़ता है । रक्त के खास खास स्थल यकृत्, प्लीहा इससे निकम्मे होकर गोलाकार

बढ़ते हैं। चमड़े का रङ्ग पीला पीला, शोथयुक्त अथवा विवर्ण हो जाता है। कभी कभी मुंह में छाले, ओठ और जीभ का फटना, बदन का गरम रहना, पीपदार छोटे छाले या फुंसियाँ, खुजली, चर्म विकार उठते हैं।

इस रोग का असर अस्थि और इन्द्रियों पर भी होता है। जिन बालकों को यह रोग होता है उनके अस्थि लम्बाई चौड़ाई और मजबूती में वैसे नहीं होते जैसे तन्दुरुस्त बालकों के। कभी कभी टेढ़े मेढ़े हो जाते हैं और कभी वे वृद्धि ही नहीं पाते या बहुत कम बढ़ते हैं। या टेढ़े मेढ़े तक हो जाते हैं कूबड़ निकल आता है, जिन्हें देखकर वातज विकारों का बोध होने लगता है। इस रोग के प्रभाव से बालकों का स्वर फटा रहता है उसमें उच्चता नहीं रहती, कान या नाक बहा करता है शरीर गरम, थका हुआ सा मलिन रहता है। दाँत अधिक शीघ्र निकलते हैं और उनके निकलने में कष्ट होता है।

बालक में ऐसे कोई भी अकारण रोग चिन्हों को देखकर उपदंश के विषय में बालक के माता पिताओं से पूछ ताछ करनी चाहिये, तब बालक की चिकित्सा करनी चाहिये। चिकित्सा में यह ध्यान रखना चाहिये कि रोग नाशक औषधि के साथ में उपदंश-विषघ्न औषधि का संयोग अवश्य रहे। अन्यथा लाभ नहीं होगा। बहुत छोटे बालकों के यदि छाले आदि पड़ जायँ तो उन्हें झड़बेरिया की जड़ की छाल, खैर

की छाल और त्रिफला की छाल के काढ़ों से स्नान करना चाहिये और उन छालों पर नीचे लिखी बुकनी का प्रयोग करते रहना चाहिये। यदि घाव हो गये हों तो बुकनी को वेसलीन या घी में मिलाकर लगाना चाहिये। इस बुकनी में सफेद कत्था, सफेदा, सिंदूर, कबीला, कपूर खूब बारीक पिसा हुआ होना चाहिये। बड़े बालकों को पीने की दवा में कनकबिन्दु अरिष्ट, खदिरारिष्ट, त्रिफलावलेह, चोपचीनी पाक (माजून) माजून उशबा वगैरह देना चाहिये। छोटे बच्चों को यह दवा न दे सकने के कारण यदि अनुचित न हो तो उनकी माता को ये दवायें खिलाई जानी चाहियें। या थोड़ी से थोड़ी मात्रा में बालकों को ही दी जायँ।

इस रोग में पौष्टिक आहार छोटे बालकों के लिये माता के दूध के सिवाय और क्या हो सकता है। बड़े बालकों को खटाई मिठाई से परहेज भी कराना चाहिये और रोग की अवस्था के अनुसार चिकित्सा की जैसी व्यवस्था चिकित्सक करें वैसा करना चाहिये।

बालशोष।

यह रोग एक प्रकार का क्षय है। यह कई प्रकार का होता है। जैसे—

१–जीर्णरोग–जनित।

२–फुफ्फुसविकार–जनित ।

३–दुग्धदोष–जनित ।

४–अपौष्टिकआहार–जनित ।

५–विषमाशन–जनित या अन्त्रविकार–जनित ।

प्रथम प्रकार का बालशोष छोटे बड़े बालकों को सदा हो सकता है। जब भी कोई रोग हुआ तभी उस रोग की अधिक दुर्बलता निर्बलता के साथ में बालशोष पैदा हो सकता है। आरम्भिक दशा में यह सुसाध्य रहता है, पर पीछे कष्टसाध्य हो जाता है।

दूसरा फुफ्फुसविकार–जनित होता है। इसमें मूल कारण खाँसी और कफ के विकार (जुकाम आदि) माने जाते हैं। पीछे से इसमें ज्वर का अनुबंध भी हो जाता है। यह आरम्भ ही से कष्टसाध्य होता है पीछे असाध्य हो जाता है।

तीसरा दुग्धदोष–जनित होता है, इसमें मूल कारण केवल श्लेष्म–दूषित गाढ़ा दूध ही होता है। जब बालक खूब सोता है, सरदी खाता है, ठण्ढा पानी पीता है; कफ दूषित दूध पीता है तो उसके रस वाही स्रोत कफ के कारण रुक जाते हैं और उनसे यथार्थ रस नहीं बहता। इससे उस बालक के रक्त आदि धातुओं का बनना ही बंद हो जाता है और इसी से बालक बराबर सूखता जाता है। यही सूखा रोग है। यह आरम्भ में साध्य रहता है, पर पीछे असाध्य ही हो जाता है।

चौथा अपौष्टिक आहार जनित शोष है। जब बालक को पौष्टिक आहार नहीं मिलते तब वह क्रमशः क्षीण होने लगता है और धीरे धीरे सूख कर काँटा होता जाता है। यह रोग पहिले साध्य और अधिक समय में कष्ट साध्य होता है।

पाँचवाँ बालशोष विषमाशन या अन्त्र--बिकारों से होता है। बालकों के भोजन परिमाण का जब ठीक खयाल नहीं रक्खा जाता, कभी कम कभी ज्यादा, कभी पौष्टिक कभी अ-पौष्टिक, कभी कभी एकही प्रकार का निकम्मा आहार अधिक दिनों तक दिया जाता है तब यह रोग आरम्भ होता है। इस रोग में पेटकी आँतों की क्रिया बिगड़ जाती है। कभी बालकों को दस्त आने लगते हैं पर कभी कब्ज हो जाता है। पेट में गाँठें पड़ जाती हैं और पेट बढ़ जाता है। पेट में शूल होता है और आमातीसार भी हो जाता है। जब पेट बढ़ता है तो हाथ पैर सूखकर लकड़ी हो जाते हैं। पेट की नसें नीले रङ्ग की मोटी मोटी चमकने लगती हैं। बार बार प्लीहा और यकृत् के बढ़ने की नौबत आजाती है। यह रोग क्रमशः संचित होता है पर दृढ़ होता है। आरम्भ ही में यह जैसा सुखसाध्य होता है वैसा कुछ दिनों बाद नहीं।

पाँचों प्रकार के बालशोष अन्त में बराबर से हो जाते हैं। सब में हाथों की हथेली, पैरों के तलुवें, मस्तक, पेट जलता

रहता है। बालक क्लांत, भयङ्कर, खिन्न दिखाई देता है, चिड़चिड़ा हो जाता है।

चिकित्सा करते समय यह निदान कर लेना चाहिये कि यह रोग किस मूल कारण से हुआ है। पहिले उसी मूल कारण को दूर करना चाहिये। पीछे भी चिकित्सा करते समय उस मूल कारण पर अवश्य लक्ष्य रखना चाहिये।

प्रथम बालशोष में जो जीर्ण रोग बालक के हो उसे यत्न पूर्वक दूर करना चाहिये। उसके दूर हुये विना बालक हृष्ट पुष्ट और नीरोग नहीं हो सकता।

दूसरे बालशोष में कुमुदेश्वर रस, लोकनाथ रस, राजमृगाङ्क रस, या सर्वेश्वर रस, वसंतमालती, च्यवनप्राश रसायन का सेवन कराना चाहिये। छाती पर नारायण तैल या नारियल के तेल का मर्दन होना चाहिये।

तीसरे बालशोष में कफ-दूषित दूध बन्द कराकर दूसरा पतला नीरोग पौष्टिक दूध पिलाना चाहिये और बालक को प्रसन्न तथा चैतन्य रखने की कोशिश करनी चाहिये। इस रोग में राजमृगाङ्क रस, लोकनाथरस, सर्वेश्वररस, बालरस, सितोपलादि, तालीसादि अवलेहों का सेवन कराना चाहिये। यदि समय शीत हो तो नारायण तैल का सेवन कराना चा-

हिये। गरमी या चौमासे के दिनों में इसका मर्दन करने की आवश्यकता नहीं।

चौथे प्रकार के वालशोष में वालक के आहार की क्रिया पर ही पहिले विशेष लक्ष्य रखना चाहिये और उसी का ठीक ठीक प्रवन्ध करना चाहिये। औषधियों में शुद्ध शुक्ति, विशुद्ध विद्रुम, विशुद्ध मौक्तिक, वालरस, वसन्त मालती, च्यवनप्राश और सितोपलादि का सेवन कराना चाहिये।

पाँचवें प्रकार के वालशोष में भी आहार पर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। वालक की वर्त्तमान अवस्था जितना, जैसा सुपाच्य आहार पचा सके वैसा ही दिलाना चाहिये। नियम बाँध देना चाहिये कि अमुक समय में अमुक वस्तु इतने परिमाण में देनी चाहिये। न्यूनाधिक समय और परिमाण में कोई वस्तु न देनी चाहिये। पेट में जो विकार पाचन-दोष यकृत् या प्लीहा की खरावी आदि होगये हों उनपर भी बराबर लक्ष्य रखना चाहिये और नीचे लिखी जो दवा उचित हो प्रयोग करना चाहिये।

अजीर्णकण्टक, अग्निकुमार, सौभाग्यक्षार, भास्करलवण, गंधकरसायन, सञ्जीवनी, वालरस, स्वर्णपर्पटी, लौहपर्पटी, रजतपर्पटी, ग्रहणीकपाट, आनंदभैरव आदि का प्रयोग करना चाहिये। सप्ताह में एक आध वार बड़ी हड़ का चूर्ण या भुनी

हुई छोटी हर्र या उसारे रेवन का रेचन भी देते रहना चाहिये। साथ ही यदि शीत समय हो तो गरम जल से स्नान और तैल मर्दन की व्यवस्था जरूर होनी चाहिये।

पाश्चात्य चिकित्सक इस रोग को कीटाणुजनित मान-कर इसके बहुत से अवान्तर भेद कर देते हैं। पर वास्तव में परिणाम फल सबका एक ही है। उनकी राय में जब रोग कारक कीटाणु मस्तिष्क के स्थल विशेष (आवरक-कला) में इकट्ठे होते हैं तब वे मस्तिष्क-शोथ आरम्भ करते हैं। हम इस शोथ को भिन्न नहीं मानकर उन्हीं में से किसी के अंतर्गत मान लेते हैं इस लिये नहीं लिखते हैं।

असंक्रामक रोग।

बहुत से रोग ऐसे होते हैं जो एक बालक से दूसरे बालक पर आक्रमण नहीं करते। इन रोगों को असंक्रामक कहते हैं। यह भेद कल्पना केवल इस लिये की जाती है कि जिससे पा-ठक इस बात से अवगत हो जायँ कि अमुक रोगग्रस्त कोई बालक हो तो उससे दूसरे बालक को भिन्न स्थल में विशेष रूप से रखने की आवश्यकता है या नहीं, जिससे उस पर रोग का आक्रमण न हो सके। अब यहाँ से जिन रोगों का वर्णन है उनसे कोई बालक रोगी हो तो उसे और बालकों से बचाने आदि की आवश्यकता नहीं।

साधारण वर्षाज्वर ।

यह ज्वर प्रायः वातप्रधान और कफसंसर्गी होता है। इसके लक्षण बालक में भी वैसे ही होते हैं जैसे बड़ों में। दैनिक, अंतरा, तिजारी, चौथिया, दिन रात में दो बार आने वाला कहा जाकर इसके ५ भेद हो जाते हैं। इसके आरंभ में हलका या भारी शीत लगता है फिर ज्वर आता है। अन्त में पसीना आकर ज्वर उतरता है। कभी इस ज्वर में बीच में विश्राम मिल जाता है पर कभी कभी बीच में ही पुनः पुनः बढ़-या चढ़ जाता है। इस ज्वर की गति १०४—१०५ डिग्री तक हो जाती है, नाड़ी चञ्चल चलती है, प्यास भी लगती है, कभी कभी वमन भी हो जाता है। इस रोग में असाध्यता का भय नहीं रहता। इस ज्वर का प्रकोप श्रावण से माघ तक रहता है। और दिनों में इसका वेग कदाचित् ही होता है।

चिकित्सा भी इस ज्वर में साधारण ही की जाती है और उससे लाभ होता है।। इसमें ज्वरांकुश, कल्पतरु, बालरस, आनन्दभैरव रस देने से लाभ होता है। कुछ कब्ज मालूम हो तो जन्म घूंटी या बड़ी हरड़ का चूर्ण थोड़ी मात्रा में दे देना चाहिये। पथ्य में दूध, परवल, मूंगकी दाल, रोटी और बैंगन का भरता या आलू का शाक देना चाहिये। सागूदाना भी

दिया जा सकता है। पथ्य की व्यवस्था बालक की अवस्था विचार कर देना चाहिये।

अस्थि विकृति।

बालकों को कभी कभी अस्थिविकृति का रोग हो जाता है। इससे उनके हाथ पैरों के जोड़, मस्तक, पीठ या रीढ़ की हड्डियाँ बढ़ जाती या तिरछी निकम्मी हो जाती हैं। इस रोग का दौरा बालक के पृथ्वी पर बैठने के समय से और जबतक वह अच्छी प्रकार न चलने फिरने लगे तब तक होता है। पर यह रोग उन्हीं बालकों को विशेष होता है जो माता का दूध न पाकर बाजारू विलायती स्वास्थ्यनाशक नकली खुराकों पर बसर करते हैं। केवल हमीं नहीं इस बात को अब वे पाश्चात्य चिकित्सक भी मानने लगे हैं जिन्हें परमात्मा ने थोड़ी सुमति दी है।

यह रोग बड़ा भयङ्कर होता है। कभी कभी यह उन बालकों को भी होजाता है जिनके माता पिता शराबी या गरमी, क्षय, धातुक्षय आदि के चिर रोगी हों। इस रोग में कोई हड्डी मोटी हो जाती है जिससे उस स्थान का स्नायुजाल पीड़ित होकर अकर्मण्य हो जाता है। यह दशा प्रायः सन्धि की हड्डियों की होती है। पीठ की रीढ़ जैसी लम्बी हड्डी मुलायम होकर इस रोग में लच जाती है जिससे या तो पीठ में कूवड़

निकल आता है या छाती ऊँची होकर 'कपोतवक्ष', रोग हो जाता है। कपालास्थि विकृत हो जाने से मस्तक में पीड़ा मस्तिष्क के विकार अथवा मृत्यु तक हो जाती है। दाँतों में यदि विकार होता है तो वे बहुत देरी में निकलते हैं और टेढ़े मेढ़े निकलते हैं।

जिस स्थान में यह रोग होता है वह स्थान छूआ नहीं जाता, रोगी दीन और पीड़ित रहता है। उस स्थल के भीतरी अवयव, यंत्र या आशय नष्ट भ्रष्ट से हो जाते हैं और उनकी क्रिया ठीक नहीं होती, आरम्भ में इस रोग में बालक की शरीर पुष्टि का अभाव होने लगता है। ज्योंही ऐसा मालूम होने लगे त्योंही सतर्कता से रोगी की चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये।

चिकित्सक ऐसे रोगकी संभावना वाले बालक के प्रत्येक अङ्गको दबाकर ध्यानपूर्वक देखे। दबाने से रोगीके रोगस्थल में जरूर पीड़ा होती है। बालक यदि गर्भिणी माता का दूध विलायती डब्बा और शीशियों का दूध या कोई निकम्मा आहार करता हो तो उसे तत्काल बंद करके पौष्टिक और सुपाच्य आहार देना चाहिये। ओषधियों में बालरस, लौहभस्म, स्वर्ण माक्षिक, शुद्धशुक्ति और लक्ष्मीविलासरस देना चाहिये।

बालक के मल मूत्र और शारीर ताप पर भी ध्यान देते

रहना चाहिये। यदि मलमूत्र में रूक्षता हो तो बालक को घृत और तैल देना चाहिये। पर मलमूत्र में चिकनाहट हो तो उसे ये चीजें कम या बंद कर देना चाहिये। शरीर ताप की अधिकता हो तो आहार में सौम्य (ठण्ढी) वस्तु और शरीर ताप का ह्रास हो तो उत्तेजक और गरम चीजें देना चाहिये। अस्थिविकार से ग्रस्त बालक के जिस अङ्ग में पीड़ा विशेष हो उसकी खूब हिफाजत करना और उस स्थान पर नारायण, माषादि अथवा चन्दनादि तैल प्रयोग करते रहना चाहिये। अस्थिविकार के कारण यकृत्, प्लीहा, मस्तिष्क, पृष्ठवंश, पेट में कुछ विकार हो गये हों तो उनका भी यत्न करते रहना चाहिये। पृष्ठवंश के अस्थि विकृत होनेपर बालक को कभी खड़ा न करना चाहिये और ज्यादा बैठाना न चाहिये।

मेदोवृद्धि।

कुछ बालकों को अधिक चिकने पदार्थ भोजन करते रहने और बहुत ही कम खेल कूद करने से मेदोवृद्धि का रोग हो जाता है। इससे बालक मात्रा से अधिक मोटा, चलने फिरने में भी आलस्ययुक्त और बेडौल हो जाता है। इस रोग की चिकित्सा शीघ्र ही दत्तचित्त होकर करनी चाहिये, कारण यह रोग अनेक रोगों को पैदा कर देता है और कोई रोग हो गया तो उसे शीघ्र असाध्य बना देता है।

मोटे बालक को दूध छोड़कर और सब पदार्थ रूखे देने चाहियें जिससे मेद धातु अधिक न बढ़ने पावे। इस रोग में बालक को खेलने कूदने, दौड़ने और उठ बैठकर अधिक काम करने का समय देना चाहिये। इससे नवीन मेद नहीं बढ़ता और बढ़ा हुआ मेद घट जाता है।

औषधियों में शिलाजतु, लौहभस्म, सुहागा, प्रवालभस्म का सेवन कराना चाहिये। पथ्य में जौ, कूटू, कोदों, मूंग, पुराना चावल देना चाहिये। बालक केवल दूध पीता हो तो केवल माता काही दूध देना चाहिये। भैंस का दूध इस रोग को बढ़ाता है।

रक्ताल्पता।

कुछ बालकों को स्थूलता के कारण और कुछ को यकृत् और प्लीहा के विकारों के कारण खूनके कण अधिक लाल नहीं पैदा होते। इससे बालक निस्तेज और सफेद सफेद या पांडु रोगी सा हो जाता है। ऐसे रोगी की चिकित्सा पूर्ववर्त्ती रोगों की चिकित्सा करने से ही रक्ताल्पता का नाश हो जाता है।

मुखपाक (छाले)

बालकों को प्रायः साधारण कारणों से भी मुंह में छाले होते रहते हैं, पर, कभी कभी वे विशिष्ट रोग का रूप धारण

कर लेते हैं। गरम दूध पिलाने, खार, नमक, मिर्च या तेज चीज खिलाने, कोष्ठबंध होने, गरमागरम चाय पिलाने या अधिक गरम पदार्थ खिलाने से या दाँत निकलने से पहिले स्वयं भी छाले होजाते हैं। इस रोग में मुख के भीतर की श्लेष्मकला दूषित होती है और इस रोग का फैलाव गला, गलफर मसूढ़ों और जीभपर होता है। बालक के मुख से सफेद या कुछ पीली लार टपकती है। कभी कभी उसमें दुर्गन्धि भी आती है। छालों का वर्ण सफेद, लाल, धूसर, पीला, लाल किनारदार, प्रायः गढ़ेदार होता है। इससे बालक मुंह नहीं बन्द कर सकता और दूधभी कम पीता है। कोठे की गरमी, वसंत, मोतीझरा या परिपाक-दोष से भी पैदा हो जाता है। छाले गोलाकार अण्डाकार और कभी कभी अनेक कोण वाले विचित्र आकार के भी हो जाते हैं।

यदि बालक को उस समय कोई पेट की खराबी हो तो उसको सब से पहिले दूर करना चाहिये। आवश्यकता हो तो जन्म घूंटी या बड़ी हरड़ के चूर्ण के साथ गुलाब के गुलकन्द की ६ मासे तक की मात्रा खिला देनी या घोटकर पिला देनी चाहिये। छालों की उत्पत्ति पैतृक उपदंशके कारण प्रतीत होती हो तो चोपचीनी और उन्नावका शर्बत बनाकर चटाना चाहिये।

औषधियों में शुद्ध शुक्ति, विशुद्ध विद्रुम, त्रिफलावलेह, चतुर्भुज अवलेह, सितोपलादि और एलावलेह प्रयोग करना

चाहिये। बालक की अवस्था बड़ी हो और कहने के अनुसार पानी के कुल्ले कर सके तो चमेली के पत्ते और खैरसार के या त्रिफला के काढ़े से कुल्ले करा दें।

दन्तोद्भेद-रोग।

सभी बालकों को ये रोग नियमित रूप से होते हैं। चाहे थोड़े हों या बहुत। आयुर्वेद में लिखा है कि ये रोग दाँत निकलने पर बिना औषधि के स्वयं भी आराम हो जाते हैं। इस सदुपदेश का अर्थ कहीं कहीं बड़ा बुरा किया जाता है। जहाँ कोई चिकित्सक देखने लगा कि झट्से बालक के माता पिता या कोई पासी पड़ोसी बोल उठे-"आप क्या देखते हैं, इसके तो दाँत उठ रहे हैं, इसके इलाज की क्या जरूरत है," इस कथन से लोग मान लेते हैं कि हम आयुर्वेद का उपदेश मानते हैं, पर यह उनका भ्रम है। आयुर्वेद उस वाक्य में यह नहीं कहता कि इलाज ही न करो, वह तो साधारणतः यह कहता है; जो हम ऊपर लिख आये हैं। जब दाँत निकल चुकते हैं तब यह रोग बिना औषधि किये भी शांत हो जाते हैं।

कुछ चिकित्सक इन रोगों का इलाज यही मान बैठे हैं कि नश्तर से मसूढ़े चीर देना। उनकी धारणा होती है कि चीरते ही दाँत निकल आने से दन्तोद्भेद रोग आराम हो जायँगे। पर यह व्यवस्था बड़ी बुरी है। इन रोगों के समय मुख में

प्रायः विषाक्त परमाणु बने रहते हैं जो चीरने से रक्त में मिल कर अनेक उपद्रव पैदा कर सकते हैं। अतः यह क्रिया एकांत हितकर नहीं।

जब दाँत निकलते हैं तब बालक कड़ी चीजें खाने की इच्छा रखता है। वह समय भी ऐसा होता है कि बालक को दूध छोड़कर प्रायः अन्नपर आना पड़ता है। इस लिये कभी कभी तो केवल अजीर्ण या अपाचन के कारण ही से दन्तोद्भेद कैसे रोग हो जाते हैं। चिकित्सा करते समय चिकित्सक को यह बात पूर्ण ध्यान देकर समझ लेनी चाहिये।

दन्तोद्भेद-रोगों में बालक के मसूढ़े लाल, फूले हुए, सख्त और सूखे, गरम, दबाने से दर्द करने वाले होते हैं। ये लक्षण न हों तो बालक के रोगों को दन्तोद्भेदज मानना ही नहीं। इन रोगों में जौन से रोग के लक्षण हों उन्हीं की चिकित्सा करना चाहिये। साथ ही दन्तोद्भेद्र गदांतकरस भी देते रहना चाहिये।

दाँत उठने में कभी कभी सरदी के लक्षण होते हैं। खाँसी आती है, नाक बहती है, ज्वर आता है, दस्त लगते हैं, पेट दर्द करता है और कभी कभी कब्ज भी हो जाता है। जीभ मसूढ़े और ओंठ लाल रहते हैं, इनसे लार टपती है और मुंह में अंगुली देनेपर बालक उसे काटता है। कभी कभी वह ऐसी

दशा में स्तन को भी काट खाता है। दन्तोद्भेद-रोग के लक्षण गरमी के समय विशेष बाधक होते हैं।

गलरोग।

दाँत निकलने या मुख के कफ की शुद्धि न होने से बालकों को कई प्रकार के गलरोग हो जाते हैं। जैसे-तालुपीड़ा, तालु-शोथ, तालुव्रण, स्वरभेद आदि। इन रोगों में गले और तालु के पास का स्थल खराब होजाता है। उसमें पीड़ा सूजन और लाली आजाती है। बोलने और दूध आदि तरल पदार्थ घूंटने में भी दर्द होता है। स्वर बैठ जाता है और कष्ट से बोला या रोया जाता है। इन रोगों में १०४ डिग्री तक ज्वर भी आजाता है। इस समय मुख मण्डल तमतमाया हुआ परन्तु चैतन्य हीन मालूम होता है। गले की गाँठें फूलने से कव्वे पर भी कुछ सूजन आ जाती है। इससे श्वास लेने में भी कष्ट होता है। इन रोगों में तालुव्रण रोग कष्टसाध्य रोग है।

गल रोग में बालक का आहार सुपाच्य और मुलायम होना चाहिये। औषधों में शर्बत अंगूर, द्राक्षावलेह या शर्बत शहतूत में सितोपलादि, चौभुजी, विशुद्ध प्रवाल, विशुद्ध शुक्ति, बालरस, मीठी बच का प्रयोग करना चाहिये। बालक वयस्क और समझदार हो तो कायफल के काढ़े के कुल्ले-गरारे-कराना चाहिये। गले में ऊपर से सेंक करने और पुल-

टिस बाँधने से भी कभी कभी लाभ होता है। पर इसका प्रयोग गरमी के समय और तालुव्रण रोगमें न करना चाहिये।

पाचन-दोष।

वालकों के पाक-यन्त्र कोमल, अविस्तृत और लघुस्रोत होने के कारण पाचनदोष प्रायः हो जाता है। यद्यपि इनके पाचनदोष के मूल कारण वेही होते हैं जो बड़े व्यक्तियों के होते हैं, पर बालकों को पाचनदोष सहज में ही हो जाता है और वह अधिकांश में साध्य ही होता है। उदाहरण के लिये दो वातें ही पर्याप्त होंगी। वालकों को जो वमन होता है उसमें पेट तक की आतें नहीं उलटतीं और उतना कष्ट नहीं होता जो वड़ों को होता है। कोई कोई बालक महीनों तक दुग्ध पीने से पीछे प्रतिवारही बमन कर देता है और इससे उसे कोई कष्ट नहीं होता। इसी तरह जो संग्रहणी रोग बूढ़ों के लिये असाध्य और जवानों के लिये कष्टसाध्य माना गया है वही बालकों के लिये साध्य माना गया है। आयुर्वेद का यह मन्तव्य उन्हीं कारणों के आधार पर माना गया है जिन्हें हम ऊपर लिख आये हैं।

वमन।

पाचनदोष के कारण जब बालकों का पाकक्रम ठीक नहीं

रहता तब वे वमन कर देते हैं। वमन में साधारणतः आहार-चाहे दूध हो, चाहे अन्न-ज्यों का त्यों ही गिर जाता है। जब दिन में कई बार वमन होने लगे तो उसका प्रतीकार करना चाहिये। वमन और कारणों (छर्दि रोगके निदानभूत कारणों) सेभी हो सकता है, पर पाचनदोष अवश्य होता है इस लिये पाचनदोष का ही ध्यान सब से प्रथम रखना चाहिये।

इसके लिये श्वेत (मीठी) वच, चूने का शर्बत, जवाखार का शर्बत, सुहागे की खील, वराट भस्म, सेंहुड़े के पत्तों की भस्म थोड़ी मात्रामें देते रहना चाहिये। वमन की दशामें ऐसी क्रियापर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये जिससे बालक को मलमूत्र शुद्धि बराबर होती रहे। पाश्चात्य चिकित्सक रबड़की नली में काच या अनामेल का नेत्र (छिद्र गुटिका, Funnel) लगाकर आमाशय का दोष निकाल देते हैं, पर हमारी राय में यह क्रिया तभी की जानी चाहिये जबकि और क्रियायें सर्वथा निष्फल होजायँ। वमन के अतियोग में बालक एक प्रकार का अम्लगंधी नीले वर्ण का पतला दूध वमन करने लगता है। यदि अन्नाहारी बालक होता है तो उसे सूखी हड़्क आती हैं। वमन के अतियोग में जल बहुत ही कम देना चाहिये। आहार भी सुपाच्य और द्रवहीन दिया जाय तो विशेष अच्छा है। बार बार वमन करने से बालक की मुखाकृति निष्प्रभ और बेचैन सी रहती है। आहार पाते ही चिड़चिड़ापन आता है

और पाकाशय दाबने पर उसे पीड़ा होती है, ऐसी दशा हो तो तुरन्त चिकित्सा होनी चाहिये।

कब्ज ।

बालकों के आहारदोष, पाचनदोष, यकृद्विकार, पेट की आँतों के विकार या पैतृक उपदंश-विकार द्वारा बालकों को प्रायः कब्ज हो जाता है। इससे पेट तना हुआ, कड़ा, कुछ पीड़ायुक्त बना रहता है। मल सख्त, देरी से और बहुत थोड़ा होता है। मल का वर्ण मलिन, काला या मटीला होता है। मुख से श्वास बदबूदार आता है।

छोटे बालकों को ऐसी दशामें जन्मघूंटी का सेवन कराना चाहिये। कुछ वर्षों की अवस्था हो गई हो तो उन्हें अंडी का तेल भी दिया जा सकता है। कुछ दिन का पुराना कब्ज हो जाय तो आहारपर भी ध्यान देना चाहिये। पेटको गरम जल से धोना और सेंकना भी इस रोगमें उपकारी होता है। यकृद्विकार आदि रोगों से यदि कब्ज हुआ हो तो पहिले उन रोगों का उपाय करना चाहिये। मूल रोग नष्ट होनेपर कब्ज स्वयं दूर हो जाता है।

बालकों को यदि अन्नाहार का अभ्यास-क्रम जारी होगया हो तो भुना हुआ सुहागा या-१०० भाग जल में मिला हुआ १० भाग शङ्खद्रव ५ से १० बूंदतक देना चाहिये। शङ्खवटी, गंधक

वटी, लवणभास्कर और पञ्चसकार, करकादि चूर्ण देना भी उपयोगी है।

उदरशूल।

यह रोग प्रायः आहार की कुव्यवस्था से होता है। इसमें पेट में हलका भारी तनाव होता है, जिसे बालक छूने तक नहीं देता। बालक लेटा हो तो टेढ़ा मेढ़ा होकर ऐंठता है, बार बार रोता है और दीन हो जाता है।

ऐसी दशा में वमन और विरेचन दोनों दिये जा सकते हैं। उसारे रेवन या पीछे कोष्ठ-काठिन्य (कब्ज) में लिखी हुई औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। वमन विरेचन देने बाद भी बालक को दुष्पच या परिमाण से अधिक या जल्दी जल्दी आहार न मिलना चाहिये।

पाकाशय का घाव।

यह जिस किसी बालक को ही होता है। इस रोगके होने में लंघन, अधिक परिश्रम, थकावट, फुप्फुस-दिल-यकृत्-गुर्दे के विकार या आहार की कुव्यवस्था ही कारण होते हैं। पाकाशय में क्षत होने से कय में खून आता है, पाकाशय में छूने से पीड़ा होती है, बेचैनी बढ़ती है और अन्त में मृत्यु तक हो जाती है।

खून की कै होना ही इस रोग का प्रधान लक्षण है। ऐसा हो तो पाकाशय के ऊपर शीत उपचार करके मुक्ता, शुक्ति, प्रवाल आदि देना चाहिये। यह व्याधि प्रायः असाध्य ही होती है।

अतिसार।

अधिक गरिष्ठ, अधिक परिमाण में या कुसमय आहार मिलने से वालकों को अतिसार (दस्तों) की बीमारी प्रायः हो-जाती है। यह दो प्रकार की होती है। एक साधारण दूसरी असाधारण। साधारणमें २-४ हरे पीले दस्त आकर क्रम ठीक हो जाता है, पर जब उपेक्षा होती है तो विशेष पतले और अनेक रङ्ग के दस्त आते हैं। असाधारण में महीनों, फूला हुआ, फटा हुआ, कुछ कड़ा कुछ पतला, कच्चा या ज्यों का त्यों (खाई हुई दाल या फलों के टुकड़े जैसे खाये वैसे ही गिरना) मल होता है। इसे चिकित्सक संग्रहणी भी कहते हैं, क्योंकि ऐसा विकार ग्रहणी की खरावी से ही होता है। पर वालकों के आशय प्रायः कोमल होते हैं और वे सहज ही में विगड़ वन जाते हैं, इससे इसे आयुर्वेद ने भी साधारण और साध्य ही माना है। इसलिये हम इसे केवल अतिसार का ही नाम देते हैं।

अतिसार की दशा में आमांश आने से आँत्र आने लगती

है। उसे आमातिसार कहना चाहिये। किसी भी चिकित्सक को चिकित्सा करते समय इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। कभी कभी आँव आते रहने पर भी आमातिसार का बोध नहीं होता। ऐसी दशा में यह परीक्षा करके आम पक्व दशा का ज्ञान अवश्य कर लेना चाहिये। बालक को जब दस्त होने लगे तब उसे एक जल भरे हुये मट्टी के खपरे पर बैठा दे। इससे पानी में जो मल गिरेगा यदि वह आमांशयुक्त होगा तो जल में बैठ जायगा। अन्यथा तैरता रहेगा। यह परीक्षा बंधे हुये गाँठदार मल की हो सकती है, पतले मल की नहीं। पतले मलकी परीक्षा करनी हो तो उसे सूखे मट्टी के पात्र में थोड़ी देर पड़ा रहने दे। यदि उसपर कुछ देर बाद चमक मालूम देने लगे तो उसे "आम" और चमक न मालूम दे तो "पक्व" समझना चाहिये।

अतीसार की चिकित्सा में यही भेद है। आमातीसार हो तो उसे पकाने की और पक्वातीसार हो तो उसे बन्द करने की चेष्टा की जानी चाहिये। आमातिसार रोकने से नहीं रुकता, कदाचित् रुक जाता है तो उससे बड़े विकार उत्पन्न होते हैं। इससे पहिले उसे पक्वातीसार बनाना और पीछे रोकना विशेष अच्छा है।

आमातीसार में शङ्खवटी, रामबाणरस, गंधकवटी, सौंफ का अर्क, सञ्जीवनी, आनन्द भैरव आदि औषधें देना चाहिये।

पक्वातीसार में कर्पूररस, समीर गजकेशरी, अतीस का चूर्ण, उबाली हुई छोटी हर्र, कुंकुमादिवटी, कच्चे बेल का गूदा देना चाहिये। पथ्य–सुपाच्य हलका और ताजा देना अच्छा है। यह देखा गया है कि ठीक पथ्य की यदि व्यवस्था हुई तो अतीसार की व्याधि आपही आप भी आराम हो जाती है।

विषूचिका।

अधिक गरमी का समय, अजीर्ण, हैजे के प्रकोप के स्थल या दूषित जल के सेवन से कभी कभी बालकों को भी विषूचिका (हैजा) हो जाती है। यह प्राण नाशक भयङ्कर रोग है। इस रोग में प्रायः बड़ों की तरह बालकों को भी मूत्र का अवरोध, पतले सफेद रङ्ग के दस्तों और बार बार वमन का होना, बेचैनी, देह भर में पीड़ा, दीनता, प्यास अत्यधिक, पर खाने की इच्छा का लोप, पेट शिथिल, नाड़ी क्षीण, जीभ सूखी और शारीरताप भी ९६–९७ के लगभग रह जाता है। असाध्य दशा में वमन से हलके गुलाबी रङ्ग का पानी और दस्तों से चावल के धोवन या माँड का जैसा सफेद मल आता है।

रोग के कारण का अन्वेषण करके वैसी ही चिकित्सा करनी चाहिये। पथ्य तब तक न देना चाहिये जब तक रोगी को आराम हुये ६ या ८ घण्टे न हो जायँ अथवा वह स्वयं आहार न माँगे।

खराब आबहवा की दशा में कपूर का प्रयोग करना आव-श्यक है। आधी चौथाई रत्ती की मात्रा में कपूर खिलाया भी जा सकता है। अजीर्ण हो तो लशुनादिवटी, गंधकवटी, राम-बाण रस, अर्क कपूर, लवङ्गादिवटी देना चाहिये।

प्यास की अधिकता में ईंट या खपरे से बुझाये हुये जल में हजरतजहूर थोड़ा थोड़ा घिसकर देना चाहिये। सादे जल के स्थान में सौंफ पोदीने के अर्क में शिकञ्जबीन सिर्का मिला-कर देना भी विशेष अच्छा है। शेष दशा में वैसे ही चिकित्सा करनी चाहिये जैसे बड़ों की।

कृमिरोग।

बालकों के शरीर में दो प्रकार के कृमि पाये जाते हैं। एक बाह्य (जूं लीख आदि) दूसरे आभ्यन्तर (चुरने पिटाट आदि) इन दोनों में जो आभ्यंतर कृमि होते हैं वे भी तीन स्थानों में (कफ, रक्त और पेट में) होते हैं। यहाँपर हम कफ और रक्त के कृमियों को छोड़ देते हैं। पेट के कृमियों में भी ३ प्रकार के कृमि पाये जाते हैं।

१–सूत जैसे पतले, चुरने।

२–कुछ बड़े और लम्बे केचुये जैसे।

३–बहुत बड़े लम्बे चपटे या मोटे पिटाट।

बाह्य कृमि लीक जूवें जैसे मलिन रहने और मैल पसीने

से पैदा होते हैं उसी प्रकार पेट के कृमि भी मलदोष, दूषित अन्न या मांस या मट्टी खाने से पैदा होते हैं। पहिले नंबर के कृमि प्रायः बालकों के पाकाशय से गुद द्वार तक होते हैं, या पाकाशय में पैदा होकर गुद द्वार तक पहुँच जाते हैं। दूसरे प्रकार के कृमि पाकाशय में पैदा होकर वहीं पलते रहते हैं। ये ऊपर को चढ़ने की भी कोशिश करते हैं। मरने पर ये मल द्वारसे मलके साथ निकल जाते हैं। तीसरे नंबर के बड़े खराब कृमि होते हैं, ये मरकर भी कष्ट से निकलते हैं।

बाह्य कृमि दूर करने के लिये नीम का तेल, शरीफ़े के बीजों का चूर्ण, कबीला, वायविडङ्ग के चूर्ण का उबटन या लेप करना चाहिये। इससे बाह्य कृमि मर जाते हैं और फिर पैदा नहीं होते।

पेट के कृमि जब पैदा होजाते हैं तब बालक का जी मचलाता है, फटे फटे दस्त कभी आते हैं या मल सूखकर काला, मैला, दुर्गन्धित आता है। पेट कड़ा आँख की पलकों पर भारीपन, शरीर का चर्म पीला या मटमैला हो जाता है। मट्टी खाने वाले बालक के कभी कभी पांडु रोग या यकृद्विकार के लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं। सोते समय बालक दाँत किरकिराते हैं और उनके श्वास में दुर्गन्धि आती है। चुरनों के गुद द्वार में पहुँच जाने से गुद द्वार में खुजली होने लगती है।

पेट के कृमियों के लिये खाने की दवायें—कबीला, शुद्ध गन्धक, वायविड़ङ्ग, नींब की गिरी, कृमिमुद्गररस आदि का उपयोग होना चाहिये। पत्तों का शाक, बासी भोजन, दही और पिट्ठी की चीजें, मांस या मट्टी को बंद करा देना चाहिये। इस रोग में कब्ज न होना चाहिये। यदि कब्ज हो या पाचन-दोष के कारण दस्तों की अव्यवस्थित दशा हो तो भी दोनों बातें दूर करने का उपाय करना चाहिये।

काँच निकलना।

अधिक दिनों तक दस्त आने, आमातीसार में बार बार जोर से काँखने, कृमि पैदा होने या मल विकार होने से गुदा का बलि-चक्र कमजोर हो जाता है और इसी कारण प्रायः बालकों को काँच निकला करती है।

इस रोग में काँच निकलने के मूल कारणों का पहिले प्रतीकार करना चाहिये। जब रोग शांत हो जाय तब थोड़ी मात्रा में १।२ चावल या इससे भी कम शुद्ध कुचिला दूने प्रमाण शुद्ध गंधक के साथ दिन में दो बार देना चाहिये और माज़ूफल त्रिफला और फिटकरी के काढ़े से गुदद्वार को दो बार धोना चाहिये। ऐसा करने से यह रोग नष्ट होजाता है।

पांडुरोग।

पित्त की अधिकता, पित्त-विकृति या यकृद्विकार से बा-

लकों को पांडुरोग होजाता है। इस रोगमें बालकों केशरीर का वर्ण पीला या कुछ हलका हरा, मुखपर शोथ, पेट बढ़ा सा, जीभ का रङ्ग सफेद-हलका पीला-शरीर में रूक्षता होती है। मूत्र अधिक पीलापन होता है। यहाँतक कि मूत्र में भीगने से कपड़ा हलदी के रङ्ग का हो जाता है। कभी कभी कुपथ्य के कारण मूत्र गाढ़ा भी आने लगता है। पाखाना रूखा और सफेद या मैले वर्ण का होता है।

इस रोग में पित्त-शांति का उपाय विशेष होना चाहिये। आहार में भी गरम या गरिष्ठ पदार्थ न होने चाहियें। मीठे या सादे फलों (ककड़ी आदि) का प्रयोग विशेष अच्छा है। औषधि में-शुक्ति, प्रवाल, मण्डूर, मौक्तिक या कुटकी का प्रयोग करना चाहिये। सौंफ और कासनी के स्वरस का प्रयोग भी लाभदायक है।

यकृद्विकार।

बालकों के आहार-दोषसे या भैंस के दूध दही के अधिक खाने से, पुराने उदरविकार या ज्वर के कारण यकृत् बिगड़ जाता है। इसमें कभी तो बालक को फटे फटे दस्त आते हैं, पर कभी कब्ज होकर मल फूला हुआ मटीले वर्ण का आता है। नाड़ी कठिन चलती है और हलका बुखार बना रहता है। सारा पेट कड़ा विशेष कर दाहिनी पँसुलियों के नीचे कड़ा

घना रहता है। दबाने से दर्द भी होता है। पुराने यकृत् में पेट बढ़ भी जाता है और कठोदर या जलोदर के से लक्षण होने लगते हैं। रोगके कारण यकृत् की दो दशा होती हैं, बढ़जाना या कुम्हिला जाना। कुम्हिला जाने से बालक भी कुम्हिला सा जाता है। तब क्षीण पित्त के लक्षण होते हैं। कब्ज हो जाता है और जीभपर मैल जमा रहता है। भूख नहीं लगती और पाचन विगड़ जाता है। हाथ-पैरों के तलुये गरम रहते हैं।

इस रोग में पाचन और दीपन किया करने से अधिक लाभ होता है। इस रोगके होनेपर बालक को सुपाच्य आहार विशेषकर दूध देना उत्तम है। औषधियों में–रोहीतकारिष्ट, यकृदरिलौह, त्रिफला मण्डूर, शङ्खवटी, सुहागे का लावा आदि देते रहना चाहिये। यकृत् बढ़ा हुआ हो तो पेटपर अण्डी के पत्ते बाँधना या हलके गोमूत्र से सेंक करके पलवे का लेप करना लाभदायक है।

कभी कभी यकृत् बढ़कर पक भी जाता है। इस पकाव को आयुर्वेद में यकृद्विद्रधि माना है। यह असाध्य होता है। इसमें बालक नहीं बचता।

उदर–रोग।

बड़े आदमियों की तरह बालकों को भी कभी कभी प्रायः

वैसा ही उदर रोग (जलोदर या कठोदर रोग) होजाता है। कभी कभी तो इस रोग का मूल कारण यकृत् और प्लीहा का बढ़ जाना ही होता है। यदि पेट में जल सञ्चित नहीं हुआ तो उसकी संज्ञा कठोर होने के कारण कठोदर रहती है। पर यदि जल सञ्चित हो गया तो जलोदर संज्ञा हो जाती है। परीक्षा करने से जलोदर ठीक पानी की भरी मसक जैसा हो जाता है। पेटकी नसें नीले रङ्ग की चमकने लगती हैं। पेट भी चमकने लगता है और रोगी को श्वास लेना भारी होजाता है।

इस रोगमें आरंभ में यकृद्विकार की दवा देने और विरेचन देने से लाभ होता है, पर पिछली दशामें जलोदर का जल निकालने की प्रथा ही कुछ लाभ करती है। इस रोगी को अन्न और जल की जगह केवल गरम दूध देना चाहिये। जल निकालना हो तो नाभि के बगल में जहाँपर कोई आशय न हो, न वृहदन्त्र हो, वहाँपर शंकु द्वारा छिद्र करके नलिका लगा देने से सब जल निकल आता है। इसे कच्चा नश्तर कहते हैं। पक्के नश्तर में उदर प्राचीर चीरकर जल आने के मार्ग को रोकने का विधान किया जाता है, पर इस कार्य में जीवन संदिग्ध ही रहता है। यह रोग प्रायः असाध्य ही होता है।

प्लीहा।

जिस प्रकार दाहिनी पँसुली के नीचे यकृत् बढ़ जाता है

उसी प्रकार वाँई पँसुली के नीचे तिल्ली बढ़ती है। उसके लक्षण और चिकित्सा ठीक यकृत् की तरह ही होते हैं। इससे हम उसका विशेष वर्णन नहीं लिखते हैं।

हृद्रोग।

नित्य की जीवन-क्रिया के लिये जहाँपर चलता फिरता रक्त शुद्ध किया जाता है उस स्थल का नाम हृदय या दिल है। इसके कई अंश हैं। इसके परदे, वाहरी भीतरी झिल्लियाँ और स्रोत जब विकृत हो जाते हैं तो उनसे कई रोग पैदा हो जाते हैं। दिल की धड़कन का बढ़ जाना या कम हो जाना, दर्द होना, श्वास लेने में कष्ट, घबड़ाना, वारवार बेचैनी से करवटें बदलना, स्तब्ध होना, चेहरे पर एकदम कालापन दौड़ना, हाथ पैर ठण्ढा होकर पसीना आ जाना, गला सूखना, वेहोशी आदि इस रोग के प्रधान लक्षण हैं।

यह रोग कुछ को बचपन से ही घेरता है। कुछ को और और रोगों के द्वारा दिल कमजोर होने के कारण होजाता है।

ऐसे रोगी को ढाढस देकर निर्भय रखना बड़ा जरूरी है। औषधियों में मौक्तिक, प्रवाल, मकरध्वज, केतकाद्य अवलेह, अर्क वेदमुश्क, एलावलेह, कस्तूरी वटिका देना लाभदायक है।

दिलकी हरकत घट जाने और रोगी के निराश होने से घबड़ाकर इस रोग में मृत्यु भी होती है।

सर्दी या नासास्राव ।

जिन बालकों को माता पिता बहुत बचाव की दृष्टि से गरम कपड़ों से रात दिन ज्यादः लदा फदा और बंद जगह में रखते हैं उनको जरासी सर्द हवा से या किसी भी आहार विहार की विषमता से प्रायः यह रोग हो जाता है। इस रोग में बालक की नाक बहती रहती है, कभी कभी छींक आती हैं, पर विशेष नहीं। नाकके परदे लालरङ्ग के रहते हैं, कभी कभी उनमें हलकी सूजन भी होती है। देखने में यह जुखाम का भाई मालूम होता है, पर वास्तव में इस रोग में मस्तक का भारी-पन, श्वासरोध या आवाज का बैठजाना आदि एक भी लक्षण नहीं होता। इससे इसे प्रतिश्याय से भिन्न ही माना जाता है। बार बार होने से किसी किसी बालक के यह स्वाभाविक सा रोग हो जाता है और बहुत समय तक रहता है।

इसमें सर्दी पचाने और नजले के सुखाने की क्रिया होनी चाहिये। ऐसी चिकित्सा सेही इसमें लाभ होता है। कट्फल चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण, कुंकुमादिवटी, लोकनाथ रस, बालरस देना लाभदायक है। जिन बालकों को यह रोग एक सप्ताह से भी अधिक का हो जाय उनके आहार विहार में ऐसा परिवर्त्तन कर देना चाहिये जिस से उन्हें सर्दी या वायु सहने की शक्ति पैदा हो जाय।

नासावरोध ।

कुछ वालक खेलके समय गोली, फूल, चना, मटर, कङ्कड़ आदि नासिका में चढ़ा लेते हैं। जब वह नाकमें चढ़ जाता है तो नासावरोध हो जाता है। जिस नासिका में वह बाहरी पदार्थ अटक जाता है उससे सांस लेना रुक जाता है।

इस नासावरोध में छींक दिलाकर या शंकु यंत्र से बाह्य पदार्थ बड़ी युक्ति से निकाल देना चाहिये। ऐसी दशामें कभी कभी चिमटी या अन्य वस्तुओं से भी निकालने की क्रिया की जाती है। पर यह सब काम होशियारी से करना चाहिये। नहीं जरासी चूक होने से खून आजाता है और फिर वह पदार्थ न दीखने के कारण निकलना भी मुश्किल हो जाता है। इस कार्य में आँकड़े का जैसा घूमा हुआ शंकुयंत्र विशेष अच्छा होता है। नाक के आगे के हिस्से से पाव इञ्च भीतरी ओर नीचे की तरफ एक गढ़ा है उसी जगह से शंकुका टेढ़ा भाग अटकी हुई वस्तु के नीचे ले जाकर घुमा देना चाहिये। इससे वह बाहरी पदार्थ अटक जाता है और निकालने से सहज में निकल आता है। यदि वालक चञ्चल या विशेष घबराहट में हो तो सम्मोहनविधि से अचेत करके यह क्रिया करनी चाहिये।

नकसीर ।

यह रोग वालकों को कभी कभी होजाता है। साधारणतः

नाक में अँगुली देने के कारण नख की चोट लगने से और विशेषतः हृत्पिण्ड के या फुप्फुस के विकार से। कभी कभी सर्दी की खाँसी या जुकाम के जोर से भी यह रोग हो जाता है। गरमी के मौसिम में खुश्की और गरमी से होजाता है।

किसी भी कारण से हो इस रोग में शीतोपचार ही किया जाता है। रोगांतर के कारण से हो तो उस रोग की अवस्था व्यवस्था के अनुसार इसका उपचार किया जाता है। नाकको शीतल जल से धोना, बरफ का टुकड़ा कपड़े के भीतर रख-कर नाक में रखना, कपूर और सुगन्धित सफेद रङ्ग के फूलों को सूंघना, माजूफल या त्रिफला के शीतकषाय से नासिका का धोना इत्यादि उपाय करने चाहियें।

नासार्श।

इसे नासातन्तुवृद्धि भी कहते हैं। देशी भाषा में नकुड़ा कहते हैं। नासिका में मल जमा रहने से इस रोग की वृद्धि होती है। बढ़ने पर बालक से श्वास नहीं लिया जाता और चर्वणयोग्य पदार्थ चबाये नहीं जाते। श्वासक्रिया की कमी से बालक की शारीर वृद्धि में आघात पहुँचता है और चर्वण क्रिया कम होने से मुखमण्डल के अस्थियों का यथावत् विकास नहीं होने पाता। इस रोग में बालक सोता सोता एकाएक चौंककर उठता है और अच्छी प्रकार श्वास न आने पर घब ड़ाया करता है।

इसकी चिकित्सा केवल औषधि तथा पथ्य से भी होती है। आरम्भिक दशा में नासिका के मल शुद्ध रहने के उपाय करना चाहिये। वालक को नाक छिनकने का अभ्यास कराना चाहिये। नासिका में क्षार जलकी पिचकारी दे देकर दिन में दो वार मल साफ करना चाहिये। वालक को ऐसे व्यायाम का अभ्यास करा देना चाहिये जिससे वह भरपूर श्वास लेता रहे। इस प्रकार रोग घटने लगता है और कालान्तर में नष्ट भी हो जाता है।

यदि उपेक्षावश रोग अधिक वढ़ चुका हो तो बालक को सम्मोहनविधि से अचेत करके शस्त्र-क्रिया से नासार्श का छेदन करना और व्रण-चिकित्सा से उस व्रण को आरोग्य करना चाहिये। पाश्चात्य चिकित्सक इस शल्यक्रिया में लो-वेनवर्ग के फारसेप्स या क्यूरेट को काम में लाते हैं।

कण्ठावरोध।

कई साधारण कारणों जिनमें सर्दी ही मुख्यतया रहती है गले की नलिका में विकार पैदा करके कण्ठावरोध पैदा कर देती है। इस रोग में श्वास रुकता है, गले का स्वर बैठ जाता है, वालक का जी ऊवता है, थोड़ी सूखी खाँसी का ठसका आता है और गले में पीड़ा हो जाती है। इस रोग से गले के आस पास की झिल्ली आदि में भी रोग पैदा हो जाते हैं।

कण्ठावरोध से बालक तरल पदार्थों को छोड़कर कठिन पदार्थों को खा ही नहीं सकता, बड़े कष्ट से दिन काटता है।

इस रोग में दूध आदि तरल पौष्टिक पदार्थ ही बालक को देने चाहियें। बालक के मुखके पास खौलते हुये पानी में तार-पीन, लोबान या नारायण तैल डालकर उसकी भाप श्वास द्वारा पेटमें पहुँचानी चाहिये। गले में नारायण तैल का मर्दन करके गले में भी वाष्प-सेक करना चाहिये। गरम जल में पिसी हुई राई मिलाकर बालक के पैर धोकर उन्हें गरम कपड़े से ढकना भी इस रोग में लाभप्रद होता है।

कभी कभी खाते पीते समय हँसी आने, खाँसने, हँसने, बोलने, रोने से आहारी द्रव्य या मुंह में पड़ी हुई कोई चीज अन्नमार्ग में न जाकर श्वासपथ में अटक जाती है तब भी कण्ठावरोध हो जाया करता है। जिस मार्ग में द्रव्य अटकता है उधर की श्वास क्रिया मन्द हो जाती है और फुफ्फुस की क्रिया बराबर नहीं होने पाती। यह कण्ठावरोध बहुत ही कष्टकर होता है क्योंकि इसका बोध और चिकित्सा दोनोंही कठिन है। जब अनुमान से किसी प्रकार का ज्ञान न हो तब तीव्र ज्योति-निरीक्षण यन्त्र (X Ray) द्वारा ही अटके हुये पदार्थ की खोज की जासकती है। इस पदार्थ को निकालने के लिये कभी कभी छींक कारगर हो जाती है। इस लिये बालक को खटोले पर सीधा

लिटाकर मस्तक को नीचे की ओर लटका देना चाहिये, जिससे नासापुट ऊपर आकाश की तरफ हो जाँय। तब सुंघनी या कोई भी तीव्र नस्य देकर छींक दिलाना चाहिये। इससे कभी कभी अर्थ सिद्ध हो जाता है। इससे भी काम न निकले और यह निश्चय हो कि वास्तव में श्वास-नलिका में कोई बाह्य पदार्थ ही अटका है तो होशियार शल्य चिकित्सक द्वारा शस्त्रक्रिया कराना ही लाभप्रद होता है। और कोई गति नहीं।

कासश्वास।

खाँसी और दमा निदान में बहुत कुछ समता रखते हैं। जिन कारणों से, जिस स्थल में, जिस प्रकार खाँसी होती या जोर पकड़ती है लगभग उसी प्रकार, उसी स्थल में, उन्हीं कारणों से श्वास रोग आरंभ होता है। इन दोनों की चिकित्सा भी इसी कारण मिलती जुलती सी होती है।

खाँसी और दमा दोनों ही फुप्फुस से संबंध रखने वाले कण्ठनली के विकार हैं। इन रोगों में फुप्फुस, कण्ठ (श्वास-) नलिका, फुप्फुसावरण कला आदि में विकार होता है। गरद गुब्बार, धुआँ, ठण्ड, जुकाम, आहारविकार आदि से इनकी उत्पत्ति होती है। आरम्भ में ये रोग साधारण मालूम होते हैं, फिर बढ़ते बढ़ते प्राणघातक तक हो जाते हैं।

सूखी खाँसी ठसके से आती है, श्वास जल्दी जल्दी चलने

लगता है, भूख नहीं लगती, कब्ज होजाता है। बालक बलग़म थूकना नहीं जानते इससे बलग़म न निकलने के कारण उसके छाती में जम जाने से भी रोग जोर पकड़ता है। रोग के आरम्भ में केवल फुफ्फुस की श्लैष्मिक कला विकृत होती है। ऐसी दशा में आकर्णन यंत्र से सुना जाय तो वहाँ से साँय साँय का शब्द सुनने में आता है। श्वास की गति जब बढ़ जाती है तब कण्ठ अधिक सूखता है और जिह्वा सफेद रङ्ग की होकर उसपर काँटे पड़ने लगते हैं। गले में दर्द पैदा होकर कभी कभी छाती दूखने लगती है। ज्वर हो जाता है तो कभी कभी प्रलाप भी हो जाता है।

इस रोग की चिकित्सा करते समय इन बातों पर जरूर ध्यान रखना चाहिये।

१–छाती खुली न रहे।

२–बालक को घेर घोटकर गंदी जगह में न रक्खा जाय।

३–शुद्ध वायु आने का मकान में जरूर प्रबन्ध रहे।

४–बालक को घबरवाना या बार बार उथल पुथल कर तङ्ग करना ठीक नहीं। अलग छोटे खटोले पर रखना विशेष अच्छा है।

५–अताइयों की अनाप शनाप दवा न दी जाय, क्योंकि कभी कभी सरदी लगकर जो कास श्वास होते हैं पीछे वे भय-

क्रूर होकर बालक की जान के गाहक हो जाते हैं। इस बातको अताई नहीं समझ सकते।

चिकित्सा के आरम्भ में कुछ विरेचक औषधि देना उचित है। इससे दो फायदे हैं। एक तो कोष्ठ शुद्ध होता है, दूसरे वायु की अनुलोम गति होने से श्वास भी दबता है। जब तक ज्वर रहे-दूध, सागूदाना, पतला जौ का दलिया अथवा हरीरा देना चाहिये, सो भी थोड़ी मात्रा में और समझ बूझकर। छाती पर अलसी की गरम पुलटिस का रखना या सेंक करना भी आवश्यक है। पर, इस बातका खयाल रहे कि पुलटिस अधिक गरम न हो और बालक उसे सह सके।

औषधियों में-तालीसाद्य, सितोपलादि, मरिचादि वटिका, एलादि बटिका, लोकनाथ रस, चंद्रामृत रस, कुमुदेश्वररस, लक्ष्मीविलास रस, कट्फल चूर्ण, रुब्बेसूस, प्रवालभस्म, अभ्रभस्म, कल्पतरु रस, यवक्षार आदि जो उचित समझ पड़े; दिया जाय।

कर्कोटक (न्यूमोनिया)।

अधिक सर्दी लगकर फुफ्फुस विगड़ जाने पर यह रोग पैदा होता है। आरम्भ में इसमें साधारण कास श्वास होते हैं। बढ़ जानेपर कास श्वास अधिक तीव्र होजाते हैं, तब कफ बड़ी मुशकिल से तरी पाता है। कफ बहुत लसीला होने से चपक जाता है और उसका परिपाक नहीं होता। कफमें कुछ

रक्त आता है। रक्त के साथ फेन आता है। खाँसते समय बालक का मुखमण्डल तमतमा उठता है। ज्वर १०५ डिग्री तक होजाता है। छाती में बंसी सी बजती रहती है। दिनसे रात्रि में रोग अधिक जोर पकड़ता है। बालक इससे बेचैन होजाता है और प्रलाप भी करने लगता है। पेशाब कुछ गाढ़ा और लाल रङ्ग का थोड़ा सा होता है। श्वासकी गति एक मिनिट में ६० से ८० तक और नाड़ी की गति १५० से १६० तक हो जाती है। छाती में श्वास छोड़ते समय बुल्ले फूटने का शब्द होता है।

यह रोग सन्निपात का साथी है। उग्र होनेपर बालक का बचना असंभव हो जाता है। इस रोग में कास श्वास की औषधियाँ देने से ही लाभ होता है। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि कफ का परिपाक ठीक ठीक होता रहे, वह सूख न जाय। शीत या रात्रि के समय कस्तूरी और सूतशेखर का प्रयोग किया जा सकता है। इसी रोग के साथ बालकों के पँसुली का आरम्भ भी होते देखा गया है। औषधियों में–लोकनाथ रस, लक्ष्मीविलास रस, अभ्र, यवक्षार, कट्फल–चूर्ण, प्रवालभस्म, द्राक्षासव, वासारिष्ट, कनकासव, लौहभस्म आदि का प्रयोग करना चाहिये।

पँसुली।

अधिक कफविशिष्ट दूध पीने या मीठा पदार्थ खाने अ-

थवा सर्दी लग जाने से फुप्फुस का कफ जमकर पँसुली रोग पैदा कर देता है। कभी कभी तो बालक के कुपथ्य न होनेपर, माता के इन्हीं कुपथ्यों से भी पँसुली रोग की प्रवृत्ति होजाती है। इसमें खाँसी की विशेषता नहीं होती, न मुंह तमतमाता है, पर श्वासरोध विशेष होता है। श्वास का खिंचाव अधिक होने के कारण उदर-प्राचीर खिंचने से पँसुलियों के नीचे प्लीहा और यकृत् की जगह गड्ढे पड़ने लगते हैं। कभी कभी ज्वर नहीं होता, पर कभी १०० से १०५ तक ज्वर होजाता है।

इसमें कफनाशक, फुप्फुसशोधक, वमन से कफ और विरेचन से मल शुद्ध करने वाली औषधि देनी चाहिये। भुना सुहागा, कट्फलचूर्ण, यवक्षार, प्रवाल भस्म, शङ्खभस्म, लोकनाथ रस, कस्तूरी, अभ्रभस्म, मीठी वच, आदि का प्रयोग करना अच्छा है। छाती और पँसुली पर पुराने घी और सेंधा नमक की मालिस से भी लाभ होता है। इस रोग में पेट का अफारा होना और श्वास का विशेष रुकना असाध्यता का लक्षण होता है।

फुप्फुसकला-विकार।

दोनों फेफड़ों की रक्षा या उसमें तरी रखने के लिये ऊपर से एक श्लैष्मिक कला (झिल्ली) लपटी रहती है। उसपर चोट लगने, सरदी लग जाने या कोई भी फुप्फुस विकार या रक्त दोष होजाने से इसमें भी प्रायः रोग होजाते हैं। इस कला

के विकृत होने से प्रायः कर्कोटक से मिलते जुलते ही लक्षण होते हैं। आरंभ में प्रातःकाल मामूली श्वास–कष्ट मालूम होता है, सायङ्काल उसमें वृद्धि होती है। फिर सिरमें दर्द, ठण्ढ लगना, ज्वर की अधिकता, शीघ्रता से श्वास आना, श्वास लेते या खाँसते समय छुरी भोंकने का सा दर्द, (इस दर्द से पीड़ित बालक दर्द वाली पँसुली की तरफ सो नहीं सकता) कब्ज, नाड़ी द्रुतगामिनी, शरीर गरम, पेशाब लाल और थोड़ा होता है।

आकर्णन–यंत्र से सुनने पर ऐसा शब्द सुनाई पड़ता है जैसे कोई भारी चीज घिसी जाती हो। पर कभी कभी मध्य में यह शब्द रुक भी जाता है। इस रोग को पाश्चात्य चिकित्सक ३ भागों में विभक्त करते हैं। १–जिसमें मुख से पीला लसदार पतला थूक निकले। २–जिसमें पतला मवाद मिला थूक निकले। ३–जिसमें खून आता हो। परंतु बालकों के इस भेद का ज्ञान नहीं होने पाता, क्योंकि वे थूक नहीं पाते और जो लार निकलती भी है वह केवल गलफरों से निकलने के कारण उन लक्षणों को स्पष्ट नहीं कर सकती।

इस रोग की चिकित्सा कर्कोटक या पँसुली की तरह ही होनी चाहिये। उसी से यथेष्ट लाभ होते देखा गया है। पुराने घी में कपूर मिलाकर पीठ, छाती और पँसुली पर मालिश करके रुई के पहल या फलालेन लपेट देना चाहिये।

द्रुताक्षेप ।

इस रोग को सर्व साधारण दौरे के नाम से पहिचानते हैं। दौरा इसे इस लिये कहते हैं कि यह बार बार होता है। द्रुताक्षेप इस लिये कहते हैं कि यह विना किसी प्रकार की सूचना के बड़ी शीघ्रता से एकदम हो आता है। दौरा कई कारणों से हो सकता है, इसका कोई ठीक नहीं। दाँत निकलते समय, अधिक तीव्र ज्वर में, पेट के कृमि रोग में, मस्तिष्क के विकारो में, रक्त विकार आदि में।

इसके होते होते बालक का मुख एकदम रङ्गपलट जाता है। रङ्ग फीका पड़ जाता है, दृष्टि कुछ टेढ़ी और स्तब्ध हो जाती है। हाथ पैर खिंचते और बेहोशी आती है। पैर सीधे तनते हैं, पर, हाथ सिकुड़ते और मुट्ठी बँधती है। दाँतों की चौहर धर जाती है और बाज बखत दाँत किट किटाते हैं। नाड़ी मन्द और शिथिल गामिनी हो जाती है। उसी दशा में कभी कभी बालक का मलमूत्र भी निकल जाता है। श्वास बड़े कष्ट से, थोड़ा सा, लम्बा लिया जाता है। कुछ मिनटों में दौरे का दौरा समाप्त होने से सब बातें समाप्त हो जाती हैं और बालक के शरीर-विशेषकर माथे-पर पसीना आकर वह स्वस्थ हो जाता है।

दौरा समाप्त होनेपर बालक पूर्ववत् हो जाता है। इस

रोग में और मृगी (अपस्मार) में कुछही भेद होता है। इसकी चिकित्सा करते समय दौरे के मूल कारणों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। कारणों का प्रतीकार करते हुये मृगी की चिकित्सा करने से बराबर लाभ होता है।

पाश्चात्य चिकित्सक कभी कभी इस रोग में बालक को १०० तापांश फार्नहीट गरम जल में गल पर्यंत डुबोकर सिर-पर बरफ रखकर चिकित्सा करते हैं। दस्त कराने को वर्त्तिका का प्रयोग करते हैं और गुदद्वार से औषधि पहुँचाने की चेष्टा करते हैं। हमारी समझ में यह कालयापन होते होते काकतालीय न्याय से दौरा समाप्त हो जाता है और बालक स्वस्थ हो जाता है।

खिंचाव।

यह एक प्रकार का वातरोग है। इसमेंबालक के हाथ पैर खिंचते हैं। हाथ की मुट्ठी कड़ी बँध जाती हैं और पैरों की अँगुली तलुओं की ओर सिकुड़ जाती हैं। परहाथ पैर सीधे ही रहते हैं। इसमें रोगी बेहोश नहीं होता। इसके भी कभी कभी दौरे से होते हैं।

इस रोग में नारायण, माषादि, विषगर्भ या शतावरी तैल की मालिश, चिन्तामणि, चतुर्मुख, कस्तूरी-भैरव, समीरगज केसरी, योगराज गुग्गुलु आदि रसों का उपयोग लाभप्रद होता है।

अपस्मार (मृगी)।

यह रोग कभी कभी संसर्ग से भी होता है। जिन माता पिताओं को यह व्याधि रही है उनके बालक भी इससे ग्रस्त पाये गये हैं। अनेकवार ऐसा भी देखा गया है कि अपस्मार-ग्रस्त बालक के साथ दूध पीने वाले बालक को भी हलका भारी यह रोग अवश्य हो गया है। इसका भी कोई समय नहीं, इसके प्रायः चाहे जब दौरे होते रहते हैं।

इस रोग में ठीक द्रुताक्षेप के से लक्षण होते हैं, पर कुछ विशेषता भी होती है-आँखें फरकना, मुंह विचकाना, मुंह में फेना आना, हाथ पैरों का पटकना, अग्नि, जल देखकर वेग का होना इसमें विशेषता है। दौरा समाप्त होनेपर इसमें भी स्वस्थता आ जाती है।

इसके मूल कारणों में पूर्व-जन्मार्जित पापों के अतिरिक्त कभी कभी वे भी कारण देखे जाते हैं जो द्रुताक्षेप में हम लिख आये हैं। इस रोग की चिकित्सा में-महा चैतस घृत, ब्राम्ही घृत चतुर्मुख रस, चिन्तामणि रस, वचा, शङ्खपुष्पी, सारस्वतारिष्ट, विश्वाद्य चूर्ण, सारस्वत चूर्ण आदि का उपयोग करना चाहिये।

पथ्य में वासी अन्न या दूध कभी न देना चाहिये। सदैव

मलमूत्र-शुद्धि भी अच्छे प्रकार करनी चाहिये। इसकी चिकित्सा कई मास तक अच्छे चिकित्सक द्वारा होनी चाहिये।

अपतन्त्रक (हिष्टीरिया)।

इस रोग में बालक कभी हँसता है या कभी रोता है, प्रलाप भी होता है, कभी कभी बेहोशी आजाती है और कुन्हाने लगता है। कभी कभी भय खाता है और चिल्लाता है। यूनानी और पाश्चात्य चिकित्सकों (डाक्टरों) का मत था कि यह रोग केवल गर्भाशय की खराबी से ही पैदा होता है, इस लिये यह स्त्रियों खासकर बिधवाओं, युवतियों और प्रसूताओं को होता है। पर क्रमशः उनकी यह धारणा नष्ट होने लगी है। वे अब यहाँ तक मानने लगे हैं कि यह रोग पुरुषों और १० वर्ष के बालकों को भी होता है। पर कुछ भी हो, हम इस रोग को वातजन्य मानते हैं इससे हमारे मन्तव्यानुसार यह सब को होता है।

बड़े बालक यह बता सकते हैं कि इस रोग में पेट से हृदय और कण्ठ तक गोला सा कुछ जाता है, जो अंत में कण्ठ रोककर अज्ञान बना देता है, तब ये लक्षण होते हैं।

इस रोग में लक्ष्मीविलास रस, चतुर्मुख रस, चिंतामणि रस, बसन्त कुसुमाकर रस खिलाना और नारायण, चंदनादि, शतावरी तैल का मर्दन करना और चैतन्य लाने के लिये नौ-

सादर और चूने की गंध सुंघाना लाभप्रद होता है। आहार पौष्टिक, सुपाच्य और दिलको ताकत देने वाला होना चाहिये।

निशाभीति।

अनेक मानसिक कारणों, अच्छी प्रकार निद्रा न आने, अभिभावुकों द्वारा रात दिन भय दिखाने, पाचनक्रिया बिगड़ने, या हृदय के कमजोर होने से बालक रातको डरा करते हैं। इस रोगमें बालक सोते समय सुख से सोते हैं, पर रातको किसी समय भी एकाएक डरे हुये से चीख उठते हैं और इतने भयग्रस्त हो जाते हैं कि उस समय माता पिता के धैर्य देने पर भी रोते नहीं रुकते।

इस रोग में हृदय को बल देने, बालक को ढाढस देकर निडर बनाने, गहरी नींद लाने और भय के कारणों को दूर कर देने से ही रोग दूर होता है। औषधियों में मुक्ता, शुक्ति, प्रवाल, चाँदी सोने के वर्क और कस्तूरी आदि का प्रयोग करना चाहिये। इनसे बालक का हृदय बलवान् होता है।

ताण्डव-वात।

यह एक प्रकार का वातरोग है। आरम्भ में बालकों का स्वभाव चिड़ चिड़ा हो जाता है। पीछे इसके एड़ी से चोटी तक के अङ्ग स्वयं फड़कते रहते हैं। इसका भी प्रायः दौरा सा होता है। कभी कभी ये लक्षण जोर पकड़ते हैं, पर कभी हलके होते हैं।

इसकी चिकित्सा में नारायण, माषादि, शतावरी, प्रसारणी, विषगर्भ, महामाषादि वा चंदनादि तैल का मर्दन होना चाहिये। औषधियों में एकाङ्गबीर, लशुनादि वटी, चिंतामणि, चतुर्मुख रस का प्रयोग होना चाहिये। अधिक उग्र औषधियों का प्रयोग न करे कुपथ्य का परिहार बहुत ध्यान पूर्वक करना चाहिये।

जड़ता।

कुछ बालक बुद्धि के इतने ठस होते हैं कि उन्हें लाख इशारे से बातें समझाई सिखाई जाँय, पर वे कुछ नहीं समझते सीखते। इनकी स्मरण-शक्ति भी बिलकुल निकम्मी होती है। थोड़ी देर पहिले की सिखाई बात भी उन्हें याद नहीं रहती।

इसी प्रकार कुछ बालक ऐसे गुमसुम रहते हैं कि उनको सुनने और करने का काम पहाड़ मालूम होता है। वे मुलायम बातों पर ध्यान नहीं देते पर कड़ी बातों पर बहुत रुष्ट हो जाते हैं।

ऐसे बालकों की शव-परीक्षा से ज्ञात हुआ है कि उनका मस्तिष्क ही ऐसे बेढङ्गे तौर से छोटा, संकुचित, मोटी झिल्ली का और तन्तुविहीन सा होता है जैसा अन्य साधारण मनुष्यों में भी नहीं मिलता। संभव है कि ये इसी कारण ऐसे विचित्र रोग-ग्रस्त होजाते हों। ऐसे रोगियों की सामयिक चिकित्सा

सहज नहीं। स्वर्ण-घटित सारस्वतारिष्ट, ब्राम्हीघृत और शुद्ध मुक्ता कई मास तक खिलाने और बातों का अभ्यास कराने से जड़ता में कुछ लाभ होता है।

पक्षाघात।

पक्षाघात का अर्थ है शरीर के किसी भी एक बाजू नष्ट होना। इस रोग में मुंह का आधा हिस्सा, एक हाथ, एक पैर या एक तरफ के दोनों हाथ पैर निकम्मे हो जाते हैं। जिस भाग में पक्षाघात हो जाता है वह भाग अकर्मण्य, अचेतन हो जाता है। यदि मुंह में हुआ तो मुंह टेढ़ा, आँख टेढ़ी, जबड़ा टेढ़ा रहता है। इससे न मुंह ठीक बन्द होता है न आँखें। हाथ पैर में हुआ तो ये सूख जाते हैं और इनसे चलना फिरना या काम करना नहीं होता। रोगी पैर के बल खड़ा नहीं हो सकता या मुशकिल से ही खड़ा हो सकता है, हाथ पैर झूलने लगते हैं।

आरम्भ में इस रोग में बालक कष्ट से रोता है। रोने की आवाज फटी और दीनता लिये होती है। फिर किसी अङ्ग के रोगग्रस्त होने के साफ साफ लक्षण प्रगट हो जाते हैं। जिस पक्षाघात में चुटकी काटने से रोगी को दर्द न मालूम हो; वह मुशकिल से ही आराम होता है। आराम होनेपर इस रोग का कोई न कोई कुलक्षण रह ही जाता है। इस रोग का कभी कभी ३।३ बार भी दौरा होता है।

इसमें माता के दूध के सिवा दुग्धाहारी बालक को कुछ भी चीज पथ्य में न देना चाहिये। बालक अन्नाहारी हो तो तिलके तेल में पके पदार्थ दिये जा सकते हैं। बासी चीजें, ठण्ढी चीजें, दही, भैंसका दूध देना और स्नान कराना सर्वथा निषेध है। नारायण, माषादि, महामाषादि, प्रसारणी, शतावरी, विषगर्भ आदि में से किसी भी तैल का प्रति दिन मर्दन होना चाहिये। औषधियों में लशुनपाक, चतुर्मुख, वातपन्नग एकाङ्गवीर आदि रसों का उपयोग होना चाहिये।

मस्तिष्क-विकार।

शरीर में मस्तिष्क एक विचित्र प्रकार का यंत्र है। शरीर की सब क्रियाओं का सम्बन्ध मस्तिष्क के तन्तु जाल से बँधा रहता है। इसकी महिमा का पार पहिले समय के कुछ योगियों को मिला था या स्वर्वैद्य अश्विनी कुमारों को मिला था। इसमें जो रोग होते हैं वे विचित्र होते हैं। उनका अच्छा होना आज तक की किसी वैद्यक-पद्धति से भी निश्चित नहीं हो सका है। इस लिये उन रोगों का दिग्दर्शन मात्र कराकर हम मौन होते हैं। ये सभी रोग असाध्य ही होते हैं।

१–मस्तिष्क की श्लेष्म-कला जब विकृत हो जाती है तब बालक में ये लक्षण सहसा आरम्भ हो जाते हैं। ठण्ढ लगना, वमन, तीव्र ज्वर, मुखमण्डल फीका-निस्तेज, क्षुधा का लोप, प्यास की तीव्रता, मस्तक छूने या झुकाने से

चिकारना, चैतन्य-लोप, अज्ञानावस्था में मलमूत्र-त्याग।

२-मस्तिष्क की खाली गुहाओं में जल-सञ्चय होने से ये लक्षण पाये जाते हैं। बालक अस्थिर, क्षुधालोप, ज्वर, शिरः-पीड़ा, शिर घूमना, प्रलाप, निद्रा-नाश, नसों का फड़कना, ऐंठना।

३-मस्तिष्क के तन्तु टूटने से जब रक्तस्राव होने लगता है तब ये लक्षण होते हैं। मस्तक का भारीपन, शिर-दर्द, चक्कर आना, तन्द्रा, चैतन्य-लोप।

४-मस्तिष्क की धमनियाँ रक्त-पूर्ण होनेपर ये लक्षण होते हैं। कब्ज, ज्वर, मस्तक का अधिक गरम होना, शिर-दर्द, चिड़चिड़ापन, तेज चमकीली चीजें न देख सकना, अ-निद्रा, दाँत किटकिटाना, नाड़ी की अधीरता। अथवा-आलस्य, तन्द्रा, मुखमण्डल में कालापन, शिर दर्द इत्यादि पूर्व लक्षण।

५-मस्तिष्क में रक्त की कमी होनेपर ये लक्षण होते हैं। मुख पर पीलापन, माथा पटकना, आँखें उलटना, हाथ पैरों में खिंचाव, क्षुधालोप, नाड़ी क्षीण, श्वास प्रश्वास की अधिकता, शरीर ठण्ढा।

६-मस्तिष्क में अर्बुद (गाँठ) पैदा होनेपर ये लक्षण पैदा होते हैं। मस्तिष्क के पिछले भाग में पीड़ा, बेचैनी, वमन,

शोथ, दृष्टि-मान्द्य, पैरों का लड़खड़ाना, आँखें उलटना इत्यादि ।

७-मस्तिष्क और पृष्ठ वंश के सुषुम्नाकांड का बहुत कुछ अभिन्न सम्बन्ध है, इससे उसमें बिकार होने से भी इसी से मिलते जुलते लक्षण वाले अनेक रोग जिनमें कई प्रकार के पक्षाघात भी शामिल हैं कभी कभी हो जाया करते हैं। ये सब असाध्य होते हैं ।

मूत्र--विकार ।

बहुत छोटे बालकों का आहार दुग्ध होता है। दूध में जलीय अंश अधिक होने से उनके आहार का अधिक भाग मूत्र बन जाता है। पहिले वह रङ्गमें सफेद और निर्गन्ध होता है, उस में क्षार अंश बहुत कम रहता है। फिर शनैः शनैः बढ़ता है। दो वर्ष के बालक का मूत्र शरीर तौल के मुकाबिले में जितना हो सकता है छोटी उम्र के बालक का पेशाब उसका शरीर भार देखते कहीं अधिक होता है। पर ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती है त्यों त्यों शरीर भार की अपेक्षा मूत्रका वजन कम होता चला जाता है। यदि ६ मास के बालक का मूत्र इकट्ठा किया जाय तो एक अहोरात्र में ८-९ छटांक होता है। पर दो वर्ष तक के बालक के मूत्र का परिमाण औसतन छः छटाँक होगा। ऋतु-विशेष या आहार-विशेष। ऋतुविशेष या आहारविशेष से यह परिमाण घट बढ़ भी सकता है।

बुखार में मूत्र की मात्रा घट जाती है। बालकपन में मूत्र का गुरुत्व बड़े आदमी के मूत्र के गुरुत्व से कुछ अधिक होता है। कभी कभी गुरुत्व १०३० से १०७५ तक या इस से भी अधिक पाया जाता है। छोटी उम्र में कभी कभी बालकों के पेशाब में क्षार के कण या लुआब सा भी आजाता है। पर ये बातें जब तक अधिक परिमाण में न हों तब तक रोग-गणना में नहीं आतीं।

पेशाब मात्रा से अधिक होता हो तो बसंतकुसुमाकर रस, कुंकुम थोड़ी मात्रा से शहद या माता के दूध के साथ चटाना चाहिये। और विकार हों तो आगे के लक्षणों के अनुकूल दूसरे उपायों का अवलम्बन करना चाहिये।

रक्त-मूत्र।

यह दो प्रकार से होता है। अत्यधिक गरम पथ्य या औषधि के अभाव से अथवा मूत्राशय या मूत्रेन्द्रिय के किसी स्थान में चोट लगकर रक्त के मिल जाने से। जिसमें रक्त मिलकर सुर्खी आती है सूक्ष्म दर्शकयंत्र के निरीक्षण से उसमें रक्त कण मिलते हैं। दूसरे में केवल वर्ण होता है। पर दोनों की चिकित्सा मिलती जुलती होती है।

ऐसी दशा में उन्नाव, धनिया, कासनी, यवक्षार, शुद्ध शुक्ति, शुद्ध प्रवाल, मौक्तिक, धात्री रसायन का प्रयोग करना

चाहिये। आहार में भी अधिकांश दूध और सौम्य चीजें ही देना चाहिये।

मूत्रस्तम्भ।

कभी कभी साधारण कारणों से भी बालकों को साधारण मूत्रस्तम्भ हो जाता है। ऐसा हो तो उन कारणों को दूर करके बालक के तल पेटपर नाभि के नीचे और नलोंपर–गरम पानी में कपड़ा भिगोकर निचोकर वाष्प–सेक करना चाहिये। अथवा–मूसे की मींगन, सफेदजीरा, जवाखार, धनिया पानी में पीस कर पकाकर हलका गरम लेप करना चाहिये। इससे मूत्रस्तम्भ दूर हो जाता है।

पूयमूत्र।

वस्तिस्थान में किसी प्रकार का घाव, मूत्राश्मरी द्वारा व्रण हो जाने, गुर्दे के विकार अथवा मूत्रनलिका में घाव हो जाने से पेशाव में मवाद आया करती है। इसी प्रकार इन कारणों और योनि दोष या भीतर की बच्चेदानी के दोष से बालिकाओं का मूत्र पूययुक्त आता है।

यह दो प्रकार का होता है। एक में केवल पेशाव के वखत पीड़ा होती है, पेशाव बूंद बूंद उतरता है और मवाद आता है। दूसरे में ज्वर, ग्लानि, शरीरपीड़ा और बेचैनी रहती है।

चिकित्सा के समय इन दोनों प्रकारों पर ध्यान रखना

चाहिये। ज्वरादि उपद्रव हों तो इनकी दवा भी साथ ही साथ करनी चाहिये। इस रोग में गोक्षुर, विरोजा, रेशाखतमी, धनिया, शतावरी, चंदन आदि से बनी हुई कोई दवा अथवा वसंतकुसुमाकर, चंदनासव, बङ्गाष्टक, कदलीकन्द घृत और च्यवनप्राश अवलेह का सेवन कराना चाहिये। मूत्र-नलिका का विकार हो तो पिचकारी द्वारा दिन में दो वार जननेन्द्रिय धोते रहना चाहिये।

लसीकास्राव और चूर्णमेह।

आहार-दोष या किसी प्रकार के मूत्र-विकार की परिस्थिति के कारण बालकों को पेशाब में चिकनाहट, तार देने वाला लुआब या चूना-खड़िया-सा सफेद पदार्थ आने लगता है। इन रोगों में मूल कारणों का प्रतीकार करते हुये 'पूयमूत्र, में लिखी हुई ओषधियाँ देना चाहिये।

मूत्रोदर।

पेट के दोनों कोखों में दो गुर्दे-मूत्र (पिण्ड) यंत्र-रहते हैं। इनसे मूत्र बनकर और छनकर नलियों द्वारा वस्तिस्थान में इकट्ठा होता है और वहाँ इकट्ठा होकर बाहिर गिरता है। कभी कभी मूत्राश्मरी हो जाने से मूत्र रुक जाता है और रुक कर नलिका में भर जाता है। ज्यों ज्यों रुकता है त्यों त्यों नली मसक की तरह तन जाती है। तब ऊपर भी सूजन और ऊँचाई

साफ प्रतीत होने लगती है। इसे मूत्रोदर कहते हैं। दोनों नलियों में से जौन सी नली रुकती है उसी ओर यह बिकार होता है। दूसरी ओर से बराबर काम जारी रहता है और थोड़ा थोड़ा मूत्र आता है। इसका एकमात्र यही उपाय है कि मूत्राश्मरी औषधि या शस्त्र चिकित्सा द्वारा दूर की जाय। कभी कभी तो दैवात् मूत्राश्मरी मार्ग से हटने पर स्वयं खुल कर मूत्र हो जाता है और यह मूत्रोदर शांत हो जाता है।

मूत्राश्मरी।

बालकों के आशय और स्रोत बहुत ही छोटे होते हैं। इससे सहज में मूत्राश्मरी पैदा हो जाती है। मूत्र में मूत्रद्वार के जो कण बह बहकर आते हैं वे बस्ति-स्थान और जननेन्द्रिय के मध्य में जमा हो जाते हैं। ये कण लसीका से जुड़ जाते हैं और जुड़कर कड़ी पथरी बन जाती है। जब पथरी बनने लगती है तब कभी कभी रुक रुककर थोड़ा पेशाब होता है। पेशाब में लाल (कुछ गुलाबी) सफेद दाने से आते हैं, लुआब आता है और पेशाब की मात्रा कम होने लगती है। पथरी तयार होने पर पेशाब रुक जाता है और पथरी गड़कर दुःख देती है। ऐसी दशा में बालक चिल्लाता है, पेशाब नहीं होता, हो भी जाता है तो कुछ थोड़ा सा, लाल लाल और पीड़ा से।

इस रोग की औषधियाँ अवश्य हैं। पर वे पहिली हालत से बालक को बचा सकती है। पथरी पैदा होने पर तो शस्त्र

क्रिया से पथरी निकलवा देना ही अच्छा है। छोटी पथरी कभी कभी ठीक मूत्र मार्ग पर आकर पेशाब की राह खुद भी गिर जाती है। बालक और बालिकाओं की पथरी और उसके अपरेशन में भी अन्तर रहता है।

पहिली दशा में अश्मभेदिनी वटिका, पाषाणभेदाद्यघृत, कुशावलेह, त्रिविक्रम रस, यवक्षार का उपयोग करना चाहिये। पेशाब रुकने पर यवक्षार और मिश्री समान भाग जल में मिलाकर बालक को पिला दे और जननेन्द्रिय के मूल स्थान पर अंगुलियों से कुछ दबाव या मर्दन देकर पथरी को हटा दे, इससे पेशाब हो जाने की प्रायः सम्भावना रहती है। पीड़ा-शान्ति के लिये भाफ से सेंकना और पुल्टिस बाँधना भी उपकारकारी होता है।

इस रोगमें बालक को गरिष्ठ आहार, मांस, मांसरस, मैदा और खोया की बनी चीजें, उड़द की दाल, तिल और गुड़ कभी न देना चाहिये। आरोग्य होनेपर—पथरी निकला देने पर भी औषधि-विधान होते रहना चाहिये, क्योंकि नष्ट होने पर भी पथरी फिर फिर पैदा होती रहती हैं।

मूत्रातिसार या स्वप्नमूत्र।

ये दोनों ही रोग यद्यपि भिन्न भिन्न हैं, पर दोनों ही में बालक की मूत्र रोकने की शक्ति न रहने से ऐसा होता है।

इस लिये हमने दोनों एक साथ लिखे हैं। दूसरे दोनों की चिकित्सा भी प्रायः एकसी है।

मूत्रातिसार होने के प्रधान कारण–शीत भोजन, शीत समय, मूत्रधारण करने की शक्ति न होना, मूत्रमार्ग का विकार, पृष्ठ–वंश का विकार, गुर्दे का दोष, मानसिक और स्नायविक विकार। लगभग ये ही कारण स्वप्नमूत्र के भी होते हैं। इन कारणों से कभी तो मूत्र थोड़ा ही होता है, पर जल्दी जल्दी और थोड़ा थोड़ा होता है। कभी वेग से और परिमाण में अधिक होता है। मूत्र–धारण की अक्षमता होने के कारण ही थोड़ा सा मानसिक विकार पाकर बालक सोते सोते निद्रा में मूत देते हैं। जिनको यह रोग हो जाता है वे वर्षों तक इस रोग को भोगकर अन्त में प्रमेही हो जाते हैं।

इन रोगों में यदि मूत्र थोड़ा बूंद बूंद होता हो तो–यवक्षार, शुक्ति, स्वर्णवङ्ग, सोमेश्वर रस, धात्री घृत आदि सेवन कराना और पौष्टिक पथ्य देते रहना चाहिये।

अधिक परिमाण में मूत्र आता हो तो–तिल गुड़, वसन्त कुसुमाकर रस, वङ्गाष्टक, चन्द्रप्रभा–वटी, विषमुष्टिवटी, शतावरीघृत त्रिवंङ्गभस्म देनी चाहिये। भोजन में ऐसे पदार्थ दिये जाँय जो मूत्रल न हों।

योनिदोष।

प्रायः देखा जाता है कि मातायें बालकबालिकाओं के जन-

नेन्द्रिय धोने और इन्हें साफ़ रखने की बहुत कम कोशिश किया करती हैं। इससे बालक को प्रायः जननेन्द्रिय के अनेक साधारण रोग पैदा हो जाते हैं। कभी कभी तो उपेक्षा करने से उनकी जड़ कहीं की कहीं पहुँच जाती है। उपदंश-ग्रस्त माता पिता की संतानों को भी इस प्रकार के कष्ट कभी कभी सहन करने पड़ते हैं। इस उपेक्षा से जननेन्द्रिय का मुख और इधर उधर का चर्म गीला, गला हुआ, सुर्ख, सफेद मवाद देने वाला होजाता है। कभी कभी उसी से बड़ा घाव होजाता है और बालक दुःख उठाता है।

ऐसी दशा में प्रतिदिन त्रिफला के काढे से या नीब के पानी से दोनों समय धोकर सिंदूराद्य लेप लगाना चाहिये। साधारणतः यह उपाय सर्वश्रेष्ठ है। जब रोग आरोग्य हो जाय तब भी एक बार प्रतिदिन जननेन्द्रिय धोते ही रहना चाहिये।

शिरदर्द।

कभी गरमी और कभी सरदी, ज्वर या जुकाम के कारण प्रायः सिर दर्द हुआ करता है। ज्वर या जुकाम से सिर दर्द होता हो तो ज्वर या जुकाम की औषधि से ही दूर हो सकता है। गरमी के कारण दर्द होता हो तो चन्दन और कपूर को पानी में घिसकर लेप करना चाहिये। सरदी से शिर दर्द हो

तो जायफल और केशर को पानी में घिस कर लेप करना चाहिये।

नेत्ररोग।

प्रायः गरमी के कारण और कभी कभी सरदी से नेत्र दुखने आते हैं, इससे आँख सुर्ख, कड़कड़ाने वाली और आँसू से तर रहती हैं। जैसा कारण हो वैसी चिकित्सा होनी चाहिये। अफीम और छोटी हर्र को पानी में घिसकर आँख के चौतर्फा (भौं और आँख के कोये तथा नीचे का कुछ भाग बचाकर) लेप कर देना चाहिये जिससे दवा आँख के अन्दर न जाय। अथवा—जस्ते की भस्म (सफेदा) और कडुये तेल का काजल बराबर भाग मिलाकर आँखों में डालना चाहिये।

बालकों के नेत्रों में कभी कभी रोहें पड़ जाते हैं। ये एक प्रकार के अंकुर होते हैं और पलकों के भीतरी ओर उठते हैं, जो अक्षिगोलक से रगड़ खा खाकर पीड़ा पैदा करते हैं। इनसे सूजन भी होजाती है। ऐसा हो तो चाकसू के बीजों का अञ्जन और जस्ते का सफेदा, भुनी हुई फिटकरी मिलाकर डालना फायदा करता हैं। जस्ते के सफेदे में ३२ वाँ भाग भुनी फिटकरी मिलानी चाहिये।

और भी अनेक नेत्ररोग होते हैं, पर इस छोटीसी पुस्तक में उनका वर्णन होना असम्भव है।

कर्णरोग ।

कर्णरोगों में उन दो रोगों का नाम लेना ही विशेष ठीक है जो प्रायः बालकों को होते रहते हैं। एक कर्ण-पीड़ा, दूसरा कर्ण-स्राव। किसी भी वायु या फुन्सी के कारण प्रायः कान में पीड़ा पैदा हो जाती है। इस पीड़ा की शांति के लिये नारायण तैल, विष्णु तैल या कर्णरोगांतक तैल नाम मात्र को गरम करके ३-४ बूंद कान में डालना चाहिये।

कर्ण-स्राव के कारण कान से मवाद बहता हो तो पहिले पिचकारी द्वारा कान को खूब साफ करना चाहिये। मवाद साफ होनेपर कुछ दिन तैल छोड़कर, जब मवाद कम होजाय तब बहुत बारीक पिसी हुई शङ्खभस्म और सङ्गजराव कान में डालना चाहिये। इससे मवाद सूखकर प्रायः कर्णस्राव बन्द हो जाता है।

शीतपित्त ।

किसी प्रकार से भी गरमाये हुये शरीर पर एकाएक शीत लगने से शीतपित्त रोग पैदा हो जाता है। इस रोग में शरीर के किसी भाग में भी छोटे बड़े ददरे पड़ जाते हैं। वे उसी प्रकार ऊँचे, ददरे होते हैं जैसे वर्र आदि के काटने से होते हैं। इनमें जलन और खुजली बहुत होती है, जिससे बालक बेचैन हो जाता है।

इस रोग में थोड़ी मात्रा में शीतपित्तारि रस या त्रिफला गुग्गुलु देना चाहिये। ऊपरी प्रयोग में फिटकरी के खलमें गेरू घिसकर लगाना चाहिये।

अन्हौरी।

गरमी के दिनों में पसीना आने और बन्द मकान में रहने या भारी कपड़ा पहिने रहने से अन्हौरी निकल आती हैं। इनसे बालक परेशान हो जाता है। इनमें हलकी खुजली होती है, हलका हलका हाथ फेरने से बालक को आराम मिलता है। ये प्रायः सर्वाङ्ग में भी हो जाती हैं।

इनपर शीतोपचार ही किया जाता है। चंदन, मुलतानी मट्टी या नींब का काठा पानी में घिसकर लगाना चाहिये। इससे यह रोग दूर हो जाता है। पहिनाने का कपड़ा इस समय हलका और ढीला होना चाहिये और बालक को खुली हवा में रखना चाहिये।

खुजली।

बालकों के दो प्रकार की खुजली होती है। एक—तर, जिसमें मवाद लिये दाने होते हैं। ये पककर फूटते रहते हैं। दूसरी—खुश्क, जिसमें दाने नहीं होते, चमड़ा खुश्क रहता है और उसपर भुसी सी उड़ती है। पर खुजली दोनों में बराबर होती है। बिना खुजाये चैन नहीं मिलता। इसी खुजली में

कभी कभी पामा रोग भी हो जाता है जो हाथों पैरों की उङ्गलियों या गुदा के पास त्रिक से जन्म लेकर अन्यत्र भी फैल जाता है।

तर खुजली में लगाने के लिये पामाविनाशन लेप, तालाद्य लेप या पारदाद्य-लेप घी में मिलाकर लगाना चाहिये। खुजली के स्थल को दो बार नींव के काढ़े से धोना चाहिये। सूखी खुजली में मरिच्याद्य तैल, लालमिर्च का तेल या नारायण तैल में नींबू का रस मिलाकर मर्दन करना चाहिये।

पीने के लिये खदिरारिष्ट, अर्क उशवा, शहद पानी आदि दे सकते हैं।

दाद।

यह प्रसिद्ध रोग है। बालकों को यह कभी हो जाता है। इसपर रेवाचीनी, पारा, गंधक, सुहागा, कत्था बराबर लेकर बारीक पीसना और घी मिलाकर लगाना।

छाले।

रक्तदोष, माता पिता के उपदंशदोष या किसी प्रकार की विषैली चीज के संसर्ग से बालकों के बदन में छाले पड़ जाते हैं। ये छाले सूखे और सफेद रङ्ग के होते हैं। इनका चमड़ा १।२ दिन में ही गलकर घाव सा हो जाता है। जिसमें बराबर तरी बनी रहती है।

इन छालों को झड़बेरी और त्रिफला के काढ़े से धोकर सिंदूराद्य लेप लगाना चाहिये। यदि नींब के पानी से धोया जाय तवभी अच्छा है। दाद, पामा, छाले और फोड़े, फुंसियों में वस्त्रों की सफाई अवश्य रहनी चाहिये।

फोड़े, फुन्सी।

वहुत वार रक्तदोष या चर्मदोष से वालकों के फोड़े फुंसियाँ हो जाया करती हैं। ऐसे समय रोग के मूल का अन्वेषण करके चिकित्सा करनी चाहिये।

इस रोग में मरिच्याद्य तैल, उमा तैल, सिंदूराद्य तैल, त्रिफलातैल आदि तैलों की मालिश और सिंदूराद्य लेप, त्रिफला भस्म आदि का लेप करना चाहिये। रोग विशेष दिन का हो तो रक्तशोधक औषधि भी पिलाना चाहिये।

चर्मदोष।

कभी कभी प्रवल रक्त-दोष के कारण त्वचा कठोर, रूक्ष और मोटी पड़ जाती है। ऐसी दशा में गजचर्म होजाता है। पर यह कभी ही होता है। इस रोगमें चर्म को मुलायम करने के उपाय करना ही ठीक है।

चर्मदोष से देह में तिल, मसे, लहसुन आदि भी होजाते हैं। ये स्वयं पैदा होतेऔर शांत भी होजाते हैं। इनका उपाय प्रायः नहीं किया जाता।

पाश्चात्य देशों में ये शस्त्रक्रिया से सिद्ध किये जाते हैं क्योंकि वहाँ इनका शरीर में रहना बदसूरती में शामिल है और भारतीय इसकी चिकित्सा यों नहीं करते कि उन्हें इनसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

अर्बुद।

यह भी बालकों के कभी कभी हो जाता है। इस रोग में चमड़े के नीचे मांस बढ़कर गाँठ सी हो जाती है। आरम्भ में इसमें कुछ भी दर्द नहीं होता। यह शरीर में कहीं भी हो सकता है। गलगण्ड के रूप में यह रोग देश विशेष के कारण भी हो जाया करता है।

इसकी चिकित्सा शस्त्रोपचार ही ठीक है। शस्त्र-क्रिया के बिना इसका ठीक आरोग्य होना असम्भव है

" समासात्सर्वरोगाणामेतद्बालेषु भेषजम्।
निर्दिष्टं शास्त्रविद्वैद्यः प्रविविच्य प्रयोजयेत् ॥

श्रीचरकः

चिकित्सक-ग्रन्थमाला की

उत्तमोत्तम पुस्तकें।

इस पुस्तकमाला में हमने वैद्यों, परीक्षा देने वालों और सर्वसाधारण के मनन करने योग्य पुस्तकों को निकालना आरम्भ किया है। इसमें ऐसे विषयों की पुस्तकें छपती हैं जिनको एक दूसरे को बताता नहीं। ये पुस्तकें वैद्यक के विद्यार्थियों को पूरा सहारा देती हैं। वैद्यों को इन पुस्तकों से पूरा ज्ञान पैदा होता है। सर्वसाधारण इनको पढ़कर अपने घरकी बहुत सी रोग पीड़ाओं से स्वयं बचा सकते हैं।

गृहवस्तुचिकित्सा।

इसमें लिखी हुई चिकित्सा के लिये घर से बाहर जाने या दवा दुरमत खरीदने की जरूरत नहीं। भाषा ऐसी सरल है कि औरतें भी इसे पढ़कर काम चला सकती हैं मूल्य ॥)

सरल चिकित्सा।

इसमें हमने अपने २० वर्ष के तजुर्बे किये हुये १५० अचूक नुसखे लिखे हैं, जो कभी निष्फल नहीं जाते, चाहे जब आजमा देखिये। वैद्य और गृहस्थ सबके काम की चीज है। मूल्य ॥)

क्षयादर्श।

इस पुस्तक में क्षयी, तपेदिक, जीर्णज्वर का कुल हाल और उसकी चिकित्सा लिखी है। भारत में दिनपर दिन इस रोग की वृद्धि होती जाती है। इससे इस रोग की जरूर जानकारी रखना चाहिये। मूल्य ॥=)

आयुर्विज्ञान ।

इसमें रोगी के साध्यासाध्य लक्षणों का रत्ती रत्ती हाल लिखा है। यह रोगों के कालज्ञान की कुंजी है। रोगी के मरने जीने का हाल इससे जाना जाता है। मूल्य।)

मकरध्वज (चंद्रोदय)।

इसमें यह बताया गया है कि मकरध्वज या चंद्रोदय किन चीज़ों से और कैसे बनाया जाता है। मूल्य =)

प्रमेह—भास्कर।

इसमें वर्तमान समय के २५ प्रमेहों के सब कारण, लक्षण और चिकित्सा सही सही लिख दी गई है। प्रत्येक मनुष्य के पढ़ने योग्य है। मूल्य =)

औपसर्गिक सन्निपात।

प्लेगका कुल हाल, उससे बचने के उपाय और आयुर्वेदकी रीति से उसकी चिकित्सा लिखी गई है। न मालूम कब काम पड़जाय। यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थ को घर में रखनी चाहिये। मूल्य।)

रक्त।

इसमें खून के बारे में पूरा हाल लिखा है। खून ही मनुष्य जीवन है। वह कैसे बनता है, कैसे बिगड़ता है इत्यादि इसमें लिखा है। मूल्य ≥)

वेदों में वैद्यक ।

इसमें वेदों से उन मन्त्रों को ढूंढ़कर लिखा गया है जिनसे पता चलता है कि वेदों में भी वैद्यक का तत्व भरा हुआ है। मूल्य =)

बालबोधोदय ।

इसमें प्रत्येक रोग पर चुनी हुई दवायों का वर्णन है। इस पर संस्कृत और भाषा टीकायें हैं। पुस्तक वैद्यों के लिये विशेष उपयुक्त है। मूल्य ।=)

दशमूल—निबन्ध ।

हर जगह "दशमूल" की माँग आजकल बढ़ती जा रही है। इस निबन्ध में उसी दशमूल की चीजों के १६ चित्र, वर्णन, रोगों पर देने उपायों और गुणदोषों का उल्लेख है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। मूल्य ।=)

इसके अलावा वैद्यों को औषधालय में रखने लायक रजिष्टर, नुसखे लिखने के लायक कागज, लेबिल, औषधियाँ आदि बनी बनाई छपी छपाई मिलती हैं।

मिलने का पता—

चिकित्सक कार्यालय—कानपुर.

अखिल भारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलन और वैद्य-सेवासमिति से स्वर्णपदक और सार्टीफिकट प्राप्त "श्रीधन्वन्तरि-औषधालय" की अनुभूत औषधि:—

बाल रोगांतकारिष्ट अर्थात् बालामृतघुटी।

हमने इस घुटी को आयुर्वेद में वर्णित बालकों की रक्षा करने वाली सौम्य औषधियों से तैयार की है। इसके सेवन वाले निरोग बालक कभी रोगी नहीं होते किन्तु पुष्ट होजाते हैं। बालकों को बलवान बनाने की अति उत्तम औषधि है। रोगी बालकों केलिये तो संजीवनी है। इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त में कीड़ा पड़जाना, दस्त साफ़ न होना, सर्दी, कफ खांसी, पसली चलना, दूध का पटकना, चौंक पड़ना, और दाँत निकलने के समय के कष्ट सब नष्टहो शरीर मोटा ताजा और बलवान होजाता है। परीक्षा प्रार्थनीय है। मूल्य १ शीशी ।।=) आना।

वैद्यों के लिये—आयुर्वेदीय शास्त्रोक्त बनीहुई औषधियाँ रसायन क्वाथ आदि स्वल्प मूल्य में भेजनेका **विशेष प्रबन्ध** किया है। हमारे यहां की औषधियां शास्त्रीय प्रक्रियानुसार विश्वासनीय बनती हैं जिनकी परीक्षा कर अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन ने **स्वर्णपदक** और सार्टीफिकट प्रदान कियाहै। आपसे प्रार्थनाहै कि थोकभावका सूचीपत्र मंगाकर अवश्यदेखें।

पता—वैद्य बांकेलाल गुप्त,

मैनेजर—धन्वन्तरि औषधालय विजयगढ़ जि० अलीगढ़

दो चिकित्सापुस्तकें ।

एक साथ लेने में १≡) में
दोनों सुन्दर–दोनों जिल्ददार ।

१–गृहवस्तु चिकित्सा–जिस में लिखी हुई चिकित्सा के लिये घर से बाहर जाने या दवा दुरुस्त ख़रीदने की जरूरत नहीं ।

२–सरल चिकित्सा–जिसमें लिखे हुये १५० नुसखों में से एक भी निष्फल नहीं जाता । चाहे जिस समय आजमा देखिये । दोनों पुस्तकें वैद्य और सभी गृहस्थियों के काम की हैं ।

चिकित्सक ग्रन्थमाला का चतुर्थ पुष्प होगा–

प्रसूति–तंत्र ।

जिस में प्रसव की समस्त बातें होंगी । सरल चिकित्सा का द्वितीय भाग भी तयार होरहा है; जिसमें कौमारभृत्य की सब दवायें बनाने की विधिहै ।

मनेजर–चिकित्सक–कानपुर ।

कामिनी कर्णधार—

लेखक—

पं० महावीर प्रसाद मालवीय

श्री धन्वन्तरि ग्रन्थमाला नं०२३

कामिनी कर्णधार

जिसमें

स्त्रियोंके समस्त रोगों की अनुभूत चिकित्साजैसे
प्रदर, सोमरोग, बालिका प्रदर योनिरोग
वंध्यापन, योनिकंद, ऋतुदोष, मिथ्या
गर्भ, प्रसूतरोग आदि २काविस्तार
पूर्वक निदान और चिकित्सा
वर्णित है।

लेखक

श्री०पंडित महावीरप्रसादजी मालवीय वैद्य "वीर
भूतपूर्व सम्पादक मनोरमा तथा अनेकानेक
पुस्तकों के रचयिता

प्रकाशक

वैद्य बांकेलाल गुप्त सम्पादक "धन्वन्तरि"
जनरल मैनेजर श्रीधन्वन्तरि कार्य्यालय
विजयगढ़ जिला अलीगढ़

प्रथम वार १५००प्रति } सन् १९२६ { मूल्य १।=)

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन है

मुद्रक
वैद्य बाँकेलालगुप्त धन्वन्तरि प्रेस
विजयगढ़ (अलीगढ़)

कामिनी कर्णधार

श्री. पं० महावीरप्रसाद मालवीय "वीर"

भूतपूर्व सम्पादक मनोरमा

भूमिका

यों तो रोग समूह स्त्री—पुरुषों पर समान रूप से आक्रमण करते हैं, परन्तु उनमें कुछ ऐसे भी हैं जो स्त्रियों के सिवा पुरुषों को नहीं होते। जैसे- प्रदर, योनि रोग, वन्ध्यापन, योनि कन्द ऋतुदोष, मिथ्या गर्भ, गर्भपात, गर्भावस्था के रोग मूढ़गर्भ, प्रसव वेदना, सूति का रोग और थनइल इत्यादि। इस पुस्तक में केवल वनिता सम्बन्धी रोगों के संक्षिप्त निदान और उनकी चिकित्सा का विस्तार किया गया है।

अपने पेंतीस वर्ष के अनुभवी प्रयोगों के अतिरिक्त इस पुस्तक के लिखने में हमने सामयिक वैद्यक पत्रों और सुश्रुत चरक, वाग्भट्ट, हारीत, धन्वन्तरि, शार्ङ्गधर, भाव प्रकाश, भैषज्य रत्नावली, रसायन संहिता, वैद्यक शिक्षा, रसायन सार, चिकित्सा चन्द्रोदय, आरोग्य दर्पण आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थों से सहायता ली है और उनके परीक्षित योगों के समावेश से पुस्तक को परमोपयोगी बनाने का भगीरथ प्रयत्न किया है। अनुभूत योगों के आधार पर यह बात हम दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक अवश्य ही सर्व साधारण के उपकार की वस्तु होगी। इस विषय में अधिक कहने का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि पुस्तक

की उपयोगिता का पता तो योगों की परीक्षा करने पर पाठकों को स्वयम् चल जावेगा।

जिन शब्दों की परिभाषा न जानने के कारण सामान्य पढ़े लिखे मनुष्यों को विषयज्ञान प्राप्त करने में कठिनता उत्पन्न होने की सम्भावना थी, उन शब्दों का अन्त में अकारादिक्रम से एक परिशिष्ट कोश लगा दिया गया है जिससे खोज लगाने के निमित्त अन्यत्र दौड़ न लगानी पड़ेगी।

न तो मैं हिन्दी लिखने की योग्यता रखता हूं और न उपाधिधारी वैद्य ही हूं। एक मात्र लोकोपकार के विचार से मैंने मन माने शब्दों में अपने अनुभूत योगों को जनता के सामने रखने का प्रयास किया है, किन्तु देश में असंख्यों विद्वान् वैद्यराजों के विद्यमान रहते हुए अवश्य ही मेरा यह उद्योग दुस्साहस मानने योग्य होगा। इस धृष्टता के लिये मैं अनुभव शील वैद्यवरों से सानुनय प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे सदुद्देश्य की ओर ध्यान देते हुए क्षमा प्रदान करेंगे। प्रत्यक्ष अथवा पत्र द्वारा यदि मेरी त्रुटियों को सुझाने की कृपा करेंगे तो द्वितीय संस्करण में सधन्यवाद उसका सुधार कर दिया जायगा।

वैद्यवरों का कृपा कांक्षी—

मि० चैत्र कृष्ण १५ रविवार सम्मत् १९८२ वि०।	महावीर प्रसादमालवीय वै० 'वीर' ज्ञानपुर-बनारस स्टेट।

विषयसूची

विषय	पृष्ठ
प्रदररोग	१
प्रदर होने का कारण	२
रक्तप्रदर के लक्षण	२
प्रदर के उपद्रव	२
प्रदर की असाध्यता	३
प्रदर की चिकित्सा	३
गैरिकादि चूर्ण	४
सुधाधर चूर्ण	४
गोक्षुरादि चूर्ण	४
मुस्तादि चूर्ण	५
रसाञ्जनादि चूर्ण	
चन्दनादि चूर्ण	५
रसेन्द्रवटी	५
नागादि वटी	७
प्रदरान्तक वटी	६
प्रदरप्रहारवटी	७
प्रदरारिवटी	८
दार्व्यादि कषाय	८
आमलकादि कषाय	८
अर्क पुष्प कषाय	९
अशोक दुग्ध	९
उदुम्बरादि पेय	९
रसवतादि पेय	१०
शैवालादि पेय	१०
अशोकार्क	१०
मधुकाद्यवलेह	१०
सितोपलादि लेह	११
अशोकारिष्ट	११
प्रियंग्वादि तैल	१२
रोगमुक्त के लक्षण	१३
श्वेत प्रदर	१४
सोमरोग के लक्षण	१५
श्वेत प्रदर की चिकित्सा	१६
आमलक चूर्ण	१६
अशोक चूर्ण	१७
सुथनी चूर्ण	१७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सोमान्तक चूर्ण	१७	फालसादि पेय	२३
सरलादि चूर्ण	१७	जीरकादि पेय	२४
सुरमा चूर्ण	१७	नागभस्म विधान	२४
अमृतादि चूर्ण	१८	मृगाङ्क सेवन	२४
मुक्तिकादि चूर्ण	१८	माजू पिचूधारण	२५
मधुकादि चूर्ण	१८	सोमसुधातैल	२५
विदारीकन्द चूर्ण	१९	बालिकाप्रदर	२५
वृद्धिकादि चूर्ण	१९	पथ्यापथ्य	२६
शतावर्य्यादि चूर्ण	१९	योनिरोग	२६
केशरादि वटी	२०	योनिरोगों की संख्या	२७
उदुम्बरादि कल्क	२०	वातज योनिरोग	२७
हरिद्रादि हिम	२०	पित्तज योनिरोग	२७
भिण्डी कषाय	२१	कफज योनिरोग	२८
अशोक कषाय	२१	त्रिदोषज योनिरोग	२८
अश्वगन्धादि कषाय	२१	योनिरोग की चिकित्सा	२९
रामठादि वल्का	२१	मुचकुन्द सेवन	३०
गुडूची अर्क	२२	वन्ध्यारोग	३०
भसीड़ पेय	२२	वन्ध्या के भेद औरविशेष लक्षण	३०
केशरादि पेय	२२		
चक्रमर्द पेय	२३	षट वन्ध्याओं की परीक्षा	३१
सेमरसुमन पेय	२३		
रसवतादि पेय	२३	षटवन्ध्याओं काउपचार	३२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वन्ध्या की चिकित्सा	३३	अहिफेनादि वटी	४०
कन्द्रनी विलास चूर्ण	३४	मिर्चादिवटी	४०
विजयसारादि चूर्ण	३४	तारक वटी	४१
तिलादि चूर्ण	३४	सर्जिकादि कषाय	४१
भारंग्यादि चूर्ण	३४	गुड़हर कषाय	४२
हिंग्वादि चूर्ण	३५	चौराई बीज	४२
श्यामादि कषाय	३५	सौभाग्यवती धूप	४२
कण्टकार्यादि कषाय	३५	त्रिफला घृत	४३
निम्बादि कषाय	३६	फलघृत	४३
विल्वादि कषाय	३६	कुमारकल्पद्रुम घृत	४४
वेनौला कषाय	३६	मृतवत्सा का उपचार	४५
दन्तिकादि वटी	३६	योनिशूल की चिकित्सा	४६
ताड़फल भस्म	३६	वृषकादि पेय	४७
सर्जिका जल	३७	तगरादि तैल	४७
गाजर बीज	३७	मृगमदादि तैल	४७
विजयसारादि पेय	३७	कुम्भीस्वेद	४८
गुग्गुलादि धूप	३७	आंवलादि रस	४८
रजवर्तिका	३८	गुडूच्यादि कषाय	४८
केशरादि चूर्ण	३८	स्तनवर्द्धक प्रलेप	४८
रजसुधार चूर्ण	३८	मूषक तैल	४९
यवादि चूर्ण	३९	योनि सकोचन	४९
पलाण्डु वटिका	३९	गर्भावरोधक योग	५०
केशरादि वटी	४०	पथ्यापथ्य	५०

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
योनिकन्द रोग	५१	पुत्र कन्याकारक योग	६१
योनिकन्द के लक्षण	५१	युग्म गर्भ का कारण	६२
योनिकन्द की चिकित्सा	५१	गर्भ के लक्षण	६२
धातक्यादि तैल	५२	मास मास में गर्भ की अवस्था	६२
ऋतुधर्म	५३	गर्भवती के योग्य आहार	६३
ऋतुकाल के धर्म	५३	गर्भवती के वर्जित कर्म	६३
ऋतुमती त्याज्यकर्म	५४	गर्भकाल में कोष्ठ बद्ध	६४
सहवासके अयोग्य वाला	५५	दौहृदिनी की इच्छा	६५
गर्भाशय का स्वरूप	५६	गर्भपात	६६
गर्भाधान	५७	गर्भपात होने का कारण	६६
विकृत गर्भ का कारण	५७	गर्भपात की चिकित्सा	६७
मिथ्यागर्भ	५७	निस्तुषादि चूर्ण	६७
मिथ्यागर्भ की चिकित्सा	५८	मुस्तादि कषाय	६७
गर्भस्थापक योग	५८	गर्भ विलास तैल	६८
नाग पुष्प चूर्ण	५८	गर्भरक्षा	६८
कस्तूरी वटी	५९	अश्वगन्धादि स्वरस	६९
समुद्रफल का प्रयोग	५९	पद्माकादि पेय मुक्तादिवटी	६९
लौकी कषाय	५९	सहचरादि चूर्ण	७०
असगन्ध कषाय	५९	गर्भिणी के रोग	७०
इक्षुरस पेय	६०	गर्भिणी की वमन	७१
कण्टकारी पेय	६०	गर्भिणी के ज्वर की चिकित्सा	७१
बलादि पेय	६०		
पुत्र कन्याकी उत्पत्ति	६०		

विपय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गर्भिणी की खांसी	७२	प्रसूता को जल	६०
गर्भिणी को ग्रहणी	७३	प्रसूता को दुग्ध पान	६१
शान्तिदायक पेय	७३	सूतिका स्नान	६१
विस्फोटक से बचाव	७३	प्रसूतागार में अग्नि	६२
प्रसूतागार	७४	दुग्धवर्द्धन प्रयोग	६२
दाया	७४	दुग्ध शोधन	६३
प्रसव काल	७५	प्रसूता की अवधि	६४
प्रसवकारक प्रयोग	७६	पथ्यापथ्य	६५
प्रसवकारी यंत्र	७८	सूतिका रोग	६५
अन्ययंत्र	७६	रोगोत्पत्ति का कारण	६६
मूढ़गर्भ	७६	सूतिका रोगकी चिकित्सा	६६
मूढ़गर्भ की असाध्यता	८०	देवदार्व्यादि कषाय	६६
मूढ़गर्भ की चिकित्सा	८०	सहचर कषाय	६७
क्षत निवारण	८१	सत लोहवान	६७
मक्कल रोग	८१	अग्नि दीपक चूर्ण	६७
मक्कल रोग की चिकित्सा	८१	लवण भास्कर चूर्ण	६८
मक्कल प्रहार	८२	पारद वटी	६८
पिप्पलादि कषाय	८२	अमृतादि वटी	६६
अधिक रक्त प्रवाह	८३	कुमार वटी	६६
आंवल अवरोध	८३	चित्रकादि अवलेह	६६
नाल छेदन	८५	विजयादि अवलेह	१००
उत्पन्न बालक का श्वास	८७	अश्वगन्धादि पंजीरी	१००
बालकका स्नान और रक्षा	८८		

विषय	पृष्ठ
सौभाग्य शुराठी मोदक	१०२
द्वितीय सौभाग्य शुराठी मोदक	१०३
जीरकादि ेदक	१०३
शतावरी तैल	१०४
पथ्यापथ्य	१०५
स्तन रोग	१०६
स्तन रोग की भीषणता	१०६
स्तन रोगकीचिकित्सा	१०७
थनइल पर स्वेद	१०८
योषापस्मारहिस्टिरिया	११०
परिशिष्टकोश	११३
विज्ञापन	१३४

कामिनी-कर्णधार

प्रदररोग।

तदेवातिप्रसंगेन प्रवृत्तमनृतावपि।
असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यद्रक्तलक्षणात्॥
सुश्रुत शारीरस्थान।

रजोधर्म के समय यदि अधिक रक्तस्राव हो अथवा कुसमय में पीड़ा आदि से युक्त काले पीले रङ्ग का रुधिर निकले उसको रक्त प्रदर कहते हैं। रक्त और श्वेत प्रदर दो प्रकार का होता है। रक्तप्रदर में पीड़ा सहित योनि-मार्ग से रुधिर का स्राव और श्वेतप्रदर में वेदना रहित जल के समान सोमधातु का स्राव होता है। ये दोनों प्रदर गर्भाधान के लिये बाधक हैं अतएव प्रथम इन्हीं का उपचार वर्णन करना आवश्यक है।

प्रदर होने का कारण ।

अत्यन्त मैथुन, विरुद्ध भोजन, मद्पान, अजीर्ण, शोक, चोट लगने, दिनमें सोने, वोझ उठाने, अधिकमार्ग चलने, उपवास करने, और गर्भपात होने, आदि कुपथ्यों से वात, पित्त, कफ और सन्निपातज चार प्रकार का रक्तप्रदर होता है ।

रक्तप्रदर के लक्षण ।

लाल, रूखा, मांस के धोवन सरीखा, झागों के सहित, पीड़ा युक्त थोड़ा २ योनिमार्ग से रक्तस्राव होता है उसको वातज प्रदर कहते हैं । जिसमें पीला, नीला काला, गरम, दाह और पीड़ा सहित अधिक रक्त बहता है उसको पित्तजप्रदर । सेमर के गोंद, भात के मांड़ और कोदव के धोवन के समान मटमैले रङ्ग का, चिकना तथा मन्द २ पीड़ा के साथ रक्तस्राव होता है, उसको कफ़जप्रदर । मधु, घी, चर्बी के सदृश दुर्गन्धित, हरताल के रङ्ग का और पीड़ा के सहित रुधिर का जाना त्रिदोषज-प्रदर कहलाता है ।

प्रदर के उपद्रव ।

शरीर में बिना परिश्रम के थकावट मालूम होना, दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा, आंखों के सामने अँधेरा, दाह, प्यास, प्रलाप, शरीर का रङ्ग सफेदी लिये पीला पड़जाना, वातज रोगों का होना और अधिक प्रमाण में रक्त का जाना आदि उपद्रव होते हैं ।

प्रदर की असाध्यता।

जिस स्त्री की निर्बलता बहुत बढ़जाय, ज्वर, दाह, पिपासा आदि उपद्रवों से युक्त निरन्तर रुधिरस्राव होता हो उसे, और त्रिदोषजप्रदर को असाध्य जानना चाहिए प्रदर रोग वाली स्त्री को ज्वर उत्पन्न हो तो अत्यन्त कष्टसाध्य है।

प्रदर की चिकित्सा।

फुलाई हुई श्वेत फिटकिरी और मिश्री पांचरतोले दोनों का महीन चूर्ण करके दोनों समय छःछः माशे गाय के धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से वातज-प्रदर नष्ट होता है। शुद्ध शिलाजीत, शीतलचीनी, वंशलोचन, पलास का गोंद, और हजरुलयहूद (हजरत जहूर) एक एक तोला। छोटी इलायची का दाना १॥ तोला। अनार की कली २ तोले। गूलर का कच्चाफल सुखाया हुआ १० तोले। सब का महीन चूर्ण करके दोनों समय छःछः माशे चावल के धोवन में मधु मिला उसी के साथ खाने से पित्तजप्रदर दूर होता है। पीपर, गोपीचन्दन, पलास का गोंद, चौराई की जड़, बैंगन की जड़, तालमखाने के बीज, छोटी इलायची के दाने और गुठली रहित छोहारा दो २ तोले, मिश्री ८ तोले। सबका चूर्ण करके आठ २ माशे प्रातः सायङ्काल पानी के साथ सेवन करने से कफजप्रदर आराम होता है।

गैरिकादि चूर्ण ।

गेरू ६ माशे। श्वेत फिटकिरी १० तोले । दोनों का महीन चूर्ण करके एक वा डेढ़ माशे चूर्ण खाकर इसके ऊपर आधपाव ताजा दुहा बकरी का दूध पीजावे । इसी प्रकार दोनों समय सेवन करने से भयङ्कर रक्तप्रदर चारों प्रकार का आराम होता है । यदि तीन दिन के खाने से लाभ न प्रकट हो तो दिन रात में तीन वा चार बार सेवन कराना चाहिये । इस औषधि से अत्यन्त कष्टसाध्य रक्तप्रदर एक ही सप्ताह में निर्मूल होजाता है।

सुधाधर चूर्ण ।

सेलखरी और गेरू पांच २ तोले । दोनों का चूर्ण करके एक २ माशे प्रातः सायङ्काल अथवा आवश्यकतानुसार तीन वा चार बार पानी के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर शीघ्र आराम होता है । रक्त पित्त के लिये भी लाभकारी है ।

गोक्षुरादि चूर्ण ।

बड़ा गोखुरू, चिकनी सुपारी, माजूफल, श्वेतमूसली श्वेत चन्दन, सोंठ, समुद्रशोख और रूमीमस्तगी एक २ तोला । मिश्री ८ तोले । महीन चूर्ण करके छः छः माशे गाय के दूध के साथ दोनों समय सेवन करने से एक ही सप्ताह में रक्त प्रदर आराम होता है ।

मुस्तादि चूर्ण ।

नागरमोथा, नागकेशर, पीपलवृक्ष की शाख, श्वेत-धूप, गेरू और छोटी इलायची के दाने छः छः माशे । शुद्ध रसवत, (रसोत) दारुहल्दी और बबूर का गोंद एक एक तोला । मिश्री २ तोले । सब का महीन चूर्ण करके दोनों समय तीन तीन माशे जल के साथ सेवन करने से रक्त-प्रदर दूर होता ।

रसाञ्जनादि चूर्ण ।

शुद्ध शरवत २ तोले, रसोत २ तोले गेरू, धवपुष्प (धायके फूल) मोचरस और माजूफल चार चार तोले । चौराई की जड़ ५ तोले । चिकनी सुपारी २० तोले । महीन चूर्ण करके चावल के धोवन में मधु मिलाकर इसी के साथ दोनों समय छः छः माशे सेवन करने से रक्त-प्रदर निर्मूल होता है । इस पर गेंहूं की रोटी, पुराने चावल का भात, मूंग की दाल, गाय का दूध और घी का पथ्य देना श्रेष्ठ है ।

चन्दनादिचूर्ण ।

श्वेतचन्दन, जटामासी, लोध, कमलगट्टा की गिरी, खस, नागकेशर, (असली) सुगन्धवाला, पाठा, नागरमोथा इन्द्रयव, सोंठ, अतीस, रसवत (रसोन), मोचरस, मजीठ, नीलकमल, बेलकोगिरी, कुरैया की छाल, धवपुष्प, छोटी-इलायची- आमकी गुठली, मीठा अनारदाना, जामुन की

गुठली और मिश्री दो २ तोले लेकर महीन चूर्ण कर डालें। तीन माशे चूर्ण खाकर ऊपर से चावल के धोवन में मधु मिलाकर पान करें। इसी प्रकार दिन में दो या तीन बार तीन सप्ताह सेवन करने से कठिन दुस्साध्य रक्तप्रदर नष्ट होता है। इससे रक्तपित्त, रक्तातिसार और खूनी बवासीर को अच्छा लाभ पहुंचता है।

रसेन्द्रवटी।

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक आंवलातिसार, पीपर, अंशलोचन, आंवला, काकरासिंगी, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची का दाना, भटकटैया की जड़ और फल तथा मधु एक२तोला शुद्ध शिलाजीत और मिश्री आठ २ तोलें। पारा-गन्धक की कज्जली करके उसको एक दिन लाल कमल के फूल के स्वरस से और एक दिन कुरैया की छाल के रस से घोट कर छाया में सुखा डाले। फिर समस्त औषधियों का महीन चूर्ण करके मधु, मिश्री, शिलाजीत और कज्जली सब को साथ ही मीठे अनार के रस में एक घड़ी खरल करके उड़द के बराबर गोली बनावे। प्रातः और सायङ्काल एक २ गोली गाय के धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से चारों प्रकार का रक्त और श्वेतप्रदर आराम होता है॥ ज्वर, खांसी और शरीर की पीड़ा आदि उपद्रवों का शमन होता है।

नागादिवटी।

नाग भस्म १ तोला, रसवत, माजूफल और चुहिया

की बीट (मूसे के लेंड़) पाँच २ तोले। मिश्री १० तोले। सब का महीन चूर्ण बनाकर गूलर की छाल, अशोक की छाल और चौराई की जड़ के स्वरस की सात २ भावना देकर झरबेर के बराबर गोली बनावे। एक गोली खाकर ऊपर से मधु मिला हुआ चावल का धोवन पान करना चाहिए। इसी प्रकार दोनों समय सेवन करने से एक सप्ताह में रक्तप्रदर आराम होता है। यदि सप्ताह में पूर्ण आरोग्यता लाभ न हो तो दो तीन सप्ताह सेवन करना चाहिये। इससे रक्तार्श, रक्तातिसार और रक्तपित्त का भी नाश होता है।

प्रदरान्तक वटी।

शुद्ध खपरिया, शुद्धकौड़ी, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक आँवलासार, बङ्गभस्म और चाँदी भस्म एक २ तोला। लोह भस्म ७॥ तोले। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली करके सब का महीन चूर्ण बना घीग्वार के रस से एक घड़ी घोट उड़द बराबर गोली बनाकर छाया में सुखावे। एक या दो गोली गाय के दूध से प्रातः सायङ्काल सेवन करने से रक्तप्रदर उपद्रवों के सहित नष्ट होता है।

प्रदर प्रहारवटी।

जावित्री, मोचरस, इन्द्रयव, अजवायन, सोंठ, काली-मिर्च, पीपर, जायफल, लोध्र, अफीम, श्वेतजीरा, बेलगिरी नागरमोथा, चौकिया सोहागा, धवका फूल, पोस्त का दाना धतूरे का फूल, आम की कोंपल, शुद्ध धतूरे का बीज और

इमली के बीजों की गिरी एक २ तोला लेकर महीन चूर्ण कर डालें। एक प्रहर कदली पुष्प के रस से घोट कर दो २ रत्ती की गोली बनावे। चावल के धोवन में मधु मिलाकर इसी के साथ दिन में दो तीन बार सेवन करने से रक्तप्रदर और संग्रहणी आराम होती है।

प्रदरारि वटी।

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक आँवलासार और नागभस्म, एक एक तोला। शुद्ध रसवत ३ तोला। लोध ६ तोले। पारा गन्धक की कज्जली करके और औषधियों का महीन चूर्ण बना अडूसे के पत्तो के रस से घोट झरबेर के बराबर गोली बनावे। दोनो समय मधु के साथ एक २ गोली खाने से रक्तप्रदर निर्मूल होता है।

दार्व्यादि कषाय।

दारुहल्दी, रसवत, नागरमोथा, चिरायता, लालचन्दन बेलगिरी अडूसे की जड़ और मदार का फूल दो दो तोले अधकुट करके दस मात्रा बनावे। इसका क्वाथ करके एक तोला मधु मिलाकर पीजावे। दोनों समय एक सप्ताह सेवन करने से पीड़ायुक्त रक्तप्रदर और सोमरोग आराम होता है।

आँवलादि कषाय।

आँवला, हरड बहेड़ा और गुलाब का फूल तीन तीन तोले। सोंठ २ तोले। दारुहल्दी और लोध पांच २ तोले। मिश्री २० तोले। मिश्री के अतिरिक्त समस्त

ओषधियों को अधकुट करके दस मात्रा बनावे। इसके क्वाथ में दो तोले मिश्री मिला, मल छानकर पीजावे। इसी प्रकार दोनों समय एक सप्ताह पान करने से उपद्रवों सहित रक्त प्रदर नष्ट होता है।

अर्कपुष्प कषाय।

एक तोला मदार के फूल का क्वाथ बना उसमें एक तोला मधु मिला छान कर दोनों समय पान करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ उपद्रवयुक्त रक्तप्रदर शांत होता है।*

अशोक दुग्ध।

चार तोले अशोक की छाल कुचल कर तीन पाव पानी में पकावे। डेढ़ पाव जल रहजाने पर नीचे उतार छानले। उसमें डेढ़ पाव गाय का दूध मिलाकर फिर पकावे। जब पानी जल जावे तब नीचे उतार शीतल होजाने पर, थोड़ा २ दिन में तीन चार बार करके इस दूध को पीने से रक्तप्रदर नष्ट होता है।

उदुम्बरादि पेय।

गूलर का कच्चा फल पीस कर चार तोले उसका स्वरस निचोड़ले, उसमें दो तोले मधु मिलाकर पीजावे। एक सप्ताह दोनों समय पान करने से पित्त-जनित रक्तप्रदर दूर होता है। इस पर पुराने चावल का भात और मिश्री

* नोट—औषधि से चगुना जलले और जब चतुर्थांश शेष रहे तब छान से यही क्वाथ विधि है।

मिला गाय का दूध पथ्य करना हितकारी है, किंतु भोजन स्वल्प करना चाहिए।

रसवतादिपेय।

रसवत, मधु और चौराई का स्वरस एक २ तोला तीनों घोल कर दोनों समय पान करने से रक्तप्रदर बहुत शीघ्र आराम होता है।

शैवालादि पेय।

सेवार एक तोला महीन पीस आधपाव पानी में घोल उसमें एक तोला शक्कर मिला छान कर पीजावे। एक सप्ताह दोनों समय पान करने से प्रदर नष्ट होता है

अशोकार्क।

ढाई सेर अशोक की छाल कुचल कर सोलह सेर पानी में सन्ध्या को भिगोदे। प्रातः काल भभके द्वारा पांच सेर अर्क खींच ले। दोनों समय पांच २ तोले इस अर्क को पीने से रक्तप्रदर अति शीघ्र निर्मूल होजाता है।

मधुकाद्यवलेह।

मुलहठी, श्वेतचन्दन लाही (काही) लाल कमल, रसवत खस, मोचरस. दारुहल्दी, मुनक्का, शतावर, विदारीकन्द कमलपत्र, धवपुष्प, गुड़हर के फूल की कली, बेर की गुठली, बेलगिरी, अशोक की छाल, आम और जामुन के कोमल लाल रङ्ग के पत्ते, बरियारे की जड़, अडूसे की

जड़,कुशाकीजड़,चांदीभस्म,लोहभस्म,और अभ्रक भस्म प्रत्येक एक २ तोला। मधु ५ तोले। मिश्री ढाई पाव, शितावर का स्वरस एक सेर। प्रथम एक तोले वाली पचीसों औषधियों का कपड़छन चूर्ण बना डाले, फिर शतावरी के रस में मिश्री की चासनी तैयार कर नीचे उतार सब चूर्ण मिलादे। शीतल होजाने पर मधु मिला कांच के पात्र में रक्खे। छः माशे से एक तोला पर्यन्त दिन में तीन चार बार इस अवलेह के चाटने से चारों प्रकार का कठिन पीड़ा और उपद्रवों से युक्त रक्तप्रदर, रक्तपित्त, रक्तातिसार, खूनी बवासीर, योनिशूल, पेडूकी पीड़ा, दाह और मूर्च्छा आदि इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे सूर्य के उदय होने से घना अन्धकार भाग जाता है।

सितोपलादि लेह।

गुर्चका सत, वंशलोचन, शुद्ध छोटीपीपरि और छोटी इलायची के दाने एक २ तोला। मधु ४तोले। सब का महीन चूर्ण करके मधु में मिलाकर रखले। मात्रा छः माशे। दोनों समय चाटने से प्रमाण से अधिक होने वाला रजस्राव घट कर मात्रानुसार ठीक समय पर होने लगता है।

अशोकारिष्ट।

दस सेर अशोक की छाल अधकुट करके ८० सेर पानी में पकावे। २० सेर जल रहजाने पर नीचे उतार कर छानले स्याह जीरा, श्वेतजीरा, हरड, बहेड़ा, आंवला

दारु हल्दी, सोंठ, नागरमोथा, श्वेतचन्दन, कमलपुष्प, अडूसे की जड़ और आम की गुठली चार ४ तोले। धव के फूल और पुराना गुड़ एक २ सेर। चार २ तोले वाली औषधियों का महीन चूर्ण कर डाले तथा गुड़ को कूटले। घी से धोपित मट्टी के पात्र में अशोक का काढ़ा भरकर उसमें चूर्ण, गुड़ और धौका फूल डाल खूब हिलाकर पात्र का मुख बन्द करके एक मास पर्यन्त खुली जगह में रहने दे। पीछे मल छान कर बोतलों में भर रक्खे। मात्रा एक से तीन तोले तक थोड़े जल में मिला, दिनमें तीन चार बार सेवन करने से दुस्साध्य रक्तप्रदर उपद्रवों सहित थोड़ेही समय में अवश्य ही निर्मूल होता है। इससे अरुचि, मन्दाग्नि शोथ और ज्वरादि रोग दूर होते हैं। श्वेत प्रदर का नाश करता है।

प्रियंग्वादि तैल।

मालकङ्गनी, कमलपुष्प, मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आंवला रसवत, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, मजीठ, सौंफ, सज्जी, सेंधानोन, नागरमोथा, मोचरस, सम्हालूका पत्ता, मकोय धेखकी छाल, सुगन्धवाला, पीपरि, गजपीपरि, असगन्ध, और शितावर चार ४ तोले। बकरी का दूध, दही का पानी दारुहल्दी का काढ़ा और तिलका तैल चार ४ सेर। चार चार तोले वाली समस्त औषधियों को कूटकर दूध के साथ पीस कल्क बना डाले, फिर तैल, दूध, दही का पानी काढ़ा और कल्क सब कड़ाही में डाल, मन्द २ आँच से

पकावे। सिद्ध होजाने पर नीचे उतार छानले। इस तैल का प्रतिदिन शरीर पर मर्दन कराने से रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर और सब प्रकार के योनि रोग आराम होते हैं। आगे प्रसूता, रोग के प्रकरण में वर्णित शतावरी तैल का मर्दन प्रदर के लिये अत्यन्त लाभकारी है।

रोग मुक्त के लक्षण।

उत्तम रजोदर्शन तीन दिन और मध्यम पांच दिन तक स्रवता है, इससे अधिक रक्तस्राव होना ऋतुधर्म नहीं, रोग माना जाता है। जब न अधिक और न कम, लाही के पानी अथवा खरगोश के रक्त के समान रङ्ग वाला, दाहपीड़ा आदि से रहित, तीसरे से पांचवें दिन तक स्राव होकर स्वयम् बन्द होजावे तब उसको शुद्धरज गर्भाधान के योग्य और रोग मुक्त जानना चाहिये। ऋतुधर्म का विशेष वर्णन श्वेतप्रदरादि की चिकित्सा के अनन्तर किया जायगा।

श्वेतप्रदर ।

आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्तिच ।

तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्तिहि ॥

अनेक प्रकार के कुपथ्यों से स्त्रियों के समस्त शरीर में व्याप्त होने वाला जल (सोमनामक धातु) क्षुब्ध होकर जब अपने स्थान से पतित होजाता है तब मूत्र मार्ग से बिना पीड़ा के पानी के समान बहने लगता है, उसको श्वेतप्रदर कहते हैं। इस रोग में स्त्रियों को सोमधातु का क्षय होता है इसलिये यह सोमरोग कहा जाता है ॥ पुरुषों के लिये जिस प्रकार प्रमेह रोग भयानक है उसी प्रकार स्त्रियों के शरीर को जीर्ण बनाने वाला श्वेतप्रदर वा सोमरोग है। यह बड़ा ही विघातक और भीषण रोग है। सोमरोग से भारत की सहस्रों रमणियाँ पीड़ित होकर अपना और अपने प्रिय सन्तान का स्वास्थ्य सुख धूल में मिला चुकीं तथा मिलाती जारही हैं। यह दुष्ट रोग स्त्रियों को प्रायः सभी अवस्था में होता है। सात आठ वर्ष की बालिकाओं से लेकर साठ वर्ष की वृद्धा तक इस रोग से पीड़ित देखने में आती हैं। अनेकों बालिकाएँ हमारे पास चिकित्सार्थ ऐसी आचुकी हैं जिनके मूत्र के साथ श्वेत रङ्ग की धातु जाती थी और उससे उनका शरीर खिन्न हो रहा था, किंतु वे बहुत साधारण उपचारों से आरोग्य होते

देखी गयी हैं जिनका वर्णन आगे यथास्थान में किया जायगा। ग्यारह वर्ष से कम अवस्था की बालिकाओं में ही ऐसा देखने में आया है; किंतु जलस्राव प्रायः बारह वर्ष की अवस्था के उपरांत होता है। जब तक स्त्रियों को मासिक धर्म होता रहता है तबतक श्वेत प्रदर की शिकायत बनी रहती है। इस रोग के जीर्ण होजाने पर अत्यन्त बल-क्षय होने के कारण स्त्रियों को मूत्रातिसार हो जाता है और पीब के समान गाढ़ी धातु जाने लगती है। उस दशा में प्रायः रोग असाध्य होजाता है और अन्त में मृत्यु अपना ग्रास बनाकर सर्वनाश कर डालती है।

सोमरोग के लक्षण ।

स्वच्छ जल के समान गन्ध और पीड़ा से रहित योनिमार्ग से सोमधातु थोड़ी २ बहा करती है उससे दिनों दिन शरीर कृश होकर निर्बल होता जाता है। थोड़ा चलने में भी थकावट मालूम होती है, किसी काम के करने को जी नहीं चाहता। आलस्य और शिथिलता इतनी बढ़ जाती है कि उठने बैठने और डोलने की इच्छा नहीं होती प्यास बढ़ती है, थोड़ा भी अन्न भोजन करने पर वह ठीक पचता नहीं; किंतु तृप्ति नहीं होती खाने पीने की इच्छा बनी रहती है। शरीर क्रमशः जर्जर होता जाता है। जँभाई आती हैं, शिरमें भारीपन, त्वचा में रूक्षता और कमर पीठ में पीड़ा रहती है। आँखों के सामने कभी २ अँधेरा सा छाजाता है और मुख तथा तालू सूखा रहता है। रजोधर्म बिकारमय

होकर ठीक समय पर नहीं होता, बहुतों का तो वन्द ही होजाता है। पुरुषों के समान स्त्रियों को प्रमेह रोग नहीं होता, प्रत्युत सोमरोग ही स्त्रियों का धातुरोग है। प्रथम लज्जावश स्त्रियां इस रोग को छिपाती हैं, दूसरे की वात तो दूर रहे प्रायः वे अपने पति से भी कहने में शरमाती हैं, उनकी इस मूर्खता से वड़ी हानि होती है, रोग बढ़कर कष्टसाध्य होजाता है।

श्वेतप्रदर की चिकित्सा।

कैथ का पका फल आग में भून कर उसकी गूदी तीन माशे खाकर ऊपर से पाव आधपाव गौदुग्ध पान करे। इसी प्रकार दोनों समय एक या दो सप्ताह सेवन करने से श्वेतप्रदर आराम होता है। सेमर के फूल को घी में तल कर उसमें थोड़ा सेंधानोंन मिला प्रातः सायङ्काल एक एक तोला सेवन करने से अवश्यमेव सोमरोग नष्ट होजाता है।

आमलकचूर्ण।

बीज रहित आंवले का महीन चूर्ण करके दोनों समय छः छः माशे मधु के साथ चाटकर चावल का शीतल माँड़ ऊपर से पान करे। अथवा आंवले के बीजों की गिरी और मिश्री बराबर भाग लेकर महीन चूर्ण कर डालै, चार चार माशे की मात्रा प्रातः सायङ्काल जल के साथ सेवन करने से श्वेत प्रदर आराम होता है।

अशोक चूर्ण ।

अशोक की छाल और मिश्री बराबर भाग चूर्ण करके दोनों समय तीन २ माशे गोदुग्ध के साथ सेवन करना लाभकारी है ।

सुथनी चूर्ण ।

सूखी सुथनी और भिण्डी की जड़ का छिलका तीन तीन तोले । मिश्री ६ तोले । तीनों का महीन चूर्ण करके दोनों समय पांच २ माशे गाय के दूध से सेवन करना चाहिये । तीन सप्ताह में श्वेत प्रदर समूल नष्ट होता है ।

सोमान्तक चूर्ण ।

श्वेत धूप दो तोले, मिश्री ८ तोले । दोनों का चूर्ण करके पांच २ माशे प्रातः सायङ्काल गाय के दूध से सेवन करना लाभकारी है ।

सरलादिचूर्ण ।

श्वेत धूप २ तोले । मुलहठी ३ तोले । नागकेशर ५ तोले मिश्री १० तोले । चारोंका महीन चूर्ण करके पांच२ माशे दोनों समय गायके दूध से तीन सप्ताह सेवन करनेसे सोमरोग का नाश होता है ।

सुरमा चूर्ण ।

चार तोले श्वेत सुरमा लेकर महीन चूर्ण बनाले । मात्रा ४ रत्ती से एक माशे पर्यन्त मधु के साथ दोनों समय चाट लिया करें । इससे तीन ही दिन में लाभ प्रकट

होने लगता है और दो अथवा तीन सप्ताह के सेवन करने से पुराना दुस्साध्य श्वेतप्रदर भी आराम होजाता है।

अमृतादिचूर्ण।

गुर्च का सत, सूखा कसेरू, आँवला और भिण्डी की जड़ दो दो तोले। मिश्री ८ तोले। पांचों का कपड़छन चूर्ण करके दोनों समय पांच २ माशे अशोकारिष्ट के साथ सेवन करने से एकही सप्ताह में बहुत पुराना सोम रोग नष्ट होजाता है।

शुक्तिकादि चूर्ण।

मोती सीप की भस्म, श्वेत धूप और सङ्गजराहत दो दो तोले लेकर महीन चूर्ण बनाले। बीज रहित दश मुनक्का पीस एक छटांक पानी में घोल छान कर चूर्ण मुख में रख इसी जल से प्रातः सायङ्काल दो सप्ताह सेवन करने पर भयङ्कर सोमरोग निर्मूल होजाता है।

मधुकादि चूर्ण।

मुलहठी, विदारीकन्द, गुठली रहित छुआरा और ताड़वृक्ष की जड़ पांच २ तोले लेकर महीन चूर्ण कर डाले मात्रा ५ माशे से एक तोला पर्यन्त बलाबल के अनुसार गाय के दूध से दोनों समय सेवन करने पर श्वेत प्रदर आराम होता है।

विदारीकन्दादि चूर्ण ।

विदारीकन्द, सूखी सुथनी, भिण्डी की जड़, छिलका रहित उड़द और मुलहठी चार २ तोले। मिश्री १२ तोले। महीन चूर्ण करके पांच २ माशे गोदुग्ध के साथ सेवन करने से श्वेतप्रदर निर्मूल होता है। एक मास पर्यन्त इसका सेवन करलेनेसे फिर कोई शिकायत शेष नहीं रहजाती।

दुग्धिकादि चूर्ण ।

सुखाई हुई छोटी दुधिया, बड़ा गोखुरू और श्वेत जीरा दो दो तोले। मिश्री ६ तोले। चारों का महीन चूर्ण करके दोनों समय छः छः माशे गाय के दूध से एक मास पर्यन्त सेवन करने से पुराना रोग भी निर्मूल हो जाता है॥

शतावर्य्यादि चूर्ण ॥

शतावर, आंवला, आंमकाचौर, पिस्ता का फूल, बड़ा गोखुरू, माजूफल, श्वेतदूर्वा, विदारीकन्द, सालममिश्री सूखी शकरकंद, सूखासिंघाड़ा, सेलखरी और सुपारी पांच पांच तोले। मिश्री सवा तीन पाव। सब का महीन चूर्ण बना डालै; मात्रा छः माशे से एक तोला पर्यन्त। दोनों समय धारोष्ण गोदुग्ध के साथ तीन सप्ताह सेवन करने से श्वेतप्रदर नष्ट होता है। आंखों की ज्योति बढ़ती है, शिर की पीड़ा, कटिशूल, दाह और रजदोष दूर होकर शरीर में बल बढ़ता है।

केशरादिवटी ।

केशर ६ माशे, असगन्ध, आंवला, बंशलोचन, गुलाब का फूल और शुद्ध शिलाजीत एक २ तोला । कालीमिर्च, बड़ा गोखुरू, विधारा, छोटी इलायची का दाना, भिन्डी की जड़ का छिलका- सेमर का मुसरा, श्वेत मुसली, शतावर, मैदा लकड़ी, बरियारे की जड़, ककही और बबूर का फल दो दो तोले। मिश्री १० तोले । सबका महीन चूर्ण करके तालमखाने के लुआब और मधु के साथ घोट कर झरबेर के बराबर गोली बनावे। दोनों समय एक वा दो गोली गाय के दूध से एक मास निरंतर सेवन करने पर सोमरोग: आराम होता है । इन गोलियों के प्रभाव से शरीर में पुष्टता आती है, रक्त और बल की वृद्धि होती है ।

उदुम्बरादिकल्क ।

गूलर का कच्चा फल, मिश्री और मधु दो दो तोले पीस कर चाट जावे और ऊपर से गौका धारोष्ण दुग्ध पान करे तो दो सप्ताह में श्वेतप्रदर नष्ट होता है ।

हरिद्रादिहिम ।

हल्दी २तोले । बीज रहित आंवला १० तोले। सुखाई हुई अशोक की छाल २० तोले। गुलकन्द ४० तोले । प्रथम की तीनो औषधियों का अधकुट चूर्ण करके एक २ तोले की मात्रा बनावे । सन्ध्या को एक मात्रा दवा पाव भर पानी में मट्टी के पात्र में भिगोदे, प्रातःकाल उस में दो तोले गुलकंद

मिला मल छान कर पीजावे । इसी प्रकार एक सप्ताह दोनों समय पान करने से अत्यंत भयकर सोमरोग निर्मूल होजाता है ।

भिण्डी कषाय ।

भिण्डी का पञ्चांग दो तोले अधकुट करके क्वाथ बनावे, उसमें मधु मिलाकर दोनों समय पान करने से श्वेत प्रदर को अच्छा लाभ होता है ।

अशोक कषाय ।

चार तोले अशोक की छाल कुचल कर पाव भर पानी में सन्ध्या को भिगोदे । प्रातः काल क्वाथ बना कर छान ले और एक मासा शुद्ध आंवलासार गन्धक का चूर्ण खाकर काढ़ा पीजावे । इसी प्रकार आठ दिन के सेवन से श्वेत-प्रदर आराम होता है ।

अश्वगन्धादि कषाय ।

असगन्ध, कौड़ेनो, चौराई की जड़, फालसे की छाल गूलर का कच्चा फल और ताड़वृक्ष की छाल चार चार तोले लेकर अधकुट करके बारह मात्रा बनावे । इसके काढे में मधु मिला दोनों समय पान करने से सोमरोग नष्ट होता है ।

रामठादि बलका ।

तलाव हींग एक सरसों बराबर । मुर्गा २संख्या । भँगरैया का स्वरस ५ तोले । एक मट्टी का छोटा कसोरा

(सकोरा) अग्नि में डालकर तपावे। जब वह खूब तप्त हो जाय तब चिमटे से बाहर निकाल सीधा धरती पर रक्खे और उसमें भाँगरे का रस डालदे। वह फड़फड़ा कर स्वयम् शांत होजाय तो हींग और मुर्दा का चूर्ण मिलाकर पीजावे। इसी प्रकार दोनों समय एक सप्ताह पान करने से कफज श्वेत-प्रदर आराम होता है।

गुडूची अर्क।

नीम वृक्ष पर चढ़ी हुई ताजी गुर्च एक सेर लेकर कुचल डाले और सन्ध्या को चार सेर पानी में उसको भिगोदे। प्रातःकाल भभके द्वारा अर्क खींचले। मात्रा आध पाव में छःमाशे मधु मिलाकर एक मास पर्यन्त दोनों समय पान करने से दुस्साध्य सोमरोग जिसके आरोग्य होने की आशा जाती रही हो आराम हो जाता है।

मसीड़पेय।

दो तोले कमल की जड़ पीस पावभर गोदुग्ध में घोल छान कर पीजावे। इसी प्रकार ग्यारह दिन प्रातःकाल सेवन करने से सोमरोग का क्षय होता है।

केशरादि पेय।

एक तोला नागकेशर आधपाव ताज़े मोठा में पीस घोल कर दो सप्ताह पर्यन्त केवल एक बार पान करने से पूर्ण लाभ होता है।

चक्रमर्द पेय।

तुरन्त की उखाड़ी हुई हरी चकवड की जड़ चार माशे पानी से महीन पीस आधपाव जल में घोल छान एक सप्ताह पर्यन्त दोनों समय पान करने से श्वेत-प्रदर आराम होता है। परन्तु यह रोग जब तक लुप कोमल रहता है तभी तक लाभ-दायक होता है।

सेमरसुमन पेय।

सेमर का ताजा फूल और मिश्री एक २ तोला महीन पीस पावभर गोदुग्ध में घोल छान कर पीजावे। इसी प्रकार तीन सप्ताह दोनों समय सेवन करने से सोम रोग निर्मूल होता है।

रसवतादि पेय।

शुद्ध रसवत और मधु एक एक तोला। काँटे वाली चौराई की जड़ का स्वरस ४ तोले लेकर घोलडाले, इसकी तीन मात्रा बना कर दिनमें तीन बार करके पान करे इसी प्रकार दो सप्ताह सेवन करने से श्वेत और रक्त-प्रदर दोनों आराम होते हैं।

फालसादि पेय।

दो तोले फालसे की छाल को ठण्डे पानी से महीन पीस आधपाव जल में घोल छान कर उसमें दो तोले मिश्री मिला पीजावे। इसी प्रकार प्रतिदिन प्रातःकाल एक सप्ताह पान करने से श्वेत-प्रदर निर्मूल होता है।

जीरकादिपेय।

श्वेत जीरा१ माशा। पंचाङ्ग सहित श्वेत पुष्पवाली सहदेई और मिश्री दो दो तोले। पहले सहदेवी को पानी से धोकर जीरा के साथ सिल पर महीन पीस पावभर गोदुग्ध में मिश्री सहित घोलकर महीन वस्त्र से छानले। उसको एक लोटे से दूसरे लोटे में भाँग की तरह सौ वार फेरफार कर पी जावे। इसी प्रकार प्रति दिन प्रातःकाल एक सप्ताह सेवन करने से उपद्रवों सहित दुस्साध्य सोम-रोग अवश्य ही आराम होता है।

नागभस्म विधान।

नाग भस्म १रत्ती मुलहठी का चूर्ण १ माशा पका हुआ चीनियां केला के फल का गूदा दो तोले खाकर पाव भर गोदुग्ध ऊपर से पीजावे। इसी प्रकार प्रातः और सायं काल दो सप्ताह पर्य्यन्त सेवन करने से श्वेत-प्रदर दूर होता है तथा शरीर में रक्त और बल की वृद्धि होती है।

मृगांक सेवन।

एक रत्ती मृगाङ्क रस ताजे मक्खन के साथ प्रातःसायं-काल तीन सप्ताह पर्य्यन्त सेवन करने से बहुत पुराना कष्ट-साध्य श्वेत प्रदर जो अन्य योगों से शमन नहोता हो इससे अवश्य आरोग्य होजाता है।

आन्तरिक नारी जननेन्द्रियां

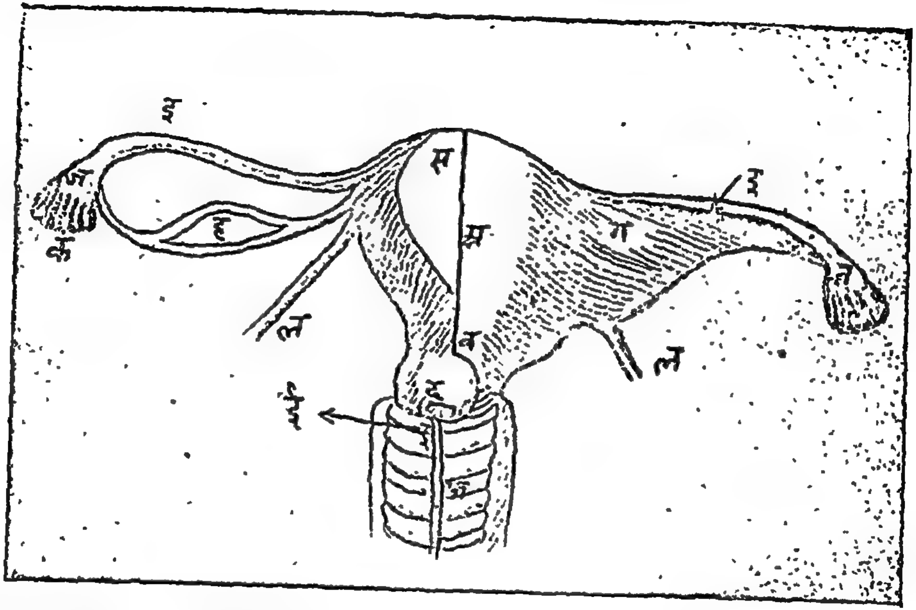

अ-गर्भाशय का शरीर, व-गर्भाशयकी ग्रीवा, स-जरायु (गर्भाशय) द-योनि का आन्तरिक द्वार, ई-योनि का आन्तरिक भाग, ग-चौड़ा बंधन, ह-डिम्बाशय, इ-इ-डिम्बप्रनाली, ज-ज-डिम्बग्राहक झालरें, ल-ल-गोल बंधन, क-(त्रिसल) Bristel-

माजूपिचु धारण।

माजूफल का कपड़छान चूर्ण रुई के फाहा में लपेट कर योनि के भीतर एक पहर तक रक्खे। इसी प्रकार एक सप्ताह करने से सोमरोग निर्मूल होता है।

सोमसुधा तैल।

श्वेतचन्दन का बुरादा, दारुहल्दी, बीजबन्द, देशीमोम और बिरोजा एक २ पाव लेकर पातालयन्त्र से तैल निकाल ले। पांच बूंद से तीन बूंद पर्य्यन्त बतासा में मिलाकर खावे और ऊपर से धारोष्ण गोदुग्ध पान करे। दोनों समय इसी प्रकार सेवन करने से तीन सप्ताह में अत्यन्त भीषण श्वेतप्रदर निस्सन्देह नष्ट होजाता है।

बालिका प्रदर।

जिस बालिका की माता को प्रदर की शिकायत रहती है, माता के दोष के कारण प्रायः बालिका के मूत्रके साथ चूने के पानी के समान सफेद धातु जाती है। यहभी श्वेतप्रदर के अंतर्गत है और सामान्य उपचार से आरोग्य होता है। फिटकिरी, छोटी इलायचीका दाना और रेवतचीनी छः छः माशे। कलमी शोरा ६ माशे। शीतलचीनी एक तोला सब का महीन चूर्ण करके दो रत्ती से एक माशा पर्यन्त अवस्थानुसार मात्रा दूध-पानी के साथ तीनबार पांच छः दिन सेवन कराने से आराम होता है।

पथ्यापथ्य ।

गेहूं और जौ की रोटी, पुराने चावल का भात मूंग, मसूर और चना की दाल । गाय और बकरी का दूध । भैंस का ताजा घी । परोरा, लौकी, नेनुआ और चौराई की भाजी । पका कटहल, केला, मीठा अनार कसेरू आंवला, कैंत का फल, अदरक, छोहाड़ा, चिरौंजी, और शीतल जल आदि ठंडे पदार्थों का सेवन हितकारी है दिन में सोना, रात में जागना, परिश्रम, मार्ग चलना, अग्नि के सामने देर तक बैठना, घाम में रहना, क्रोध, शोक, मैथुन उपवास, भोजन पर भोजन करना, मद्य मांस, और तम्बाकू पीना, सिरका, कडूतेल, अचार, रायता, खट्टादही, लहशुन भांटा, उड़द, गुड़, तिल आदि गरम और क्षार पदार्थों का सेवन हानिकारी है ।

योनिरोग ।

मिथ्याहार विहाराभ्यां दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् ।
आर्त्तवाद्बीजतश्चापि दैवाद्वास्युर्भगे गदाः ॥

जब मिथ्या आहार-विहार से वातादि दोष दुष्ट होकर दूषित होजाते हैं तब वे रज वीर्य के विकार से और दैवगति से भी योनिरोगों को उत्पन्न करते हैं ।

योनि रोगों की संख्या ।

तीनों दोषों के पांच २ और पांच सन्निपात के, इस प्रकार बीस तरह के योनिरोग हैं उनके नाम और लक्षण ये हैं।

वातज योनिरोग।

(१) जिस योनि से अत्यन्त कष्ट के साथ फेनदार रजस्राव होता है उसको उदावृत्त योनिरोग कहते हैं।

(२) जिस योनि से कभी रजस्राव नहीं होताउसको बन्ध्या कहते हैं।

(३) जिसमें सदा पीड़ा वर्तमान रहती है उसको विप्लुता योनिरोग कहते हैं।

(४) जिस योनि में पुरुष समागम के समय मन्द अथवा तीव्र पीड़ा होती है उसको परिप्लुता योनि व्यापत कहते हैं।

(५) जिसमें कर्कशता और शून्यता रहती है तथा पीड़ा के सहित अल्प रजस्राव एक वा दो दिन होकर बन्द होजाता है उसको वातला योनिरोग कहते हैं।

पित्तज योनिरोग।

(१) जिस योनि से गरम रुधिर स्रवता है, शरीर में दुर्बलता और विवर्णता उत्पन्न होती है इसको लोहित क्षरा कहते हैं।

(२) अपने स्थान से ऊपर को उभड़ी हुई दुष्ट संतान उत्पन्न करनेवाली योनि को प्रस्रंसिनी कहते हैं।

(३) वायु द्वारा रजवीर्य को बाहर निकाल देने वाली योनि को वामनी कहते हैं।

(४) रुधिरस्राव के कारण गर्भाशय में स्थित गर्भ को बाहर गिरादेने वाली योनि को पुत्रघ्नी कहते हैं।

(५) जिसमें रजस्राव के समय दाह युक्त पाक हो जाता है और ज्वर आता है। शरीर में गरमी का उपद्रव अधिक बढ़ कर प्यास लगता है। बेचैनी से जो घबराता है उसको पित्तला योनि व्यापत कहते हैं।

कफज योनि रोग।

(१)जिस योनिमें मैथुनसे सन्तोष नहीं होता उसको अत्यानन्दा कहते हैं।

(२) जिसमें कफ और रक्तविकार से गाँठें उभड़ आती हैं उस योनि को कर्णिनी कहते हैं।

(३) पुरुष से पहले स्खलित होने वाली जिसमें वीर्य की रुकावट नहीं होती उस योनि को आनन्द-चरणा कहते हैं।

(४) पुरुष से पहले कई बार स्खलित होने वाली अथवा मैथुन से जिसमें सूजन आजाती है उसको अति-चरणा योनि कहते हैं।

(५) अत्यंत शीतल, चिकनी और खुजलीयुक्त योनि को श्लेष्मला कहते हैं।

त्रिदोषयोनिरोग।

(१) रज विहीन, मैथुन में खरदरी योनिको षण्डी कहते हैं। षण्डीयोनि वाली स्त्री के स्तन नाममात्र को ऊपर

उभड़ते हैं अर्थात् पयोधर बहुत छोटे होते हैं ।

(२) जिसका छिद्र छोटा संकीर्ण रहता है और पुरुष समागम से अण्डकोष के समान बाहर निकल आती है उसको अंडिनी योनि कहते हैं ।

(३) बहुत बड़े छिद्र वाली योनि को विवृता वा महायोनि कहते हैं ।

(४) जिसका छिद्र बहुत छोटा होता है उसको सूची-वक्र योनि कहते हैं ।

(५) जिसमें समस्त दोषों के लक्षण मिले जुले दिखाई दें उसको त्रिदोषिणी योनि कहते हैं।

योनिरोग की चिकित्सा ।

वात के विना अन्य कारणों से योनि दूषित नहीं होती अतः समस्त योनिरोग में वात नाशक उपचार करना श्रेष्ठ है । वातज दोष में वमन और मृदु विरेचन के द्वारा कोष्ठ शुद्धि करके स्नेह, स्वेदन, वस्ति, अभ्यङ्ग और प्रलेपादि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये । उदावृत योनि रोग में अर्थात् जिस स्त्री को रजोधर्म बहुत स्वल्प नाममात्र को होता हो और पेडू कमर आदि में पीड़ा उत्पन्न होती हो तो उसको कालेतिल का क्वाथ मासिक धर्म होने के पांच छः दिन पहले से रजस्राव पर्यन्त सेवन कराना चाहिये। इसी प्रकार प्रति मास में आठ नौ दिन सेवन कराने से चार पांच मास में मासिक खुलकर ठीक समय पर होने लगता है क्वाढ़े के लिये

एक वार में दो दो तोले तिल और पुराने गुड़ का प्रयोग करना चाहिये।

मुचकुन्द सेवन।

मुचकुन्द का फूल और पुराना गुड़ एक २ तोला कूटकर प्रातः सायङ्काल इसको मधु के साथ एक २ तोला चाट जावे तो तीन चार मास में ऋतुधर्म के समय में होने वाली पेड़ू कमर और पीठ आदि की दुस्सह पीड़ा दूर होजाती है। इसको भी मासिकधर्म होने के पांच छः दिन पूर्व से रजस्राव पर्यन्त सेवन करना चाहिये अर्थात् महीने में आठ या नौ दिन। जब पीड़ा दूर होजाय तब औषधि का सेवन त्याग दे॥

बन्ध्या रोग।

जिन स्त्रियों का आर्त्तव नष्ट होजाता है वे बन्ध्या कहलाती हैं। इस प्रसङ्ग में हम आर्ष ग्रंथों के मतानुसार अनुभवी भिषग्वरों द्वारा अनुमोदित और चालीस वर्ष के अनुभूत अनेकानेक सिद्ध गुणकारी योगों का संग्रह प्रकट करते हैं। यदि पथ्य और सावधानी से उनका प्रयोग किया जायगा तो प्रतिशत ८०-८५ बन्ध्याओं को सन्तान का सुख सुलभ होने का दृढ़ विश्वास है॥

बन्ध्या के भेद और विशेष लक्षण।

बंध्या तीन प्रकार की होती हैं। जन्मबंध्या, काकबंध्या और मृतवन्ध्या। जिसको जन्मावधि सन्तान नहीं होती

उसकोजन्मवंध्या कहते हैं॥ जिस स्त्री के एक सन्तान होकर फिर गर्भाधान नहीं होता उसको काकवंध्या और जिसके संतान हो हो कर मरजाते हैं अथवा गर्भपात हो जाता है उसको मृतवंध्या वा मृतवत्सा कहते हैं। उपर्युक्त तीनों प्रकार की वंध्यायें निम्नलिखित छः दोषों से होती हैं:—

(१) गर्भाशय में वायु भरजानेसे पुष्प नष्ट होजाता है।

(२) गर्भाशय के ऊपर मांस की वृद्धि होजाती है॥

(३) गर्भाशय में कृमि उत्पन्न होजातेहैं॥

(४) गर्भाशय में शीतलता आजाती है।

(५) गर्भाशय उष्ण अथवा दग्ध होजाता है। जब अल्प अवस्था वाली स्त्री के साथ पूर्ण युवा पुरुष सहवास करता है तब स्त्री का फूल जलजाता है।

(६) गर्भाशय उलट जाता है।

षट वन्ध्याओं की परीक्षा।

पुरुष समागम के अनन्तर जिस स्त्री के शरीर में कम्प उत्पन्न होतो जानना चाहिये कि इसके गर्भाशय (फूल) में वायु भरगयी है। कटि में पीड़ा कहे तब मांस वृद्धि जानना। पेड़ू में पीड़ा होने से कृमि पड़ना। छाती में पीड़ा होने पर शीतला। शिर और माथे में पीड़ा हो तो फूल का दग्ध होना। जांघों में पीड़ा होने से गर्भाशय का उलटना और कहीं किसी प्रकार की पीड़ा न हो तो कर्मदोष समझना चाहिये।

घटबन्ध्याओं का उपचार ।

(१) काले तिल के तैल में थोड़ी तलाब हींग घोट कर उसमें रूई का फाहा भिगो योनि मे रक्खे । इसी प्रकार तीन दिन बराबर एक २ पहर फाहा रखने से फूल में वायु भरने का दोष नष्ट होकर गर्भाधान होता है ।

(२) हाथी का नख और स्याह जीरा रेंडी के तैल में घोट कर पूर्वोक्त प्रकार इसका फाहा योनि में तीन दिन रखने से माँस वृद्धि का विकार निर्मूल होजाता है ।

(३) हड़, बहेड़ा और कायफल तीनों को साबुन के पानी से महीन पीसकर इसका फाहा तीन दिन रखने से कृमिदोष नष्ट होता है ।

(४) बच, स्याहजीरा और असगंध तीन २ माशे चौकिया सोहागा के पानी से पीस कर ऊपर लिखे अनुसार फाहा धारण करने से शीतला दोष दूर होता है ।

(५) लहशुन ४ रत्ती समुद्रफल और सेंधानोन तीन२ माशे लेकर पानी से महीन पीस इसका फाहा तीन दिन योनि में रखने से दग्ध और उष्णता दोष का नाश होताहै यदि इससे कुछ जलन मालूम होतो एक घड़ी फाहा रखकर दूर करदे और गाय का घी दो तीन बार लगादेने से दाह मिट जाती है ।

(६) चार २ माशे केशर और कस्तूरी पानी से घोट कर चना के बराबर गोली बनाले । प्रति दिन तीन चार गोली महीन वस्त्र में पोटली करके एक सप्ताह बराबर योनि

में रखने से गर्भाशय सीधा होजाता है और गर्भाधान होता है

कर्म दोष से उत्पन्न हुआ बन्ध्या रोग असिट है, वह औषधियोंकी शक्ति से बाहर है। भाविउ मेटि सकहि त्रिपुरारी। के अनुसार शिवार्चन विधि-पूर्वक श्रद्धाभक्ति के साथ करने पर सम्भव है कि दूर होजाय।

बन्ध्या की चिकित्सा।

रजोधर्म का न होना अथवा कुपथ्य से बन्द हो जाना और अल्प मात्रा में पीड़ा आदि उपद्रवों के सहित होना इस रोगका प्रधान लक्षण है जिससे स्त्रियोंको गर्भधारण नहीं होता। यदि बंध्या स्त्री शरीर से दुर्बल होगी तो रक्त की कमी के कारण उसको मासिक खुलने की औषधियाँ सेवन कराने पर भी रजस्राव सहसा नहीं उत्पन्न हो सकता, इस लिये प्रथम रक्तवृद्धि का उपचार करके तदनन्तर मासिक धर्म जारी करने वाली औषधियों का प्रयोग करना चाहिये वमन विरेचनादि के अनंतर बड़वृक्ष की कोमल जटा और नागकेशर पांच २ तोले। गुलशक्करी की जड़ और बरियारे की जड़ का छिलका आध आध पाव लेकर चारों का कपड़छान चूर्ण कर डाले। चार २ माशे प्रातः सायङ्काल इस चूर्ण को खाकर ऊपर से पावभर पकाये हुये गाय के दूध में छः माशे मधु मिलाकर पी जावे। इसी प्रकार चालीस दिन सेवन करने से रक्तकी वृद्धि होती है और बहुत सम्भव है कि रजोधर्म स्वयम् उत्पन्न हो जावे। कदाचित् इस अवधि तक रजोदर्श न हो तो नीचे लिखे योगों का सेवन कराना चाहिये।

कंगुनी विलास चूर्ण ।

मालकंगनी के बीज और उसके पत्तों को लेकर पांच पांच तोले लेकर महीन चूर्ण बनाले । दस २ माशे चूर्ण गरम पानी के साथ दोनों समय सेवन करने से एक सप्ताह में ऋतुधर्म प्रकट होता है । यदि पाँच छः दिन इस औषधि के सेवन से रजोदर्शन न हो तो खिरनी के बीजों की गिरी पानी से महीन पीस पतले वस्त्र में पोटली बनाकर प्रतिदिन योनि में रखने से और खाने की औषधि का सेवन करते रहने से दूसरे सप्ताह में अवश्य ही ऋतु धर्म खुलजाता है ।

विजयसारादि चूर्ण ।

विजयसार, वच, राई और मालकङ्गनी दो२ तोले लेकर महीन चूर्ण बना डाले । पांच २ माशे दोनों समय पानी के साथ सेवन करने से रजोदर्शन होता है ।

तिलादि चूर्ण ।

तिल की जड़, सहिजने की जड़ की छाल, ब्रह्मदण्डी की जड़, मुलहठी, सोंठ, कालीमिर्च और पीपर दो २ तोले लेकर महीन चूर्ण कर डाले । प्रातःसायंकाल छःछः माशे चूर्ण,काले तिल के काढ़े के साथ सेवन करवे से रजस्राव शीघ्र प्रकट होता है ।

भारंग्यादिचूर्ण ।

भारङ्गी और गुर्च का सत दो २ तोले । शतावर ४ तोले । तीनों का महीन चूर्ण करके छःछः माशे चूर्ण आंवले

के स्वरस और मधु के साथ दोनों समय सेवन करने से रजोदर्शन होता है।

हिंग्वादि चूर्ण।

तलाव हींग १ तोला। पलास का बीज २ तोले। दोनों का चूर्ण करके छः छः माशे दोनों समय गोदुग्ध के साथ खाने से अथवा दूध में घोलकर पीने से ऋतुधर्म जारी हो जाता है।

श्यामादि कषाय।

सांवाधान्य, छोटी इलायची और नागकेशर एक एक तोला लेकर अधकुट करके दो मात्रा बनावे। इसका क्वाथ करके लाल अपामार्ग और ताड़वृक्ष की बाल (फली) की भस्म दो माशे खाकर ऊपर से क्वाथ पीजावे अथवा काढ़े में भस्म घोलकर दोनों समय पान करने से दो सप्ताह में बहुत दिनों का बन्द ऋतुधर्म खुलजाता है।

कण्टकार्यादि कषाय।

भटकैया की जड़, सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, कालातिल बहिमन की जड़ और भारङ्गी चार २ तोले लेकर अधकुट करके १४ मात्रा बनावे। इसके क्वाथ में दो तोला पुराना गुड़ मिलाकर कुछ गुनगुना दोनों समय पान करने से रजोदर्शन होता है।

निम्बादि कषाय ।

नीमकी छाल २० तोले और सोंठ ४ तोले अधकुट करके १२ मात्रा बनावे इसके क्वाथ में पुराना गुड़ दो तोले मिलाकर दोनों समय पान करने से रजोदर्शन होता है।

विल्वादि कषाय ।

बेल की छाल और पुराना गुड़ दो २ तोले का कषाय पान करने से ऋतुधर्म होता है।

बेनौला कषाय ।

दो दो तोले कपास का बीज और पुराने गुड़ का क्वाथ दोनों समय पान करनेसे दो सप्ताहमें रजस्राव प्रकट होता है।

दन्तिकादि वटी ।

दन्ती, तलाव हींग, जवाखार, तितलौकी का बीज पीपर और पुराना गुड़, एक २ तोला लेकर महीन चूर्ण बनाडाले। उसको सेंहुड़ के दूध में घोट कर चना के बराबर गोली बनावे। एक २ गोली दोनों समय काले तिल के क्वाथ के साथ सेवन करने से बहुत शीघ्र ऋतुधर्म प्रकट होता है परन्तु गरम प्रकृति वाली स्त्रियों को तथा ग्रीष्म ऋतु में इसका प्रयोग न करना चाहिये।

ताड़फल भस्म ।

ताड़वृक्ष की बाल को जलाकर उसकी राख और पुराना गुड़ दस २ तोले लेकर एक दिल करके २० मात्रा

बनावे। दोनों समय जल के साथ सेवन करने से जिसको कभी रजस्राव न हुआ हो अथवा बहुत दिनोंसे बंद ऋतुधर्म शीघ्र जारी हो जाता है। काकवंध्या दोष इस से सर्वथा निर्मूल होता है।

सर्जिकाजल।

पाँच तोले सज्जी का चूर्ण पाव भर पानी में संध्या को भिगोदे। प्रातः काल थिराया हुआ जल निथार कर उसको आधा सवेरे और आधा शाम को पीजावे। इसी प्रकार सात आठ दिन के सेवन से पुष्पावरोध नष्ट होता है

गाजर बीज।

एक या डेढ़ तोले गाजर का बीज पानी से महीन पीस थोड़े जल में घोलकर एक सप्ताह दोनों समय पान करने से रजस्राव प्रकट होता है।

विजयसारादि पेय।

विजयसार, बालवच, सज्जी और मालकङ्गनी का पत्ता तीन२ माशे पीस कर पावभर गाय के दूध में घोल दोनों समय एक सप्ताह पान करने से रजोदर्शन होता है।

गुग्गुलादि धूप।

गूगुल, गन्धक, नख, नकछिकनी और शीतलचीनी एक २तोला लेकर अधकुट करडाले, उसमें बकरे का पित्ता मलकर सुखाले। कंडे की निर्धूम अग्निपर थोड़ा चूर्ण डालकर योनि में धूनी देनेसे बहुत दिन का बन्द हुआ ऋतुधर्म शीघ्र उत्पन्न होता है। इससे गर्भमें मृतक हुआ बालक तुरन्त बाहर हो जाता है।

रक्तवर्त्तिका।

पाच माशे अपामार्ग की जड़ पानी के साथ खरल में घोटकर पतली बत्ती बनाकर प्रतिदिन एक पहर जननेन्द्रिय में रखने से प्रथम ही बार में रजोदर्शन होगा अथवा दूसरे या तीसरे दिन तक अवश्य प्रकट होजायगा।

केशरादि चूर्ण।

नागकेशर और मिश्री दस दस तोले लेकर महीन चूर्ण कर डाले। दोनों समय गाय के दूध से छः छः माशे सेवन करना चाहिये। प्रति मास में रजोधर्म के समय से एक सप्ताह पूर्व आरम्भ करके रजोदर्शन काल पर्यन्त सेवन करके छोड़दे। इसी प्रकार पांच छः मास सेवन करने से सम्पूर्ण रजोविकार नष्ट होता है। पेड़ू, कमर की पीड़ा मिटजाती है और गर्भाधान होने में संदेह नहीं रहता।

रजसुधार चूर्ण।

सोंठ १ तोला। कालादाना १॥ तोला। दंती २ तोले। जावित्री ३ तोले। चारों का महीन चूर्ण करके दोनों समय तीन २ माशे इस चूर्ण को खाकर ऊपर से एक२ छटांक शर्बत बनफशा और सौंफ का अर्क मिलाकर पीजावे। पूर्वोक्त प्रकार ऋतुधर्म के समय तीन चार महीने सेवन करने से रजदोष नष्ट होकर गर्भधारण होता है।

यवादि चूर्ण ।

इंद्रयव, रूमीमस्तङ्गी, करुआका फल, छोटी इलायची और वंशलोचन, एक २ तोला। आम की कोपल २ तोले, मिश्री ४ तोले। कोपलको धूप में सुखाकर समस्त औषधियों का महीन चर्ण करके छःमाशे से एक तोला पर्यन्त चावल के धोवन के साथ दोनो समय ऋतुधर्म के आठ सात दिन पूर्व से रजोदर्शन तक सेवन कर छोड़ दे। इसी प्रकार पांच महीने सेवन करने से पीड़ा के साथ मासिक धर्म का होना तथा समस्त विकार निर्मूल होकर गर्भाधान होता है।

पलाण्डु वटिका ।

प्याज को वीज, सूखा पोदीना, कालातिल, और पुराना गुड़ एक २ तोला। चारों को पानी से महीन पीस झरबेर के बराबर गोली बनावे। दोनों समय एक २ गोली सेवन करने से पुष्पावरोध नष्ट होता है और पीड़ा के सहित ऋतुधर्म का होना तथा समस्त रजोविकार नाश होकर गर्भाधान होता है। यदि एक सप्ताह इसके सेवन से बहुकाल का बन्द हुआ रजोधर्म न उत्पन्न हो तो इन्द्रायन की जड़ पानी से महीन पीस उसकी लुगदी योनि में तीन चार दिन रखने से अवश्य ही रजोदर्शन होता है और पीड़ा आदि विकार मिटजाता है।

केशरादि वटी।

केशर, मुसब्बर और मुर्रा एक२ तोला लेकर महीन पीस पानी के साथ घोटकर चना के समान गोली बनावे दिन में तीन बार एक २ गोली पानी के साथ तीन चार सप्ताह सेवन करने से ऋतु दोष नष्ट होकर गर्भाधान होता है। इसके सेवनकाल में प्रति दिन पेड़ू परमुसब्बर का लेप करना लाभकारी है। इन गोलियों से बन्द हुआ ऋतुधर्म भी प्रकट होता है।

अहिफेनादिवटी।

अफीम दो माशे। उड़ाया हुआ कपूर ८ माशे। दोनों पानी से घोट दो २ रत्ती की गोली बना छाया में सुखा डाले। ऋतु धर्म होने के एक सप्ताह पूर्व से आरम्भ कर के रजोदर्शन पर्यन्त सेवन कर छोड़ दे। एक२ गोली दिन में तीन बार खाना चाहिये। इससे पेड़ू में दुस्सह पीड़ा के सहित ऋतुधर्म का होना तीन चार मास में आराम हो जाता है और नियम पूर्वक ठीक समय पर मासिकधर्म होने लगता है तथा गर्भाधान होता है

मिर्चादिवटी।

कालीमिर्च और अदरख एक एक तोला। सत्यानाशी की जड़ २ तोले लेकर महीन चूर्ण करके पानी के साथ घोट झरबेरके बराबर गोली बनावे। दिन में तीन बार एक एक गोली दो तीन मास पर्यन्त सेवन करने से ऋतुदोष

दूर होकर गर्भ धारण होता है। बंद हुआ रजस्राव जारी होता है।

तारक वटी।

हड़, बहेड़ा, आंवला कालीमिर्च, पीपर, सोंठ, वायविडङ्ग, चाब और चीता की जड़ एक २ तोला। मण्डूर भस्म ९ तोले। गोमूत्र १८ तोले। पुराना गुड़ ३६ तोले। सब औषधियों का महीन चूर्ण करके गुड़ और गोमूत्र के सहित लोहे की कड़ाही में पकावे। गाढ़ा होजाने पर नीचे उतार झरबेरी के समान गोली बनावे। दिन में चार बार दो २ गोली ऋतुधर्म के समय से आठ दिन पूर्व सेवन आरम्भ करके रजोदर्शन पर्यन्त खाकर छोड़दे। इसी प्रकार चार पांच मास करने से पेडू में दुस्सह पीड़ा होकर रजोधर्म का होना तथा रज संबन्धी समस्त विकार वन्ध्यापन का नाश होजाता है। बिना किसी कष्ट के ठीक समय पर ऋतुधर्म होने लगता है और गर्भाधान होता है। इससे रक्तगुल्म, परिणामशूल और योनिरोग सब नष्ट होजाते हैं।

सर्जिकादि कषाय।

सज्जी दो तोले। चीता और रूपूर तीन२ तोले। वायविडङ्ग, हंसराज, मगरैल, मूलीकाबीज, सोवा का बीज अमिलतास की छाल और अखरोट के फल का छिलका एक २ छटांक। मेथी और गाजर का बीज आध-आध पाव। सब अधकुट करके दो दो तोले की मात्रा बनावे। इसके क्वाथ

में दो तोले पुराना गुड़ मिलाकर कुछ काल पर्यन्त दोनों समय सेवन करने से बंद हुआ ऋतुधर्म जारी होता है। और रजो विकार नष्ट होकर ठीक समय पर मासिकधर्म होने लगता है तथा गर्भाधान होता है।

गुड़हर कषाय।

उड़हुल (देवीफूल) ५ संख्या लेकर पावभर जल में पकावे और चौथाई जल रहने पर उतार कर छानले शीतल होजाने पर एक तोला मधु मिलाकर पीजावे। ऋतुधर्म होने के पांच छःदिन पूर्व से आरम्भ करके १२ दिन पर्यन्त सेवन करके छोड़ दे। इसी प्रकार प्रतिमास दोनों समय चार पांच महीने सेवन करने से सब प्रकार का ऋतुदोष दूर होकर ठीक समय पर मात्रानुसार रजोदर्शन होने लगता है और गर्भधारण होता है।

चौराई बीज।

चार माशे चौराई के बीजों को चावल के धोवन से पीस आध पाव चावल के धोवन में घोलकर छः माशे मधु मिला पीजावे। पूर्वोक्त प्रकार ऋतुधर्म के पूर्व से अन्त तक तीन चार मास दोनों समय सेवन करने से ऋतुविकार निर्मूल होकर गर्भाधान होता है।

सौभाग्यवतीधूप।

धूप, नागकेशर, बड़ी इलायची, तगर, इंद्रयव, बच्च, कुट और पीली सरसों एक एक तोला लेकर अधकुट कर

डालै। कण्डे की निर्धूम अग्नि पर डालकर इसकी धूनी योनि में देने से समस्त रजविकार दूर होकर गर्भधारण होता है।

त्रिफला घृत।

हड़, बहेड़ा, आंवला, पोली कटसरैयाकी जड़, गुर्च हल्दी, दारुहल्दी, रासना, श्वेत कटसरैया की जड़, सोना-पाठा की छाल और पुनर्नवा की जड़ डेढ़ डेढ़ तोले। शतावर ३तोले। गाय का घी एक सेर। गोदुग्ध ४ सेर। समस्त औषधियों को कूट कर दूध के साथ पीस सब घी में मिला कर पकावे और सिद्ध होजाने पर उतार कर छानले। दोनों समय एक२ वा दो २ तोले घी गोदुग्ध के साथ सेवन करने से समस्त रजोविकार नष्ट होकर, गर्भधारण होता है और सब प्रकार के योनिरोग निर्मूल होते हैं।

फलघृत।

मजीठ, मुलहठी, कुट, हड़, बहेड़ा, आँवला, वरियारे की जड़, शतावर, दुधिया, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु कुटकी कमल पुष्प, मुनक्का, कुमुद का फूल, श्वेत चन्दन रक्तचन्दन और मिश्री एक २ तोला। असगंध ३ तोले। बछड़ेवाली एक रङ्ग की गाय का घी एक सेर। शतावर का क्वाथ और गोदुग्ध चार २ सेर। सब औषधियों को कूट कर दूध के साथ महीन पीस घी काढ़ा आदि सब साथ ही कड़ाही में डाल कर पकावे किन्तु आंच उपलों को लगाना चाहिये। सिद्ध होजाने पर उतार कर वस्त्र से छान ले। छः माशे से दो तोले की मात्रा में इस घी का सेवन

कुछ काल दोनों समय करने से सब प्रकार का रजोदोष दूर होकर ठीक समय पर ऋतुधर्म होता है। इस घृत के प्रभाव से वन्ध्यत्व का नाश होजाता है। जिस स्त्री का गर्भ गिरजाता हो, जन्म की वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा और ऋतुधर्म सम्बन्धी समस्त विकार नष्ट होता है। यह अश्वनी कुमार का कहा हुआ फल घृत वन्ध्यापन को मिटाने के लिये अद्वितीय अनुभूत और गुणकारी प्रसिद्ध है। इससे बीसों प्रकार के योनि रोग निर्मूल होते हैं। पुरुषों के लिये बाजीकरण है। इस घी के बनाने का पाठ आर्षग्रन्थों में भिन्न २ प्रकार का पाया जाता है। उसमें हींग बच, तगर, श्वेतकण्टकारी और बिदारीकन्द आदि की योजना की गई है, किंतु यहां उन द्रव्यों का उल्लेख नहींहै।

कुमारकल्पद्रुम घृत।

अगर, आंवला, कचूर, कमरख की जड़, कमलपुष्प कुट, केशर, कौड़ेनी, खम्भारी की छाल, गुर्च तेजपात, दारु हल्दी, दालचीनी, देवदार, नागकेशर, नागरमोथा, नीलवृक्ष की जड़, नीली दूब, प्रियंगु, बच, बड़ी इलायची, बहेड़े के फल का छिलका, मजीठ, मालकङ्गनी, मुलहठी, रेणुका, लवंग बनउर्दी, वनभृंग, श्वेतचन्दन, श्वेतदूब, श्वेतवरियारा की जड़, सरफोंका की जड़, सरिवन और हड़ एक २ तोला। असगंध २ तोला। विदारीकन्द और शतावर तीन २ तोले बकरे का मांस और दशमूल एक २ सेर। शतावर का स्वरस, दुग्ध और गाय का घी दो दो सेर। शुभमुहूर्त

में प्रवीण वैद्य गणेशजी और शिव-पार्वती का श्रद्धाभक्ति पूर्वक अर्चन वन्दन करके इस घी के बनाने का कार्य आरम्भ करे। प्रथम दशमूल को अधकुट करके और बकरेका मांस दोनों को सोलह सेर पानी में पकावे। चतुर्थांश रह जाने पर उतार कर छान ले। गीलो शतावर दोनों सेर सिलपर पीसवस्त्र में रख दोसेर रस निचोड ले। शेष औषधियों को महीन कूट पीस कर कल्क करके घृत, दुग्ध काढ़ा कल्क आदि साथ ही तांबे की कलईदार कढ़ाई में उपलों की धीमी आंच से पकावे और सिद्ध होजाने पर उतार कर छानले। फिर शुद्ध पारा, शुद्धगन्धक आंवलासार, और सौ आंचका अभ्रक एक २ तोला। एक वर्ष की पुरानी मधु आध सेर। पारा-गन्धक को कज्जली करके घृत में मिलाकर लकड़ी से खूब चला दे और कांच के पात्र में बन्द करके रक्खे। मात्रा एक से दो तोले तक। अच्छे दिन में ब्राह्मण और देवता का पूजन करके इस घृत का सेवन आरम्भ करना चाहिये। घृत खाकर ऊपर से बकरी का दूध पान करे। कुछ काल इसका सेवन करने से जन्म की बन्ध्या पुत्रवती होती है। जिसका आर्त्तव नष्ट होगया हो अथवा ऋतुधर्म के समय पेडू आदि में पीड़ा उत्पन्न होकर स्वल्प स्राव होता हो, योनि में सदा पीड़ा रहती हो काकबन्ध्या और मृतवत्सा दोष निस्सन्देह निर्मूल होजाता है। सुन्दर रूपवान और दीर्घजीवी सन्तान उत्पन्न होती है। बीसों प्रकार के योनि रोग इस घी के प्रभाव से नष्ट होते हैं।

पराशर मुनि ने वन्ध्या स्त्रियों के लिये इस घी निर्माण कियाथा। इसमें संतानोत्पादन की अद्वितीय और अमोघ शक्ति वर्तमान है। मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली और क्षीर काकोली ये छः औषधियां इसमें नहीं मिलती, इसी से उनके अभाव में शतावर, विदारीकन्द और असगंध की मात्रा बढ़ादी गई है।

मृतवत्सा का उपचार।

यद्यपि मृतवत्सा की पर्याप्त औषधियां लिखी जाचुकी हैं तो भी एक अनुभूत योग उसके सम्बंध में और उद्धृत किया जाता है। देवदार, पद्माख, कच, छोटी इलायची, सुगन्धवाला, चीता की जड़, हड़, पीपर, कचूर, हल्दी, अजमोदा, पित्तपापड़ा, वायविडङ्ग, मुसब्बर, रसवत और वरधान्य की बीजा दो दो तोले लेकर कपड़छन चूर्ण बना डाले। गर्भाधान के प्रथम मास में दोनों समय एक एक मासा। दूसरे मास में दो माशे। तीसरे मास में तीन माशे चौथे मास में चार और पाँचवे मास में पांच माशे सेवन कर के छटा मास लगने पर छोड़दे। फिर इच्छानुसार उत्तमफलों का सेवन हितकर है। इससे पूरा नौ मास बीतने पर प्रसव होता है और मृतवत्सा दोष नष्ट होकर सन्तान दीर्घ जीवी होती है।

योनिशूल का चिकित्सा।

रास्ना, बड़ा गोखुरू और अडूसे की जड़ एक एक तोला कुचल कर तीन पाव गाय के दूध में पकावे। जब आधा

दूध जल जाय तब नीचे उतार छान ले। आधा प्रातःकाल और आधा सायंकाल में पान करने से एक सप्ताह में योनि शूल रोग अर्थात् विप्लुता और परिप्लुता योनि व्यापत् दोष दूर होता है।

वृषकादि पेय।

अडूसे की जड़, बिजौरा नीबू की जड़ और बेला पुष्प की जड़ छः छः माशे मदिरा के साथ महीन पीस थोड़ी सी मदिरा में घोलकर पीजावे। पीते समय उसमें डेढ़ दो माशे सेंधानोन का चूर्ण मिला लिया करे। इसी प्रकार दोनों समय ग्यारह बारह दिन सेवन करने से योनि की पीड़ा और पुरुष समागम में होने वाली वेदना नष्ट होती है।

तगरादि तैल।

तगर, भटकैया की जड़, कुट, देवदार और सेंधानोन दो दो तोले लेकर कूट कर पानी से महीन पीस आध सेर तिल के तैल में मिलाकर पकावे और सिद्ध होजाने पर छान ले। इस तैल का फाहा योनिमें रखने से विप्लुता, परिप्लुतादि योनि शूल नष्ट होता है।

मृगमदादि तैल।

कस्तूरी, कमलगट्टा, कायफल, कौसीस, मुलहठी, सुरमा, लोध, आमकी गुठली, जामुन की गुठली, सहिजने का बीज, तेंदु की छाल, अनार की छाल, आंवले का पत्ता और गूलर का पत्र दो दो तोले। तिलका तैल दो सेर। गो-

दुग्ध ४ सेर । पूर्वोक्त प्रकार औषधियों का कल्क करके दूध तैल सब कड़ाही में डाल पकावे और सिद्ध होजाने पर छान ले । इस तैल का शरीर पर मर्दन कराने और योनि में फाहा रखने से योनि शूल आदि रोग नष्ट होते हैं ।

कुम्भी स्वेद ।

कुम्भी को पानी में पका कर इसका योनि में स्वेद देने से और तगरादि तेल का फाहा रखने से शून्यता, कर्कशता और पुरुष समागम के समय पीड़ा का होना दूर होताहै

आंवलादि रस ।

आंवले का रस और कमलिनी की जड़ चावल के धोवन में पीस कर पान करने से लोहितक्षरा दोष, गरम रुधिरस्राव और योनि दाहदूर होता है ।

गुडूच्यादि कषाय ।

गुर्च, हड़, वहेड़ा, आंवला और दन्ती के काढ़े से प्रतिदिन योनि को धोने से श्लेष्मला योनिरोग, खुजली का होना दूर होता है ।

स्तनवर्द्धक प्रलेप ।

कालीमिर्च, पीपर, तगर, सेंधानोन, भटकैया का फल, अपामार्ग कोजड़, कालातिल, कुट, जौ, उड़द, सरसों और असगंध समान भाग लेकर उबटन के समान पीस प्रतिदिन स्तनों पर मर्दन करने से षण्डी योनि वाली स्त्री के स्तन बड़े होजाते हैं ।

मूषक तैल ।

काले तिल का तैल आध सेर और चूहा के मांस का काढ़ा एक सेर लेकर पाक करे। सिद्ध हो जाने पर छान ले। इस तेल का फाहा योनि में दो सप्ताह पर्यन्त प्रति दिन रखने से छिद्र की संकीर्णता बाहर का उभड़ा रहना और विवृतादि योनि व्यापत रोग अवश्य दूर होजाते हैं। यह तैल योनिरोग के लिये अत्यन्त लाभकारी है।

योनि संकोचन ।

(१) केवाँच की जड़ का क्वाथ बनाकर प्रतिदिन योनि को धोने से महा योनि रोग अर्थात् फैली हुई जननेंद्रिय सिकुड़जाती है।

(२) हरड़, सुपारी, खैर, जायफल और नीम का पत्ता समान भाग मूंग के यूष से महीन पीस उसमें वस्त्र लथेप कर सुखाले। प्रतिदिन इसी प्रकार नवीन वस्त्र बनाकर दो तीन सप्ताह पर्यंत योनिमें रखनेसे संकोचन होता है।

(३) पत्थरबन्दा और गूलर का फल पीस तैल और मधु में फेंट कर प्रतिदिन योनि में लेप करने से संकोचन होता है।

(४) आम का कोमल फल (टिकोरा) और कपूर पीस कर मधु के साथ कुछ काल निरंतर लेप करते रहने से जननेंद्रिय सिकुड़ कर संकीर्ण होजाती है।

गर्भावरोधक योग।

(१) पीपर, बायविडङ्ग और चौकिया सोहागा दो दो तोले महीन चूर्ण बनाले। ऋतुस्नान के अनन्तर पांच माशे चूर्ण खाकर ऊपर से दूध पान करे। इसी प्रकार एक सप्ताह दोनों समय सेवन करने से फिर कभी गर्भ धारण नहीं होता

(२) बेर और पीपल वृक्ष की लाही एक २ तोला। पुराना गुड़ २ तोले। तीनों को महीन पीस पानी से घोट कर सोलह गोली बनावे। ऋतु स्नान के पीछे दोनों समय एक २ गोली जल के साथ आठ दिन खाने से गर्भ धारण की शक्ति नष्ट होती है।

(३) उड़हुल का फूल ५ संख्या लेकर आरनाल नाम की कांजी में पीस घोल कर ऋतु के अनन्तर दोनों समय एक सप्ताह पान कर ऊपर से चार २ तोले पुराना गुड़ खाने से कदापि गर्भ धारण नहीं होता।

पथ्यापथ्य।

जिन स्त्रियों को ऋतुधर्म नहीं होता अथवा स्वल्प मात्रा में पीड़ा आदि उपद्रवों के सहित होता है उन्हें प्रति दिन मछली, काँजी, तिल, उड़द, माठा, दही, गुड़, पीपर, जवाखार और मदिरा का सेवन हितकारी है। गरिष्ठ, अजीर्ण कारक पदार्थों का सेवन न करना चाहिये।

योनिकन्द रोग

पूय शोणित संकाशं लकुचाकृति सन्निभम्।
जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः सयोनिजः॥

योनि में बड़हल के समान गांठ उत्पन्न होकर उसमें से रक्त और पीव का प्रवाह होता है उसको योनिकंद रोग कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, और सन्निपातज चार प्रकार का योनिकन्द होता है।

योनिकन्द के लक्षण।

वातज योनिकंद रूखा, विवर्ण और फटा सा रहता है। पित्तज, दाह, लाली और ज्वर युक्त। कफज-तिल पुष्प के समान रङ्गवाला, खुजलीयुक्त और सन्निपातज योनिकंद में तीनों दोषों के लक्षण मिलते जुलते हैं यह कष्टसाध्य होता है

योनिकन्द की चिकित्सा।

(१) त्रिफला के काढ़े में मधु मिलाकर धोने से और आँवले की गुठली, गेरू, वायविडङ्ग, हल्दी, रसवत तथा कायफल समान भाग महीन चूर्ण करके मधु में फेंट कर दिन में तीन चार बार लगाने से वातज योनिकंद आराम होता है।

(२) योनि में घी लगा गोदुग्ध का स्वेद देकर फिर सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, धनिया, श्वेतजीरा, अनारदाना और पीपरामूल बराबर भाग लेकर महीन चूर्ण बना

डाले। इस चूर्ण से योनि का मुख भर कर वस्त्र से बांध दिया करे तो पित्तज योनिकंद शीघ्र नष्ट होता है। इसमें शीतल सिंचन, फाहा आदि पित्त नाशक उपचार करना लाभकारी है।

(३) सम्हालू के पत्तों को पानी में पकाकर स्वेद लेना और उसी के पानी से योनि को अच्छी तरह धोकर वस्त्र से पोंछ—पीपर, कालीमिर्च, उड़द, सोवा, कुट और सेंधानोन समान भाग पानी से महीन पीस तर्जनी उँगली के सदृश मोटी बत्ती बना योनि में रखने से कफज योनिकंद निर्मूल होता है।

धातक्यादि तैल।

धवपुष्प, आंवले का पत्ता, रसवत, मुलहठी, कमल पुष्प, जामुन की गुठली, कसीस, आमकी गुठली, लोध, कायफल, तेंदु की छाल, मुलतानी मट्टी, अनार की छाल और गूलर का कच्चाफल डेढ़ २ तोले। तिल का तैल एक सेर। गाय का दूध और बकरी का मूत्र दो दो सेर। सब औषधियों को कूट कर दूध के साथ महीन पीस कल्क, मूत्र दूध सब तैल में मिलाकर पकावे, सिद्ध होने पर उतार कर छान लें। इस तैल का फाहा योनि में रखने, शरीर पर मर्दन कराने और बस्ति लेने से चारों प्रकार का योनिकंद आराम होता है। योनिरोगों के लिये अत्यंत लाभकारी है।

ऋतुधर्म

मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम् ।
वत्सराद्द्वादशदूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥

स्त्रियों के रस से उत्पन्न हुआ रज प्रतिमास में तीन दिन तक निकलता है वह बारह वर्ष की अवस्था से लेकर पचास वर्ष पर्यन्त स्रवता रहता है और इसके उपरांत बन्द होजाता है।

ऋतुकाल के कर्म।

ऋतु धर्म ही गर्भाधान का आदि कारण है। जिस स्त्री को महीने २ शुद्ध रजस्राव नहीं होता वह गर्भधारण नहीं कर सकती और वंध्या कहलाती है। रजोधर्म काल में जो कुपथ्य होता है संतान पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है। हमारे देशकी अधिकांश स्त्रियां रजोदर्शन काल के कुपथ्यों का ज्ञान नहीं रखतीं और न उससे बचने का प्रयत्न करती हैं। यही कारण है कि अन्यान्य देशों से भारतवर्ष में बालकों की मृत्युसंख्या अधिक प्रमाण में होती है। उत्तम दीर्घायुवाली सन्तान उत्पन्न करना एक मात्र स्त्रियों के आचार विचार पर निर्भर करता है। भाग्य के भरोसे पड़े रहने वाले आलसी मनुष्य भले ही इसको कपोल कल्पित कहानी समझें; पर सन्तान का रूपवान्, गुणवान्, बली और दीर्घजीवी होना माता के ही आधीन है। शुद्ध

लोक में प्रसिद्ध है। और त्रिकालदर्शी महर्षियों द्वारा समर्थित बात है कि ऋतु स्नाता स्त्री जिस प्रकार के सुरूप-कुरूप काले-गोरे स्त्री-पुरुषों को देखती है तदनुसार ही उसके गर्भ से बालक उत्पन्न होताहै। इसलिये ऋतुस्नाता स्त्री को प्रथम अपने पतिका ही दर्शन करना श्रेष्ठ है।

ऋतुमती के त्याज्य कर्म।

दिन में सोना, आंख में अञ्जन लगाना, रोना, स्नान करना, शरीर में उबटन वा तेल मलवाना, नखकटाना, दौड़ना, खिलखिलाकर हंसना, बकवाद करना, तीव्रवायु में रहना, कर्णकटु कठोरशब्द सुनाना, पांव के नख से धरती खुरचना, अधिक श्रम और पुरुष-प्रसङ्ग से बचना नित्तांत आवश्यक है। क्योंकि दिन में सोने से दुःशील बालक उत्पन्न होता है। अञ्जन लगाने से अन्धा; रोने से वक्र दृष्टिवाला (टेयरा) स्नान और उबटन करने से रोगी तैल लगाने से कोढ़ी, नख कटवाने से कुनखी, (खराब नाखूनवाला) दौड़ने से चञ्चल, हँसने से बकवादी, बहुत बोलने और कठोर शब्द सुनने से बधिर, तीक्ष्णवायु सेवन से और कठोर परिश्रम करने से सनकी, नख से पृथ्वी कुरेदने पर दुष्ट सन्तान उत्पन्न होती है। पुरुष प्रसंग से प्रदर आदि रोग होने की सम्भावना रहती है। इस लिये रजोदर्शन काल में पुरुष——समागम से बचना चाहिये। यदि उस समय गर्भाधान होगया तो वह सन्तान जीवित नहीं रह सकती। पति के स्पर्श से बचकर एकांत

में निवास करना, कुशाकी चटाई पर सोना और दूध-भात अथवा खीर का भोजन करना श्रेष्ठ है। धर्म शास्त्रों में छुआछूत से बचने के लिये ही रजवती स्त्री को चाण्डालिनी, ब्रह्मघातिनी और रजकिनी की पदवी प्रदान की गयी है उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा रखने वाली ललनाओं को ऋतुधर्म के चौथे दिन स्नान करके वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर रात्रि के दूसरे पहर में प्रसन्न मनसे रङ्ग स्थान में पति को सन्तुष्ट करने की इच्छा से पदार्पण करना चाहिये।

सहवासके अयोग्यबाला।

रजवती, अकामा, गर्भिणी, मलिना, वृद्धा, रोगिणी, अङ्गहीना- अप्रियवादिनी, योनिरोगवाली, वैरिणी वा शत्रु की भार्या, गुरुपत्नी, भगिनी, माता भिखारिणी, कन्या और व्यभिचारिणी के साथ सहवास करना सर्वथा वर्ज्य और निन्दनीय है। रजवती के साथ सहवास करने से मूत्रकृच्छ्र भगंदर आदि रोग होते हैं। अकामा, मलिना, अङ्गहीना, वैरिणी आदि के साथ गमन करने से धातुक्षय रोग होता है। माता, बहिन, कन्या, गुरुपत्नी और सगोत्रवाली के साथ प्रसङ्ग करने से आत्मग्लानि, अपकीर्त्ति और नपुंसकत्व होता है। गर्भिणी के साथ सहवास करने से गर्भपात होने की आशङ्का और भ्रूणहत्या दोष होता है। वृद्धा के साथ आयु की क्षीणता और रोगिणी से गमन करने पर बल का क्षय होता है। मलमूत्र के वेग को रोक कर

स्त्री-प्रसङ्ग करने अथवा गिरते हुये वीर्य को रोकने की चेष्टा करने से पथरी-सुजाक होजाने का भय रहता है। यही विकार विपरीति रति से होता है सुश्रुतजी लिखते हैं कि यदि पुरुष नीचे और स्त्री ऊपर होकर सहवास करे और उस समय गर्भाधान होजावे तो पुत्र स्त्री प्रकृति का और कन्या पुरुष प्रकृति की उत्पन्न होती है। उनके आकार में विपर्यय होना बहुत सम्भव है, जैसे-पुत्र के युवावस्था में दाढ़ी मूछ का न आना, हीजड़ा होना और और कन्या के दाढ़ी मूछ की जगह थोड़ा बहुत बाल का उत्पन्न होना तथा पुरुष की चेष्टा से युक्त इत्यादि।

गर्भाशय का स्वरूप।

स्त्रियों की जननेंद्रिय तीन त्रिवली वाली शङ्ख के समान होती है। उन वलियों के अन्त में पक्वाशय और पित्ताशय के बीच में गर्भाशय रहता है। गर्भाशय का मुख रोहू मछली के समान होता है जैसे-मछली का पेट बड़ा और मुख छोटा होता है उसी प्रकार की बनावट गर्भाशय की होती है। जब स्त्रियां मासिक धर्म से होती हैं तब गर्भाशय का मुख खुलजाता है और वह सोलह दिन तक खुला रहता है। ऋतुस्नान के अनंतर बारह दिन तक गर्भाधान का श्रेष्ठ समय माना जाता है।

गर्भाधान।

जिस प्रकार ऋतु, क्षेत्र, जल और बीज इन चारों के योग से अंकुर निकलता है उसी प्रकार ऋतुस्नाता, नवयौवना

शुद्ध रज और वीर्य के संयोग से गर्भाधान होता है । उत्तम रीति से गर्भाधान होने पर सन्तान रूपवान, पराक्रमी, गुणवान और दीर्घजीवी होती है । रतिदान के समय स्त्री-पुरुष जैसी चेष्टा-आचरण में प्रवृत्त रहते हैं उनके आचार का प्रभाव सन्तान पर पड़ता है । इसलिये गर्भाधान के समय दम्पत्ति को कुचेष्टाओं से बचना परमावश्यक है ।

विकृत गर्भ का कारण ।

स्त्री-पुरुष के रतिदान काल की कुचेष्टाओं से और वात-प्रकोप से गर्भ कुबड़ा, टेढ़ा, पंगुल, गूंगा, काना, अंधा और तुतला होता है। कुछ आचार्यों का मत है कि पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों के फल से विकृत-गर्भ की उत्पत्ति होती है ।

मिथ्यागर्भ ।

सुश्रुतजी लिखते हैं कि —

"ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत् ।
आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भ करोतिहि,, ॥

अर्थात् ऋतुस्नाता स्त्री यदि स्वप्न में पुरुष समागम करे तो कभी कभी स्खलित रज को वायु गर्भाशय में स्थापन करदेती है, उससे मांस का पिंड—मिथ्यागर्भ, उत्पन्न होता है । ऋतुधर्म बंद होजाता है और गर्भ के समान वह महीने २ बढ़ता है । कोई २ इसको रक्तगुल्म कहते हैं । गर्भ के सन्देह से दस मास तक इस रोग की प्रायः प्रतीक्षा की जाती है जिससे यह कष्टसाध्य होजाता है ।

मिथ्यागर्भ की चिकित्सा ।

(१) जवाखार को पानी में घोलकर उससे रुई का फाहा भिगो योनि में धारण करने से मिथ्यागर्भ—रक्तगुल्म—का नाश होता है

(२) सेंहुड़ के दूध में रुई भिगोकर इसका फाहा योनि में रखने से मिथ्यागर्भ नष्ट होता है। यदि इससे जलन उत्पन्न हो तो घी लगाने से मिटजायगी।

(३) धतूरे की जड़ २माशे। सोहागा चौकिया १माशे दोनों को महीन पीस पानी में घोल कर कुछ दिन पान करने से मिथ्या गर्भ गिरजाता है।

गर्भ स्थापक योग ।

सोंठ, कालीमिर्च, पीपर और नागकेशर दो दो तोले लेकर महीन चूर्ण बनाडाले। ऋतुस्नान के अनन्तर तीन दिन प्रातःकाल नौ माशे चूर्ण गोघृत में फेंट कर सेवन करने से गर्भाधान होता है।

नागपुष्प चूर्ण ।

ऋतुधर्म प्रकट होते ही तीन मासे नागकेशर का चूर्ण गाय के घी में फेंट कर प्रातःकाल चाट लिया करे। स्नान के पीछे दो दिन सेवन करके छोड़ दे और अच्छे समय में प्रसन्न मन से पुरुष—समागम करने पर अवश्य ही गर्भ धारण होता है।

कस्तूरीवटी ॥

कस्तूरी २ रत्ती। लवङ्ग ४ रत्ती। अफीम, जायफल और केशर एक २ माशा। घुलीहुई भांग २ माशे। पुराना गुड़ ३ माशे। चिकनी सुपारी ६ माशे। सबका चूर्ण करके पानी से घोट झरबेर के बराबर गोली बनावे। ऋतुस्नान के अनन्तर तीन दिन दोनों समय एक २ गोली पानी के साथ खाने से गर्भधारण होता है। यदि प्रथम मास में सफलता नहो तो दूसरे तीसरे मासमें इसी प्रकार सेवन करना चाहिये।

समुद्रफल का प्रयोग ॥

एक समूचा समुद्र फल दही में लपेट कर ऋतुस्नान के अनन्तर निगलजाने से प्रथम समागम से गर्भ रहजाता है॥

लौकी कषाय ॥

दो तोले कद्दू की जड़ कुचल कर पाव भर गोदुग्ध में पकावे। आधा दूध जलजाने पर नीचे उतार शीतल कर के छान ले। ऋतुस्नान के अनन्तर तीन दिन प्रातःकाल इसी प्रकार पान करने से गर्भाधान होता है।

असगन्ध कषाय ॥

दो तोले असगन्ध की जड़ का क्वाथ करके उसमें आधपाव धारोष्ण गोदुग्ध और एक तोला घी मिलाकर ऋतुस्नान के अनन्तर तीन दिन सेवन करने से गर्भ रहजाता है।

सुरस पेय ।

मीठी लौकी के पके और छिले हुए बीज दो तोले पीस पाव भर गोदुग्ध में घोल कर ऋतुस्नान के अनंतर तीन दिन पान करने से निश्चय ही गर्भधारण होता है।

कण्टकारी पेय ।

पुष्य नक्षत्रमें उखाड़ीहुई श्वेत भटकैयाकी जड़ अथवा लक्ष्मणा बूटी छःमाशे पीस गाय के दूध में घोल कर ऋतु स्नान के अनन्तर तीन दिन पीने से अवश्य ही गर्भाधान होता है, किंतु इस औषधि को कुँवारी कन्या के हाथ पिसवाना चाहिये ।

बलादि पेय ।

वरियारा की जड़, मुलहठी, नागकेशर, बड़ की जटा ककही की जड़, कमल का फूल और मिश्री तीन २ माशे पावभर गाय के दूध में पीस घोल कर ऋतुस्नान के अनंतर तीन दिन पान करने से निस्सन्देह गर्भाधान होता है।

पुत्र कन्या की उत्पत्ति ।

सुश्रुतजी लिखते हैं कि—

"युग्मेषुतुपुमान्प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला,,

अर्थात सम दिन, ऋतु काल के चौथे, छठे, आठवें, और बारहवें दिन के समागम से पुत्र तथा विषम दिन, पांचवे सातवें, नवें और ग्यारहवे दिनके रतिदान से कन्या

की उत्पत्ति होती है। सम दिनों में रजकी न्यूनता रहती है इससे वीर्य की प्रधानता के कारण पुत्र और विषम दिनों में रजकी अधिकता से कन्या की उत्पत्ति होती है। रजवीर्य समान होने पर नपुन्सक सतान होती है।

पुत्र कन्या कारक योग।

(१) छः माशे पलाश का कोमल पत्र पीस दुग्ध में मिला ऋतुस्नान के अनन्तर पान करने से सुन्दर बलवान और दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न होता है।

(२) इसी प्रकार केवाँच की जड़ पान करने से पुत्र के सिवाय कन्या की उत्पत्ति नहीं होती।

(३) एक तोला कैंत के फल का गूदा गाय के दूध में घोल ऋतुस्नान के अनन्तर तीन दिन पान करने से पुत्र लाभ होता है।

(४) विजगुरिया (शिवलिंगी) के पांच फूल दूध में पीस पान करने से पुत्रोत्पत्ति होती है।

(५) छः माशे विष्णुक्रांता की जड़ पीस दूध में घोल कर ऋतुस्नान के अनंतर तीन दिन पीने से पुत्र की उत्पत्ति होती है।

(६) शुक्लपक्ष के पुष्य नक्षत्र में बड़वृक्ष की आठ कली—अत्यन्त कोमल लाल पत्ते जो खिले न हों—पानीमे महीन पीस ऋतुस्नान के अनन्तर नस्य लेने से पुत्र लाभ होता है।

(७) गुलम्ब का फूल एक माशा। गाय का घी २मा० दोनों को महीन घोट कर ऋतुस्नान के अनंतर नासिका के बायें छिद्र से नस्य लेने पर पुत्र और दाहिने छिद्र से नास लेने पर कन्या की उत्पत्ति होती है।

युग्म गर्भ का कारण।

किसी २ स्त्री के गर्भ में दो, तीन चार बालक साथ ही उत्पन्न होते हैं उनका कारण यह है कि जब गर्भाधान के समय शुक्र गर्भाशय में प्राप्त होने पर वायु के द्वारा वह दो तीन भागों में विभक्त होजाता है तब एक साथ ही दो तीन बालक उत्पन्न होते हैं।

गर्भ के लक्षण।

अनायास खेद होना, योनिका फड़कना, जंघाओं में जकड़न, उबकाई लगना, अरुचि, प्यास का लगना और मासिक धर्म का बन्द होना। दूसरे मास से चौथे मास पर्यन्त वमन की अधिकता, नेत्रों में झांप, रोमाञ्च, सुगंधित द्रव्यों से विराग और कुचोंके अग्रभाग पर श्यामता आजाती है। इन लक्षणों के प्रकट होने पर स्त्री को गर्भवती समझना चाहिये।

मास मास में गर्भ की अवस्था।

प्रथम मास में रजवीर्य मिलकर गर्भाशय में दोनों की एक पतली झिल्ली सी बनजाती है दूसरे महीने में वह कुछ गाढ़ी पिंड के आकार की होजाती है। तीसरे मास में हाथ

पांव और शिर के चिन्ह प्रकट होते हैं। चौथे मास में अङ्ग प्रत्यङ्गों के भाग पृथक २ बनजाते हैं और हृदय उत्पन्न होने से गर्भ में चेतना आती है। जब गर्भ में हृदय उत्पन्न होता है तब गर्भिणी स्त्री की संज्ञा दौहृदिनी होजाती है, क्योंकि उसके दो हृदय होते हैं, एक गर्भस्थित बालक का और दूसरा गर्भिणी का। पांचवे मास में गर्भस्थ बालक का मन चेतन्य होजाता है। छठे मांस में बालक के बल-वर्ण की अधिक वृद्धि होती है, इससे गर्भिणी के बल-वर्ण घट जाते हैं। सप्तम मास में गर्भस्थित बालक के समस्त, अङ्गों के विभाग अलग २ स्पष्ट होजाते हैं। इसके उपरांत बालक पुष्ट होता है और नवें अथवा दसवें मास में गर्भ से बाहर आता है।

गर्भवती के योग्य आहार।

गेंहूं या जौ की रोटी, पुराने चावल का भात, मूंग अरहर वा उड़द की धुली हुई दाल, गाय वा बकरी का दूध घी, मधु, मिश्री, शक्कर, पकाहुआ मीठा आम, अनार, केला कसेरू, मुनक्का और आंवला का सेवन हितकारी है। इस बात की ओर ध्यान रखना नितांत आवश्यक है कि जितना आहार सुगमता से पचजावे भोजन उतना ही करना चाहिये जिसमें अजीर्ण की शिकायत न होने पावे।

गर्भवती के वर्जित कर्म।

मैथुन, श्रम, दिन में सोना, रात्रि में अधिक जागना,

बोझ उठाना, उकुरू बैठना, ऊंचे नीचे स्थान में चढ़ना, उतरना, सवारी में चलना, भयानक स्थान में जाना, मल-मूत्र के वेग को रोकना, उपवास करना, दूर तक पैदल चलना, नदी पार होना, कूंए में झाँकना, सदा चित्त होकर न सोना चाहिये। सहिजने की फली का शाक, बाजरे की रोटी, तीव्र खटाई लालमिर्च, कड़ु तैल, खट्टा-दही, मद्य, मांस और गरिष्ठ पदार्थों का भोजन त्याग देना चाहिये, क्योंकि इससे गर्भपात होने का भय रहता है वस्ति विरेचन और वमन कारक वस्तु न खावे।

गर्भकाल में कोष्ठवद्ध।

गर्भावस्था में अन्तड़ियों आदि पर ज्यों२ बोझ पड़ता जाता है त्यों २ गर्भिणी की कोष्ठवद्धता बढ़ती जाती है। प्रायः मूत्रावरोध उत्पन्न होता है। मलमूत्र की रुकावट से बालक उत्पन्न होने का मार्ग क्रमशः संकीर्ण होता जाता है गर्भिणी स्त्री को पौष्टिक और शीघ्र पचने वाला आहार देना चाहिये। इस परभी यदि कोष्ठवद्धता उत्पन्न हो तो दो ढाई तोले गुलक़न्द को आध पाव गुलाब जल में घोल कर छानले। इसमें आधपाव गोदुग्ध मिला गरम कर के पिलाने से कब्जियत दूर होजाती है। अथवा गुलाब-जल में तुरञ्जवीन घोल कर पिलाने से लाभ होता है। मूत्रावरोध होने पर गाय के कच्चे दूध में बराबर भाग कच्चा पानी मिला कर पिलाने से लाभ होता है किंतु शीत काल में अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर दो पहर में एक बार

डिम्बग्रन्थि (रजाशय)

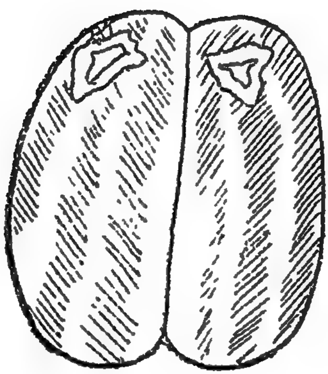

मासिकधर्म प्रारम्भ होने के नौ सप्ताह बाद का रजाशय

पिलाना पर्याप्त होगा। गर्भिणी स्त्री को जुलाब कदापि न देना चाहिये। उससे गर्भपात होजाने का डर रहता है।

दौहृदनी की इच्छा।

दौहृदनी के सम्बन्ध में सुश्रुत का मत है कि जब उसकी इच्छा की पूर्त्ति नहीं होती तब बालक कुबड़ा, पंगुल अन्धा, लुञ्ज, काना और बबना आदि दोषों से युक्त उत्पन्न होता है। गर्भिणी की इच्छा पूरी होने से सन्तान रूपवान और दीर्घजीवी पैदा होती है। इसी से गर्भिणी स्त्री की संम्भवनीय और उचित कामनाओं की पूर्त्ति करना आवश्यक कहाजाता है। गर्भिणी की इच्छा के अनुसार गर्भगत बालक के भले बुरे होने का अनुमान होता है। जैसे–गर्भिणी देवता महापुरुषों की मूर्त्ति देखने की अभिलाषा प्रकट करती हो तो जानना चाहिये कि सभ्य सन्तान उत्पन्न होगी। तीर्थ–स्थान और महात्माओं के आश्रम को देखना चाहती हो तो धर्मात्मा पुत्र पैदा होता है। राजा अथवा किसी श्रीमान् के दर्शन करना चाहे तो ऐश्वर्यवान। उत्तम वस्त्राभूषण पहिनने की इच्छा करे तो शृङ्गारप्रेमी। जङ्गली शूकर, तीतर आदि के मांस को खाने की इच्छुक हो तो उद्विग्नचित्त, डरपोक सन्तान होती है। उष्ण पदार्थ सेवन करने की कामना हो तो क्रूर स्वभाव का और खपड़ा, मिट्टी आदि खाने को उत्सुक हो तो रोगी तथा दरिद्री सन्तान होती है इसी प्रकार और भी जानना चाहिये।

गर्भपात ।

चार मास पर्यन्त गर्भ रुधिर के रूप में स्रवता है और इसके उपरांत अङ्ग कठोर होजाते हैं इससे साङ्ग गर्भपात होता है । जब गर्भपात होने वाला होता है तब आमाशय (नाभि और छाती के बीच में वह थैली जिस में भोजन किये हुये पदार्थ इकट्ठे होते और पचते हैं) तथा पक्काशय (एक छोटी सी अंतड़ी जिसमें आमाशय से अन्न का अम्ल रस पहुंचता है) में खलबली उत्पन्न होती है। पसली और पीठ में पीड़ा, अफरा, दाह मूत्रावरोध, रक्त प्रवाह और बेचैनी होती है। पूर्ण समय पर प्रसवकाल में उतना कष्ट नहीं होता जितना गर्भ पात होने से होता है। किसी २ का तो इस भीषण क्लेश से प्राणांत हो जाता है। यदि उचित सँभाल न हो सका तो ज्वरादि प्रसूत रोग उत्पन्न होकर बहुत काल तक स्त्री को रोगिणी बना प्राण के गाहक होजाते हैं ।

गर्भपात होने का कारण ।

जिस प्रकार वृक्ष में लगा हुआ कच्चा फल आघात से अथवा प्रचण्ड पवन के झकझोर से अकाल में गिर पड़ता है उसी प्रकार गर्भिणी को ज्वर, अजीर्णादि रोग के होने, गहरा धक्का लगने, परिश्रम-उपवास-अधिक मैथुन और मद्यपान करने, पेट पर चोट लगने, मलमूत्र के वेग को रोकने से, शोक-भ्रम वमन विरेचन कारक औषधियों और तीक्ष्ण, गरम, कड़ुए तथा रूखे पदार्थों के अधिक सेवन करने से गर्भपात होता है।

गर्भपात की चिकित्सा।

कमलगट्टे की गिरी, अशोक की छाल, छोटी इलायची का दाना, खस और पठानी लोध दो दो तोले। सब अध-कूट करके दस मात्रा बनावे। एक मात्रा औषधि आधसेर गाय के दूध में पकावे, जब आधा दूध जल जाय तब उसमें एक छटांक मिश्री मिला नीचे उतार शीतल होने पर मलकर छानले। थोड़ा २ आधे २ घन्टे पर तीन चार में पान करने से गिरता हुआ गर्भ थम जाता है और रक्तस्राव पीड़ा आदि उपद्रव शांत होते हैं। यदि यही औषधि पानी में पकाकर पान कराई जावे तो गर्भपात होजाता है।

निस्तुषादि चूर्ण।

भूसी रहित जौ धान्य, कालातिल और मिश्री पाँच २ तोले लेकर कपड़छन चूर्ण बनाले। पाँच २ मिनट के अन्तर से छःछ मासे चूर्ण मधुके साथ तीन चार बार खिलानेसे होता हुआ गर्भपात रुक जाताहै।

मुस्तादिकषाय।

नागर मोथा, सुगन्धवाला, अतीस, इन्द्रयव और मोचरस एक २ तोला लेकर अधकुट करके चार मात्रा बनावे इसका क्वाथ शीतल मिश्री मिलाकर पीने से गर्भपात के समय का रक्तप्रवाह उदर पीड़ा आदि उपद्रव तुरन्त मिटता है और गिरता हुआ गर्भ बच जाता है। गर्भ रक्षा में कहा हुआ अश्वगन्धादि स्वरस और पद्माकादि पेय गर्भपात को रोकने में अपूर्व गुणकारी पाया गया है।

गर्भविलास तैल ।

विदारीकन्द, अनार की पत्ती, हल्दी, हड़, बहेड़ा, आंवला, सिंघाड़े की पत्ती, चमेली का फूल, शतग्वर और और श्यामकमल दो दो तोले । काले तिल का तैल और गाय का दूध एक एक सेर । सब औषधियों को कूट दूध के साथ महीनपीस तैल में मिलाकर पकावे और सिद्ध होजाने पर छानले । इस तैल का शरीर पर मर्दन कराने से गर्भपात जनित उपद्रव नष्ट होकर गर्भ गिरने से बच जाता है । गर्भिणी स्त्री को प्रति दिन इसका मर्दन कराने से गर्भपात नहीं होता । जिन स्त्रियों को प्रायः गर्भपात होजाता है उन्हें सदा इस तैल का सेवन कराना चाहिये ।

गर्भरक्षा ।

गर्भिणी स्त्री की रक्षा से गर्भस्थित बालक की रक्षा होती है; क्यों कि गर्भिणी के जिस २ अङ्ग में वातादि दोष से अथवा चोट आदि के लगने से पीड़ा होती है, गर्भगत बालक के उसी २ अङ्ग में वेदना उत्पन्न होती है इसलिये गर्भिणी की रक्षा करना ही गर्भरक्षा का मूल कारण है । गर्भाधान के अनन्तर लक्ष्मणा, वड़वृक्ष को कोमल जटा और सहदेवी को दूध के साथ महीन पीस वस्त्र से स्वरस निचोड़ कर नस्य लेना अत्यन्त आवश्यक और लाभकारी है । यदि स्त्री पुत्र की इच्छा रखती हो तो नासिका के दाहिने छिद्र से और कन्या की चाह हो तो बायें छिद्र से नस्य लेना चाहिये; किंतु नस्य लेने पर थूके

नहीं। प्रथम मासमें तीन दिन इसी प्रकार नस्य लेनेसे गर्भपात की आशङ्का मिटजाती है और इच्छित सन्तानउत्पन्न होती हैं।

अश्वगन्धादि स्वरस।

असगंध और श्वेतफूल की भटकैया दोनों की जड़ का स्वरस एक २ तोला निकाल कर प्रथम मास से पाँचवे मास पर्यन्त प्रतिदिन प्रातःकाल पान करके छोड़ दे तो अकाल में गर्भपात नहीं होता और गर्भपात के समय सेवन करने से गिरता हुआ गर्भ थम जाता है।

पद्माकादि पेय।

छिलका रहित पद्माक की मोटी लकड़ी चन्दन के समान चिकने पत्थर पर पानी से घिस कर लग भग २॥ माशे उतारले। उसको आधपाव गोदुग्ध में एक तोला मिश्री के साथ घोलकर पीजावे। इसी प्रकार प्रथम मास से अष्टम मास पर्यन्त सेवन करके छोड़ दे। इससे अकाल में कदापि गर्भपात नहीं होता और बालक गर्भमें पुष्ट होकर समयपर सुख प्रसव होताहै गर्भपात के समय पांच २ मिनटके अंतरपर तीन चार बार पिलाने से होता हुआ गर्भपात रुकजाता है। गरम ऋतुओं में एक माशा छोटी इलायची का दाना और दो माशे कमलगट्टे की गिरी मिलाकर इस पेयको पान कराना अधिक लाभ दायक होता है।

मुक्तादिवटी।

अनविंधे मोती, जहरमोहरा खताई, (दोनों अर्क गुलाब

में घोट कर शुद्ध किये हुये) दरियाई नारियल, मोती सीप की भस्म और मूंगाभस्म छः छः माशे। सोने का वरक ४ ताव। गङ्गाजल के साथ एकघड़ी घोट कर चना के समान गोली बनावे। गर्भधारण होने पर प्रथम मास से दूसरेमास पर्यन्त प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाकर ऊपर से धारोष्ण गोदुग्ध पान करने से गर्भपुष्ट होता है और अकाल में गर्भपात नहीं होता। रूपवान और दीर्घजीवी बालक उत्पन्न होता है। यदि आठवें मास तक इन गोलियों का सेवन कराया जावे तो अधिक श्रेष्ठ है।

सहचरादि चूर्ण।

पीली कटसरैया की जड़, सरिवन, पिठवन, भटकैया बनभाटा, सोंठ, गुर्च, सुगन्ध वाला, छोटी इलायची, नागर मोथा और बड़ा गोखुरू दो दो तोले लेकर महीन चूर्ण बना डाले। गर्भाधान के अनन्तर दो दो माशे चूर्ण प्रति दिन प्रातःकाल बकरी के दूध से आठवें मास पर्यन्त सेवन करने से गर्भपुष्ट होता है और अकाल में गर्भपात होने का डर नहीं रहता। समय पर सुन्दर दीर्घजीवी बालक उत्पन्न होता है।

गर्भिणी के रोग।

जब गर्भिणी स्त्री को ज्वर, खांसी और संग्रहणी आदि रोग होजाते हैं तब उसकी चिकित्सा बहुत सावधानी से करानी चाहिये क्योंकि ज़रा सी चूक होजाने पर गर्भिणी और गर्भ दोनों के नष्ट होजाने की सम्भावना रहती है।

अनुभवी सद्वैद्यों के अतिरिक्त गर्भिणी स्त्री के रोगों की चिकित्सा वैद्यनामधारी बाज़ारू विज्ञापनबाज़ों और अर्थलोलुपों से कदापि न करानी चाहिये।

गर्भिणी की वमन।

गर्भाधान होने पर अधिकांश स्त्रियों को वमन होती है, भोजन उदर में टिकता नहीं, बाहर निकल जाता है। यह कोई रोग नहीं वरन् प्रकृति का नियम है। प्रायः छटे मास तक वमन का उपद्रव रहकर स्वयम् मिटजाता है और उससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती। विशेष उपायों से वमन रोकना गर्भिणी और गर्भ दोनों के लिये हानिकर है, अतः केवल खाने पीने के पदार्थों में उलटफेर करना श्रेष्ठ है। ऐसा आहार करना चाहिये जिसमें शीघ्र पचजावे। यदि वमन का उपद्रव अधिक हो और गर्भिणी की दुर्बलता बढ़ती जारही होतो प्रातःकाल गाय का गुनगुना दूध पान कराने से वमन शांत होजाती है।

गर्भिणी के ज्वर की चिकित्सा।

(१)मुलहठी, लालचन्दन, खस, सरिवन और कमलपत्र दो २ तोले अधकुट करके आठ मात्रा बनावे। क्वाथ बनाकर एक २ तोला मधु और मिश्री मिला दोनों समय पान कराने से गर्भिणी का ज्वर शांत होता है।

(२) सरिवन, मुनक्का, लालचन्दन, लोध और मिश्री दोदो तोले लेकर पूर्वोक्त प्रकार क्वाथ तैयार कर पिलाने से

ज्वर दूर होता है।

(३) रेंड़ी की जड़, गुर्च, मजीठ, लालचन्दन, देवदार और दाख दो दो तोले। अधकुट्ट करके दस मात्रा बनावे। इसके काढ़ा में मधु मिला दोनों समय सेवन करानेसे गर्भिणी का ज्वर आराम होता है।

(४) सरिवन, पिठवन, वनभांटा, की जड़, भटकैया का मूल और बड़ा गोखुरू के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से गर्भिणी के ज्वर का शमन होता है।

(५) चार माशे सोंठ का चूर्ण खाकर ऊपर से बकरी का दूध पान करने से गर्भिणी स्त्री का विषमज्वर दूर होता है।

गर्भिणी की खांसी।

लवङ्ग, चौकिया सोहागा, नागर मोथा, धवपुष्प, बेल की गिरी, धनियां, जायफल, धूप, अनार की छाल, श्वेतजीरा सेंधानोन, मोचरस, श्याम कमल, रसवत, मजीठ, लालचन्दन सोंठ, अतीस, ककरासिंगी, खैरवृक्ष की छाल, सुगन्धबाला, वङ्गभस्म, और अभ्रकभस्म एक २ तोला। सब का कपड़छन चूर्ण करके भंगरैया के रस की तीन भावना दे। सुखा कर पुनः वस्त्र से छान ले। मधुके साथ एक माशे चूर्ण चाट कर ऊपर से बकरी का गुनगुना दूध पान करे। इसी प्रकार दिन में दो अथवा तीन वार सेवन करने से गर्भिणी स्त्री की खांसी, श्वास और कफ सम्बन्धी रोग शीघ्र दूर होजाते हैं संग्रहणी में भी इससे लाभ होता है।

गर्भिणी की ग्रहणी ।

(१) आम और जामुन की छाल, तीन-२ तोले कुचल कर तीन पाव पानी में पकावे, जब पावभर जल रहजाय तब नीचे उतार कर छान ले। शीतल होजाने पर धान के लावा का सत्त् इसी काढ़े से सान कर खिलावें तो गर्भिणी स्त्री की को पेचिश, आंव पड़ना दूर होता है।

(२) सुगन्धवाला लालचंदन, धनियां, मुर्वा, नागर मोथा, अतीस, खस, यवासा, पित्तपापड़ा, बरियारा की जड़ और सोना पाठा की छाल दो दो तोले लेकर अधकुट करके बारह मात्रा बनावे। दोनों समय इसका काढ़ा मधु मिलाकर पान कराने से गर्भिणी स्त्री की ग्रहणी, सग्रहणी, अतिसार, खांसी और ज्वरादि रोग आराम होते हैं।

शान्तिदायकपेय ।

बादाम का तेल ६माशे। पुराना गुड़ १ तोला । गाय का दूध एक पाव। तीनों को घोलकर प्रति दिन अथवा एक दिन के अनन्तर से गर्भिणी स्त्री को छटे मास से प्रसव-काल पर्यन्त पिलाते रहने से उसको कोई रोग नहीं होता और समय पर सुख-पूर्वक प्रसव होता है।

विस्फोटक से बचाव ।

पांच माशे रसवत थोड़े जल में घोलकर गर्भिणी स्त्री को इक्कीस दिन तक पान कराने से गर्भगत बालक को कभी शीतला (चेचक) रोग नहीं होता।

प्रसूतागार ।

प्रसूतगृह बहुत स्वच्छ होना चाहिये और उसमें खिड़कियों का रहना अत्यन्त आवश्यक है जिससे बाहिरी पवन सरलता से आजा सके। प्रसूतागार कम से कम सात हाथ लम्बा और पांच हाथ चौड़ा होना चाहिए, उसकी दीवार चूने से पुती हुई और धरती गोबर से लिपी सूखी रहना आवश्यक है। कूड़ा कर्कट वा सड़ी गली वस्तु उसके आस पास न रहे और उस मकान में एक पलङ्ग जिस पर स्वच्छ नरम श्वेत बिछावन बिछा हो तथा प्रसव काल के समय जिन २ वस्तुओं की आवश्यकता होती है उन सबों को पहले ही से प्रस्तुत रखनी चाहिये । देहातों में प्रायः सूतिका भवन अत्यन्त निकम्मा, मकड़ी झाले से युक्त और बन्द निर्माण किया जाता है जो देखने से भयोत्पादक होता है। बालक और प्रसूता स्त्री के स्वास्थ्य पर उससे गहरा धक्का लगता है जिससे कितने ही बालक तो सौरीगृह में ही रोग ग्रस्त होकर मृतक होजाते हैं। प्रसूता स्त्री भी अनेक प्रकार के रोगों का शिकार बनाती है और असावधानी होने पर उसके भी प्राण पखेरू कूँच कर जाते हैं।

दाया ।

धाय का वस्त्र और शरीर स्वच्छ रहना नितांत आवश्यक है। प्रसव कराने की अच्छी योग्यता रखती हो ऐसी दाई को प्रसवकार्य के लिये बुलाना चाहिये। दाया के

अतिरिक्त प्रसूता के भवन में दो वयोवृद्ध और दक्ष स्त्रियों का रहना पर्याप्त है। अधिक भीड़ भाड़ होना अच्छा नहीं, क्योंकि बहुत सी नासमझ स्त्रियां इकट्ठी होकर व्यर्थ का कोलाहल प्रसवनी के सामने करके उसे भयभीत करती हैं। जिससे प्रसूता को बेचैनी होती है और बालक उत्पन्न होने में बाधा पड़ती है।

प्रसवकाल ।

सुश्रुतादि आर्षग्रंथों में नवम् से द्वादश मास पर्यन्त प्रसव का समय कहागया है किंतु विशेषतः बालक उत्पन्न होने की अवधि २८० दिन अर्थात् नौ महीना दसदिन की है। इससे अधिक समय व्यतीत होजाने पर यदि प्रसव के लक्षण न प्रकट हों तो कारणवश रुकावट समझना चाहिये। प्रकृति से नियमानुसार प्रसव की पीड़ा बारह घड़ी के पहले आरम्भ होती है। उसमें पूर्व के छः घण्टों में थोड़ी २ पीड़ा होती है और पीछे के छः घण्टों में ज़ोरों का दर्द होताहै जितना कष्ट प्रथम बार के प्रसव में होता है उतना दूसरी तीसरी बार में नहीं होता। बालक उत्पन्न होने के समय गर्भाशय का मुख खुलजाता है और शरीर की नसें ढीली पड़ जाती हैं; परंतु प्रसव के अनन्तर धीरे२ गर्भाशय सिकुड़ कर अपनी पूर्वावस्था पर आजाता है। ज्यों २ गर्भाशय सिकुड़ता है त्यों २ पेट में कई दिन तक पीड़ा हुआ करती है। उस समय आहार विहार में थोड़ी भी असावधानी होने से प्रसूतज्वर उत्पन्न होजाता है।

प्रसव कारक प्रयोग।

जब प्रसव की पीड़ा उत्पन्न हो, किंतु बालक शीघ्र न पैदा हो तब निम्नलिखित योगों का प्रयोग करने से शीघ्र प्रसव होता है। इनमें कुछ अनुभूत सिद्ध योग ऐसे भी हैं कि जिनका प्रयोग होने से साधारण प्रसव की तो बात ही क्या? मूढ़गर्भ के बाहर आने में देरी नहीं लगती।

(१) कलिहारी को पानी से महीन पीस हाथ पांव के तलुवों पर लेप करने से तुरन्त बालक उत्पन्न होता है। इससे मूढ़गर्भ भी बाहर आजाता है। प्रसव होजाने के बाद ही लेप छुड़ा देना चाहिये, नहीं तो गर्भाशय बाहर निकल आने की आशङ्का रहती है।

(२) अपामार्ग की जड़ पानी से महीन पीस नाभि के नीचे, जंघाओं पर लेप कर देने से तथा योनि के आस पास प्रलेप होने से शीघ्र प्रसव होता है बालक उत्पन्न हो जाने पर इस लेप को तुरंत छुड़ा देना चाहिये।

(३) पोई की जड़ पानी से महीन पीस उसमें तिल का तैल मिला कर योनि के भीतर लेप करने से शीघ्र ही सुख से प्रसव होता है।

(४) पीपरि और बच समान भाग पानी से पीस उस में थोड़ा रेंड़ी का तैल मिला गरमा कर नाभि के चारो ओर लेप करने से प्रसव की पीड़ा नष्ट होती है और शीघ्रबालक उत्पन्न होजाता है।

(५) पञ्चांग सहित अपामार्ग उखाड़ लावे। प्रसूता के सामने दूसरी स्त्री हाथमें लेकर दिखाती रहे तो प्रसव शीघ्र होता है।

(६) ताड़वृक्ष के उत्तर दिशा की जड़ खोद लावे। स्त्री की लम्बाई के बराबर कच्चे सूत से बांध कर प्रसूता की कमर में बांधने से सुख पूर्वक तत्काल प्रसव होता है।

(७) काकजंघा की जड़ कमर में बांधने से तुरन्त प्रसव होता है।

(८) मदार की जड़ को पांच संख्या मदार ही के पत्तों से लपेट कर प्रसूता के शिर के बालों में बांधदे तो तत्क्षण बालक उत्पन्न होता है, किंतु बालकोत्पत्ति के अनन्तर इसको तुरन्त खोलकर फेंक देना चाहिये।

(९) ऊख की जड़ कच्चे सूत द्वारा कमर में बाँधने से शीघ्र प्रसव होता है।

(१०) मैनफल और सांप की कैंचुली कूटकर कण्डे की निर्धूम अग्नि में डाल जननेन्द्रिय मे धूनी देने से शीघ्र ही बालकउत्पन्न होता है।

(११) सांप की कैंचुली १ तोला। घोड़ा वा गदहा का सुम (नाखून) ४तोला। दोनों को कूट कर कड़े की निर्धूम अग्नि पर डाल योनि में धूनी देने से तुरन्त बालक उत्पन्न होता है।

(१२) प्रसववेदना उत्पन्न होनेपर जिस घर में प्रसूता का निवास हो उसकी छत पर मृतक गाय के शिर की सूखी हड्डी रख देने से बिना कष्ट के तुरंत प्रसव होता है।

प्रसवकारी यंत्र ।

चतस्रः पूर्विकारेखाश्चतस्रश्चोत्तरायता ः ।
एवं नवगृहे कोष्ठे मानुं बाणं दिशं स्त्रस्म ॥१॥
ग्रहं रुद्रं वसुं विश्वं रसं शुभ्रमृदा लिखेत् ।
वंशजे व्यजने तत्र गर्भिणीमुपवेशयेत् ॥२॥
सद्यः सूते सुखं नारी नात्र कार्य विचारणा ।

१२	५	१०
७	६	१६
८	१३	६

उपर्युक्त यंत्र को बांस के नवीन पंखेपर खड़िया मिट्टी से लिखकर प्रसूता स्त्रीको उसपर बैठानेसे तत्काल सुख-पूर्वक प्रसव होता है यदि समय पर खड़िया मट्टी न मिल सके तो कोई भी स्वच्छ श्वेत मट्टी से काम चल सकता है ।

अन्ययन्त्र ।

समुद्रस्योत्तरितीरे

९	१६	५	४
७	२	११	१४
१२	१३	८	१
६	३	१०	१५

अक्षमला नाम राक्षसी

तस्याःस्मरणमात्रेण

प्रसूताभवति गर्भिणी ॥

अनार की लेखनी से रक्तचन्दन द्वारा भोजपत्र पर इस यन्त्र को लिख कर गर्भिणी स्त्री को दिखाते रहने से प्रसव होता है।

मूढ़गर्भ ।

जब पवन गर्भ को टेढ़ा कर देता है तब वह योनि मार्ग में आकर अड़जाता है। उस समय योनि, पेट और सर्वाङ्ग में दुस्सह पीड़ा होती है तथा मूत्रावरोध भी हो जाता है। वक्र होने के कारण बालक बाहर नहीं निकलता उसको मूढ़गर्भ कहते हैं। इसको कोई चार प्रकार का

और कोई आचार्य आठ प्रकारका कहते हैं, किंतु इस संख्या का कुछ ठीक नियम नहीं है। किसी का हाथ, किसी का पांव और किसी गर्भ का मस्तक योनि में अटक जाता है। किसी के दोनों हाथ या दोनों पांव बाहर होकर धड़ भीतर रहता है। किसी के शिर-हाथ निकल कर शेष भाग बाहर नहीं आता और किसी का मस्तक ही योनि द्वार पर रुक जाता है। मूढ़ गर्भ में इस प्रकार की जितनी रुकावटें होती हैं उनके भिन्न२ नाम गिनाये गये हैं।

मूढ़गर्भ की असाध्यता।

जिस स्त्री का शरीर काला वा पीला पड़ जाता है और सर्वाङ्ग की नसें नीले रङ्ग की उमड़ आती हैं तथा लज्जा छूट जाती है। गर्भ में बालक मृतक होकर सूजजाता है और उससे शूल उत्पन्न होता है। खांसी, श्वास और वात दोष आदि उपद्रवों से युक्त मूढ़गर्भ वाली स्त्री प्रायःमरजाती है।

मूढ़गर्भ की चिकित्सा।

जब प्रसवकारक प्रयोगों से सफलता होती न दिखाई दे तब मूढ़गर्भ को हाथ से बाहर निकालने का प्रयत्न करना आवश्यक है। परन्तु इस कार्य के लिये दाई बहुत ही होशियार होनी चाहिये जिसने अनेक स्त्रियों का प्रसव कराया हो। पूर्ण अनुभवी, यशस्विनी और क्रियाकुशल हो। यदि गर्भस्थित बालक जीवित हो तो हाथ में घी चुपड़ कर धीरे २ योनि के भीतर प्रवेश करके गर्भ को सीधा कर बाहर निकाल ले। गर्भगत बालक मर गया हो तो चतुराई से योनि

में शस्त्र डाल कर मृत वालक के एक २ अङ्ग को काट काट कर वाहर निकालती जावे। गर्भ जीवित है अथवा मृतक इस वात की भली भाँति परीक्षा करके तभी शस्त्रप्रयोग करना चाहिये। क्योंकि जीवित वालक पर शस्त्रप्रयोग करने से उसका तो प्राणांत हो ही जायगा, साथ ही गर्भिणी भी परलोकगामिनी होगी।

क्षतनिवारण।

मूढ़गर्भ के निकालने पर योनि को क्षत रहित करने के लिये तितलौकी का पत्ता और लोध वरावर भाग पानी से महीन पीस गरमाकर लेप करने से घाव वहुत शीघ्र सूख जाता है। अथवा पसरवन्दा और गूलर के कच्चे फल का पूर्वोक्त रीति से लेप करने पर तुरन्त क्षत निवारण होता है।

मक्कल रोग।

प्रसव के अनन्तर जव गर्भाशय के भीतर आंवल का कुछ अंश रहजाता है, उस आलाइश के कारण गर्भाशय में शोथ अथवा घाव उत्पन्न होता है किम्वा वात द्वारा सूखकर रुधिर स्राव सर्वथा वन्द होजाता है तव नाभि के नीचे, पसलियों में और आमाशय के ऊपर ग्रंथि सी पड़जाती हैं। उससे पेट फूल आता है, नाभि मूत्राशय आदि में पीड़ा होती है उसको मक्कल रोग कहते हैं।

मक्कलकी चिकित्सा।

एक मासा जवाखार का चूर्ण पानी अथवा घी के साथ

सेवन करने से मक्कल्ल रोग में लाभ होता है और गोमूत्र, माठा, सिरका, तीनों समान भाग मिला उसमें थोड़ा जवाखार डाल कर पिचकारी द्वारा योनि को धोने से मक्कल्ल नष्ट होता है। त्रिफला के क्वाथ से धोना लाभकारी है।

मक्कल्ल प्रहार।

सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची, नागकेशर और धनियां एक २ तोला, पुराना गुड़ ६ तोले। सब महीन कूट कर एक २ तोला दोनों समय गोदुग्ध के साथ सेवन कराने से मक्कल्ल निर्मूल होता है।

पिप्पलादि कषाय।

पीपर, गजपीपर, पिपरामूल, कालीमिर्च, सोंठ, चीता, चाव, रेणुका, बड़ीइलायची, अजमोद, हींग, सरसों भारङ्गी, पाढ़ी, इन्द्रयव, श्वेतजीरा, मुर्वा, अतीस, कुटकी, वायविडङ्ग और बकाइन की छाल दो दो तोले लेकर अधकुट करके एक एक तोले की मात्रा बनावे। इसके क्वाथ में एक माशे सेंधानोंन मिलाकर पी जावे। इसी प्रकार दोनों समय पान करने से प्रसूता स्त्री का मक्कल्ल, अफरा, गुल्म, शूल, मन्दाग्नि, खांसी, ज्वर, शोथ, उदरवृद्धि और वात कफ से उत्पन्न समस्त रोग इस काढ़े के प्रभाव से थोड़े ही समय में निर्मूल हो जाते हैं। तीन माशे पीपरामूल का चूर्ण पांच तोले दही के साथ इक्कीस दिन सेवन करने से प्रसूता स्त्री की उदरवृद्धि दूर होजाती है।

अधिक रक्त प्रवाह ।

बालकोत्पत्ति के अनन्तर आँवल भीतर रहने अथवा बाहर निकल जाने पर जब रुधिर अधिक प्रमाण में निकलता है तब प्रसूता स्त्री को मूर्च्छा उत्पन्न होती है और श्वास मुख से लेने लगती है। शरीर पीला पड़जाता है, वेदना में बेचैनी बढ़जाती है और प्राणांत होजाने का डर रहता है; उस समय दाई को चाहिये कि एक हाथ प्रसूता के पेट पर रक्खे और दूसरे हाथ से धीरे २ जननेंद्रिय को दबाती जावे तो वह सिकुड़ती जायगी तथा थोड़ी देर में रक्तप्रवाह बन्द होजायगा। अथवा गूलर के पत्तों के रस से रुई भिगोकर योनि में रख दे या शराब में अफीम घोटकर इसका फाहा रखने से रुधिरस्राव बन्द होजाता है। यदि प्रसूता अधिक शिथिल हो तो एक रत्ती मकरध्वज मधु से चटाकर तीन चार मुनक्का खिलादेने से शरीर में गरमी आजायगी और निर्बलता मूर्छा सब दूर होकर वह स्वस्थ दिखाई देगी।

आंवल अवरोध।

बालक उत्पन्न होने पर अधिक से अधिक आधी घड़ी पर्यन्त आँवल (खेंड़ी) की प्रतीक्षा करनी चाहिये, यदि वह स्वयम् बाहर न निकल आवे तब उसको निकालने का प्रयत्न करना आवश्यक है। बालक का प्राण आँवल के सहारे रहता है यदि वह विलम्ब तक गर्भाशय में लगी रह गयी तो प्रसूता का पेट फूल आता है और नाना प्रकार

के उपद्रव उठखड़े होते हैं जिससे उसकी मृत्यु होसकती है। प्रसूता के विना बालक का जीवित रहना असम्भव होजायगा। आंवल गर्भाशय के ऊपरी भाग में लगी रहती हैं और बालकोत्पत्ति के पीछे स्वतः थोड़ी देर में बाहर आजाती है। नियत काल से अधिक समय बीतने पर कारण-वश उसका अवरोध, अनुमान प्रसव कारक प्रयोग में तथा निम्न लिखित योगों का प्रयोग करना चाहिये। कदाचित् इन प्रयोगों से आंवल न गिरजावे तो दाई योनि में हाथ डाल कर आंवल को बाहर निकाल ले किंतु जोरावरी से उसको न खींचना चाहिये। ऊपर कह आये हैं कि आंवल गर्भाशय के ऊपरी भाग में रहती है, यदि जोरावरी से खींची जायगी तो उसका कुछ अंश (अलाइश) गर्भाशय में रहजावेगा और वह प्रसूता स्त्री की मृत्यु का कारण होगा इस लिये उसको धीरे २ गर्भाशय से छुड़ाकर हाथ से चारों ओर हिलाकर जिस में उसका अंश भीतर छूटने न पावे बाहर निकालना चाहिये। प्रकृति के नियमानुसार बालकोत्पत्ति के दस पन्द्रह मिनट पीछे प्रसूता के पेट में पीड़ा उठती है और आंवल गर्भाशय से छूट कर बाहर आजाती है। कभी २ वह गर्भाशय से निकल कर योनि के मुख पर आकर रुकती है उस दशा में हाथ से सरलतापूर्वक बाहर निकाल ली जाती है।

(१) साँप की केंचुली, सरसों, तितलौकी के बीज और तिक्त नेनुआँ के बीजों को बराबर भाग कूटकर उसमें

थोड़ा कडुवातैल मसल कर निर्धूम अग्नि पर डाल योनि में धूनी देने से आँवल तुरन्त गिरजाती है।

(२) तर्जनी उँगली में बाल लपेट कर उससे प्रसूता स्त्री के गले के भीतर धीरे धीरे रगड़ना चाहिये जिस में उबकाई आवे तो जोर पड़ने से आंवल तुरन्त बाहर निकल आयेगी।

(३) अचीते में कान के पास बन्दूक का शब्द करने से आंवल बाहर आजाती है।

नालछेदन।

वर्तमान समय में नाल काटने के समय कुछभी ध्यान नहीं दिया जाता हालाँ कि यह समय बहुत ही नाजुक और जीवन, मरण का होता है और अनेक समय नाल काटने की असावधानी से बच्चा और जच्चा तक मरते देखे गये हैं क्योंकि नाल काटने वाली स्त्री प्रायः अशिक्षित होती हैं और प्रायः देखा गया है कि नाल काटने को वृद्धास्त्री ही अधिक पसन्द कीजाती हैं और कहाजाता है कि इनको अनुभव अधिक होता है। यह हम मानते हैं कि जिन्हों ने यह कार्य अधिक किया होगा वह होशियार होंगी किंतु जब उनका हाथ कांपता है तब यह होशियार किस काम आसकती है तथा उन के हाथ के कांपने से नालस्थान भ्रष्ट होकर कटगया तब जच्चा और बच्चा

किस प्रकार जीवित रह सकते हैं। यही दृश्य दिखाने को हम १ चित्र भी पाठकों के सन्मुख रखते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वह शिक्षित और अनुभवी स्त्री से यह कार्य लें या उन्हें निम्न लिखित बातें समझादें जिससे अनर्थ न होसके

नालछेदन विधि—बालक उत्पन्न होने के अनन्तर पंद्रह बीस मिनट तक आंवल के निकलने की प्रतीक्षा करे, जब वह बाहर आजाय तब नाल छेदन करना उत्तम है। यदि आंवल के निकलने में विलम्ब हो तो नालछेदन में देरी न करना चाहिये। हमारे प्रांत की स्त्रियां कहा करती हैं कि आंवल उदर में रहते नाल काटदेने से प्रसूता के प्राणों का भय रहता है, किंतु इससे कुछ डर की बात नहीं है। असावधानी से चूक होजाने पर प्रसूता और बालक दोनों को हानि पहुंच सकती है इसलिये नालछेदन में सावधानी की बड़ी आवश्यकता रहती है। बालक की नाभि से तीन अंगुल ऊपर नाल को मजबूत सूत अथवा फीता से दृढ़ बांधदे और उससे एक अङ्गुल आगे प्रसूता की ओर उसी प्रकार दूसरा बन्धन लगा दोनों बन्धनों के बीच में तेज कैंची से नाल को काट देना चाहिये। इससे बालक और प्रसूता स्त्री दोनों में से किसी की ओर अधिक रक्त प्रवाह न हो सकेगा, क्योंकि अधिक रक्त प्रवाह ही दोनों के लिये हानिकारक है। आँवल के भीतर रहते नालछेदन करने में दूसरी शङ्का इस बात की रहती है यदि प्रसूता के गर्भ में दूसरा बालक होगा तो रक्तप्रवाह से उसकी भीतर ही मृत्यु होजायगी क्यों कि प्रथम बालक उत्पन्न होके

के घड़ी आधी घड़ी के पीछे दूसरा वालक उत्पन्न होताहै ऐसी दशा में प्रसूता की ओर नाल में विना वन्धन लगाये उसका छेदन करना हानि कारक है। नाल छेदन के पूर्व इस वात पर ध्यान रखना परमावश्यक है कि यदि उत्पन्न वालक अधिक दुर्वल (कमजोर) हों तो बाँये हाथ से नाल को योनि के पास थाम कर दाहिने हाथ से नाल को धीरे २ दुहताहुआ वालककी नाभि तकपहुंचाकर वन्धनलगानाचाहिये इससे प्रसूता स्त्री का रक्त वालक की नाभि में आजायगा और उसकी खिन्नता घटजावेगी। यदि वालक उत्पन्न होनेपर आंवल स्वतः वाहर निकल आवे और तव नालछेदन किया जाय तो दो वन्धन नाल में लगाने को कोई आवश्यकता नहीं रहती केवल एक वन्धन वालककी नाभि के ऊपर लगा नाल छेदन करना चाहिये। कटेहुये नाल पर घी में हल्दी घोट कर दिन में तीन चार वार लगाते रहने से वह पकता नहीं और न पीड़ा करता है, शीघ्र ही सूखजाता है।

उत्पन्न बालक का श्वास।

सद्योत्पन्न वालक के मुख में कफ प्रभृति विकार भरा रहता है जिससे वह श्वास नहीं ले सकता, अतः जन्मते ही तर्जनी उँगली में स्वच्छ वस्त्र लपेट कर वालक के मुख में डाल धीरे २ जीभ तालु कण्ठ साफ कर दो तो वालक तुरंत रोने लगेगा और श्वाव लेने लग जायगा। यदि इस क्रिया से लाभ न हो तो निम्न उपायों को काम में लाना चाहिये।

(१) पीपर १ रत्ती। सेंधानोन और मधु एक २ माशे घोट कर उंगली से बालक के मुख में लगा देने से वह श्वास लेने लगता है।

(२) जन्म लेते ही बालक को मुलायम कम्बल में लपेट थोड़ी देर इधर उधर हिलाने से वह श्वास लेने लगता है।

(३) बालक के मुख में जोर से फूंक देने पर उसकी नालिका खुल जाती है और श्वास आने लगता है।

(४) एक सरसों बराबर सेंधानोन तनिक घी के साथ फेंट बालक के मुख में कण्ठ तक उंगली से धीरे २ लगाने से कण्ठ साफ होकर छींक आवेगी और श्वास आने लगेगा।

(५) सरसों बराबर नौसादर थोड़े गोदुग्ध में मिला कर उत्पन्न बालक को तीन चार दिन पिला देने से जमुआ आदि रोग होने का भय नहीं रहता।

बालक का स्नान और रक्षा।

जब गर्भ से बालक बाहर निकलता है तब बाहिरी वायु के लगने से उसके शरीर की ऊष्मा घट जाती है और ऊष्मा के घटने से वातजन्य रोगों के उत्पन्न होने का डर रहता है। इस लिये गर्भ से बाहर होते ही बालक को साफ वस्त्र में लपेट देना चाहिए जिस से शरीर की गरमी बाहर न होने पावे। स्वच्छ रुई गरम पानी में भिगोकर बालक के [illegible] को पोंछ दे और मधु

मानव-अण्ड ।

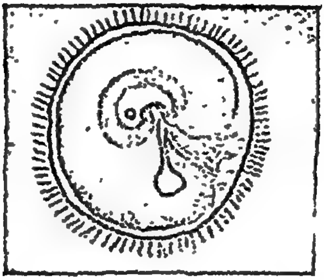

प्रथम मास के अन्त में भ्रूण की दशा

मानव-अण्ड

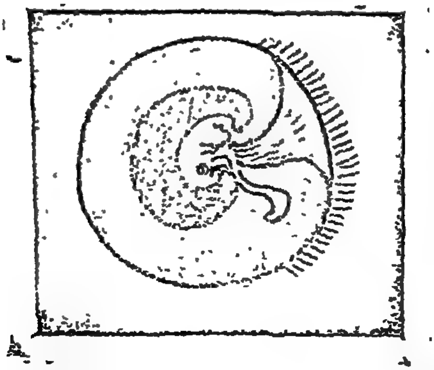

तीसरे महीने के अन्त में भ्रूण की दशा

घृत-ग्राही उंगली से मुख के भीतर लगा कर सुलादेना चाहिए। थोड़ी देर निद्रित होने से शीत का भय जाता रहेगा और गर्भत्रास का कष्ट दूर होजायगा। फिर घुटनों पर लिटाकर समस्त शरीर में धीरे २ तेल का मर्दन करके बराबर भाग दूध पानी मिले गुनगुने जल से बालक को स्नान करावे, किंतु नाभि न भीगने पावे नहीं तो पक जावेगी स्नान के अनन्तर वस्त्र से पोंछ कर प्रसूता का स्तन गरम पानी से धोकर और थोड़ा दूध गार कर बाहर निकाल फिर बालक को स्तन में लगा दुग्ध पान करावे। यह दूध बालक को घुटी का काम देता है तीन चार घड़ी बाद बालक को दस्त लाता है। बालक उत्पन्न होने पर तीन चार दिन प्रसूता के स्तन में दूध नहीं उतरता, ऐसी अवस्था में रुई के फाहा से चतुर दाई थोड़ा २ गाय का दूध बालक को पान करावे। घी में थोड़ी हींग पकाकर उसी को छः दिन तक बालक के शरीर पर लगावे फिर तैल का मर्दन करना हितकारी है।

बालक की रक्षा के लिये सूतिकागृह के द्वार पर बेल बबूर, खैर, बेर सेंहुड़, आदि की टहनी टांगदे। और धरती पर चावल छिड़क देना चाहिये। राई, नोन और चोकर में घी मिला थोड़ी २ देर पर प्रसूता के घर में अग्नि पर डाल हवन करना उपयोगी है। सौरीगृह के द्वार पर एक लोह-दण्ड बारह दिन तक रखना आवश्यक है। बच, कुट, हींग सरसों, राई, हल्दी, नोन प्याज आदि की पोटली सूतिकागार के उत्तर भाग में लटका दे। अथवा प्रसूता के पलङ्ग में

बांध रक्खे। बारह दिन तक बालक और सूतिका की रक्षा के निमित्त सुहृद्गणों को रात्रि में जागरण, मङ्गलगान, स्तोत्र पाठ तथा मधुर बाजे आदि बजाना चाहिये।

प्रसूता को जल।

प्रसव के अनन्तर प्यास लगने पर प्रसूता स्त्री को शीतल जल कदापि न देना चाहिये, इससे उसका प्राणांत हो जाता है। निम्न लिखित क्वाथ बना कर थोड़ा २ पान कराना हितकारी है। जावित्री, जायफल, सोंठ और छोटी इलायची एक२ माशे पीपरामूल २ माशे। पीपर तीन माशे। चिकनी सुपारी, बड़ा गोखुरू, मजीठ और नागकेशर छः छः माशे। तेजपात १ तोला। सब कुचल कर चार सेर पानी में पकावे चौथाई भाग जल रह जाने पर छानले। प्यास लगने पर थोड़ा २ यही क्वाथ पीने कोदे। अथवा दशमूल का अर्क पिलाना श्रेष्ठ है। तीन सप्ताह पर्यन्त प्रसूता को शीतल जल पान से बचाना श्रेष्ठ है और कम से कम दो सप्ताह कदापि ठण्डा पानी न पान कराना चाहिये। आंवल निकल जाने के पश्चात् एक डेग में तीन चार बोतल मदिरा डाल उसमें थोड़ी देर तक प्रसूता को बैठाने से प्रसूता के शरीर में कोई रोग नहीं प्रवेश करता और योनि दृढ़ होकर व्यथा से रहित होजाती है। सूखे वस्त्र से प्रसूता को अच्छी तरह पोंछकर पलङ्ग पर लिटा देना चाहिये।

हाँ—प्रसव के अनन्तर एक तोला चोखी हींग थोड़े जल में कच्ची ही घोल कर गरम करके प्रसूता को पिला

देना चाहिये। अथवा पान के बीड़ा में एक माशे कस्तूरी खिलाने से कफ, वातजनित, पीड़ा दूर होती है और प्रसूत काल के रोग आक्रमण नहीं कर पाते।

प्रसूता को दुग्ध पान।

पीपर, सोंठ, छोटी इलायची और बड़ा गोखुरू एक एक माशे। छुहारे और बादाम के बीज दो २ माशे। गाय का दूध और पानी एक २ सेर। बादाम के बीज के सिवाय सब औषधियों को बिना कूटे वस्त्र में पोटली कर दूध पानी में डाल पकावे। दूध-मात्र रहजाने पर उतार कर पोटली अलग करके छानले और बादाम महीन पीस उसमें घोलदे। यही दूध प्रसूता को थोड़ा २ पान करावे। अथवा अजवानी दो तोले कूट कर जल से महीन पीस घी में तलकर उसमें गोदुग्ध और पुराना गुड़ मिलाकर पकावे और इसी को थोड़ा२पान कराना लाभकारी है।

सूतिका का स्नान।

प्राय:सूतिका स्त्री को पांचवें, सातवें और ग्यारहवें दिन स्नान कराने की प्रथा है चाहे वह स्नान करने के योग्य हो अथवा न हो, परन्तु यह ठीक नहीं यदि प्रसूता और बालक दोनों रोगग्रस्त निर्बल हों तो कदापि स्नान कराना हितकर नहीं है। मलिनता दूर करने के लिये गरम पानी से तौलिया निचोड़ कर उससे शरीर पोंछ कर वस्त्र बदल-लवा देना चाहिये। जब दोनों स्वस्थ और शीतोष्ण सहन

करने योग्य हों तब सूतिका को पांचवे दिन से बराबर स्नान कराने में हानि नहीं हो सकती।

प्रसूतागार में अग्नि।

सूतिका के गृह में बारह दिन तक अग्नि का निरन्तर रहना आवश्यक माना जाता है। शीत काल में निर्धूम अग्नि चौबीसों घड़ी सूतिकागार में रखना उपयुक्त है और यदि घर में सील होतो उस दशा में भी आग का रहना जरूरीहै। गरमी के दिनोंमें सूतिकागृह के द्वार पर बाहिरी ओर अग्नि रखना चाहिये जिससे अधिक उष्णता के कारण प्रसूता और बालक को कष्ट न हो।

दुग्धवर्द्धन प्रयोग।

किसी २ प्रसूता स्त्री के स्तनों में बहुत कम दूध आता है जिससे बालक का पालना नहीं होता वह दिनों दिन दुर्बल होता जाता है। ऐसी दशा में मूर्ख स्त्रियां भैंस-गाय का दूध प्रमाण से अधिक पिलादेती हैं और उसका परिमाण बड़ाही भयङ्कर होता है। बालक को अजीर्ण से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं और संभाल न हो सकने पर यमालय के पथिक बनते हैं। इस लिये माता के स्तन में दूध बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि माता का दूध इच्छापूर्ण पान करने पर भी बालक को अजीर्ण नहीं होता वरन् उससे बालक हृष्टपुष्ट होता है।

(१) नागकेशर, अतीस, वच, नागरमोथा, कमलगट्टा की गिरी, देवदारु और हड़, दो २ तोले अधकुट करके

पांच मात्रा बनावे। इसके काथ में थोड़ी मिश्री मिला दोनों समय पान करने से दूध की वृद्धि होती है।

(२) लाल अरण्ड के पत्तों को पानी के साथ पका-कर स्तनों पर स्वेद देने से स्तनों में दूध की पर्याप्त वृद्धि होती है।

(३) दूब और हल्दी पानी से महीन पीस गरम कर स्तनों पर लेप करने से दूध बढ़ता और शुद्ध भी होता है।

(४) एक तोला ताज़ी गुड़ूची कुचल कर आध सेर गाय के दूध में पकावे। जब आधा दूध जलजाय तब दो तोले मिश्री मिला नीचे उतार कर छान ले। सुहाता गुनगुना पी जावे। इसी प्रकार एक सप्ताह सेवन करने से खूब दूध बढ़ता है।

(५) सौंफ और शतावर छः छः माशे महीन पीस पाव भर गोदुग्ध में घोलकर प्रतिदिन पीने से स्तनों में दूध उतरता है।

दुग्धशोधन।

विरुद्ध भोजन करने, अजीर्ण के होने अम्ल और तीक्ष्ण पदार्थों के अधिक सेवन करने आदि कुपथ्यों से जब माता का दूध दूषित होजाता है तब वह बालक को पचता नहीं अजीर्णादि नाना रोगों को उत्पन्न करने वाला होजाता है। ऐसी अवस्था में दुग्ध को शुद्ध करने वाली औषधियों का प्रसूता स्त्री को सेवन कराना उपयोगी है।

(१) अमलतास के फल का गूदा, ढेरा की छाल, पाढ़ी, कुटकी, सोनापाठा की छाल, मुर्रा, इन्द्रयव, छतवन नीम की छाल, मुर्च, चीता, मसी, कंजा की छाल, परोरा की लता, चिरायता, सूखा करेला, पीले और नीले फूल वाली कटसरैया की जड़ पांच २ तोले लेकर अधकुट करके सन्ध्या को आठ सेर पानी में भिगोदे। सवेरे भभका द्वारा अर्क खींचले। मात्रा आधपाव। एक २ तोला मधु मिला-कर एक मास पर्यन्त दोनों समय पान करने से प्रसूता का दूध निर्दोष होजाता है।

(२) मुलहठी और मुनक्का दूध से महीन पीस स्तनों पर दो सप्ताह निरन्तर लेप करने से लाभ होता है।

यदि स्तनों में दूध अधिक आता हो जिसे बालक न पी सके तो दूसरे बालकों को पिलादेना वा हाथ से निचोड़ कर बहा देना चाहिये। क्योंकि अधिक दुग्ध से प्रसूता के स्तनों में बोझ सा जान पड़ता है और मन्द पीड़ा भी होती है। मूंग और साठी चावल का गरम लेप करने से अथवा श्वेत जीरा, बीजबन्द सिरका से पीस स्तनों पर लेप करने से दूध घटजाता है।

प्रसूता की अवधि।

बालकोत्पत्ति के उपरान्त जब तक ऋतु धर्म न प्रकट हो तब तक स्त्री की प्रसूता संज्ञा रहती है, वह डेढ़ मास

से लेकर चार मास के भीतर उत्पन्न होता है। इस लिये ४ मास तक प्रसूता की अवधि मानी जासकती है॥

पथ्यापथ्य।

साठी का अथवा पुराना चावल, गेंहूंकी रोटी उड़द और चने का पानी, गाय या बकरी का दूध, सौंठ, गुड़, प्याज, बैंगन, उष्ण तथा कफ, वात नाशक पदार्थ। दीपन, पाचन औषधियों का सेवन, शरीर पर प्रतिदिन वात नाशक उबटन वा तेल का मर्दन करना और स्वेद लेना हितकारी है॥

परिश्रम, मैथुन, शीतल पदार्थों का सेवन, गरिष्ठ भोजन और मलमूत्रादि के वेगों का रोकना हानिकारी है॥

सूतिका रोग

अङ्गमर्दो ज्वरः कासः पिपासा गुरुगात्रता।
शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोग लक्षणम्॥

अङ्गों में पीड़ा, ज्वर, खाँसी, प्यास, शरीर का भारीपन, सूजन, शूल और अतिसार रोग सूतिका को होते हैं इसीसे ये सूतिका रोग कहे जाते हैं। प्रसूत रोग प्रायः कष्टसाध्य होता है।

रोगोत्पत्ति का कारण।

बल और मांस की क्षीणता रहती ही है, उस दशा में कुपथ्य के कारण अरुचि, मन्दाग्नि, ज्वर, खाँसी, आदि रोग सूतिका को होजाते हैं। बालकोत्पत्ति के समय दाई अथवा अन्य सहायक स्त्रियों की अज्ञानता और असावधानी से प्रसूता स्त्री को यथोचित् रक्षा न होने पर ही नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वायु के विकार से रक्त संचालन रुक जाता है और मलमूत्र खुलकर साफ नहीं आता जिससे नसों का मुख बन्द होकर गर्भाशय के भीतर वायु भरजाती है कमर, शीश और सर्वाङ्ग में पीड़ा उत्पन्न होती है, भूख घट जाती है ज्वर आने लगता है। ज्वर के साथ और भी अनेक प्रकार के उपद्रव प्रकट होते हैं।

सूतिका रोग की चिकित्सा।

दशमूल के क्वाथ में घी मिलाकर दोनों समय पान कराने से प्रसूता स्त्री के समस्तरोग दूर होते हैं। जल के स्थान में दशमूल का अर्क पान कराना विशेष हितकारी है।

देवदार्व्यादि कषाय।

देवदार, वच, कुट, पीपर, सोंठ, चिरायता, कायफल, कुटकी, धनियाँ, हड़, गजपीपर, अतीस, जवासा, बड़ागोखुरू, ककरासिंगी, गुर्च, स्याहजीरा, भटकैया, और धनभांटा की जड़, दो दो तोले। अधकुट करके २५ मात्रा

घनावे। इसका अष्टावरोध क्वाथ बना उसमें चार रत्ती चूर्ण भुनी हींग सेंधानोंन का मिलाकर प्रसूता स्त्री को दोनों समय पान कराने से ज्वर, खांसी, श्वास, शूल, शोथ, अतिसार, उबकाई, प्यास, गरमी, कम्प शिरकीपीड़ा और वात कफ से उत्पन्न समस्त रोग नष्ट होजाते हैं। यह क्वाथ प्रसूता के लिये संजीवनी के समान हितकारी है।

सहचर कषाय।

डेढ़ तोले पीली कटसरैया की जड़ का क्वाथ बना उसमें दो रत्ती पीपरि का चूर्ण मिलाकर दोनों समय पान कराने से प्रसूता का ज्वर नष्ट होजाता है।

सतलोहवान।

एक २ रत्ती लोहवान का सत पान की वीड़ी में दोनों समय प्रसूता स्त्री को खिलाने से उसका ज्वर इस प्रकार नष्ट होता है जैसे घना अन्धकार सूर्योदय से विलीन हो जाता है।

अग्निदीपक चूर्ण।

भुनी तलाव हींग ३ माशे। अजमोदा, अनारदाना, अमलवेत, कचूर, कालीमिर्च, चाव, जवाखार, चीता, खुरासानी अजमायन, धनियां, पाढ़ी, पीपर, पुष्करमूल, बच, शीतलचीनी, श्वेतजीरा, सज्जीखार, समुद्रनोंन, सेंधानोंन सोंचरनोंन, पांगानोंन, सोंठ, हड़, और हाहूवेर एक २ तोला सब का कपड़छन चूर्ण बना डाले मात्रा तीन माशे से

छःमाशे पर्यन्त। भोजन के समय प्रथम ग्रास के साथ अथवा भोजनोत्तर गरम पानी से दोनों समय खावे तो प्रसूताकी मन्दाग्नि,श्वास,खांसी, शरीर के जोड़ोंकी और शिर की पीड़ा आदि का नाश होता है।

लवणभास्कर चूर्ण।

तज और छोटी इलायची का दाना छःछःमाशे। कालीमिर्च, सोंठ और श्वेतजीरा एक २ तोला। अमलवेत, चाब नागकेशर, तालीसपत्र, स्याहजीरा, तेजपात, पीपरामूल, पीपर, धनियां, जवाखार और सेंधानोंन दो दो तोले। अनारदाना ४तोले। सोंचरनोंन ५तोले। सांभरनोंन ८ तोले सब का चूर्ण कर डाले, इसकी मात्रा ३ से ५ माशे पर्यन्त सोने के समय रात्रि में प्रसूता को पानी के साथ प्रतिदिन सेवन कराने से गुल्म, प्लीहा, संग्रहणी, मन्दाग्नि, अजीर्ण उदरशूल, आदि दूर होते हैं। प्रसूता के अतिरिक्त यह चूर्ण समस्त रोगी स्त्री-पुरुषों के लिये लाभकारी है।

पारद वटी।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धिक आंवलासार, जायफल, चीता कालीमिर्च और फुलायाहुआ चौकिया सोहागा छःछः माशे। शुद्धधतूरे का बीज डेढ़ तोले। लवङ्ग २ तोले। पीपर ५ तोले पारा-गंधक की कज्जली करके समस्त औषधियों का कपड़छन चूर्ण बनाकर एक घड़ी अदरक के रस से घोट एक एक रत्ती की गोली बना छाया में सुखाले। मधु और

अदरख के रस से एक एक गोली दोनों समय खिलाने से प्रसूता का ज्वर संग्रहणी, खांसी आदि सन्निपातज और वातजन्य रोग दूर होते हैं।

अमृतादि वटी।

शुद्धसींगिया, शुद्धसिंगरफ, शुद्धगन्धक, आंवलासार फुलाया हुआ चौकिया सोहागा, शुद्धअफीम, लवङ्ग, पीपर कालीमिर्च और अकरकरा एक २ तोला। सब का चूर्ण कर पूर्वोक्त प्रकार पान के रस से घोट कर एक २ रत्ती की गोली बनावे। दिन में तीन चार बार पान के रस और मधु के साथ एक २ गोली खिलाने से प्रसूता के ज्वरादि रोग दूर होते हैं।

कुमार वटी।

शुद्ध सिंगरफ, शुद्धसिंगिया, छोटी इलायची, केशर, जायफल, जावित्री और कालीमिर्च एक२ तोला। शुद्ध कुचिला ५ तोले। सब का महीन चूर्ण करके बँगला पान के रस से घोट कर मूंग के बराबर गोली बनावे।
अदरक के रस और मधु के साथ एक एक एक गोली दोनों समय सेवन कराने से प्रसूता स्त्री का ज्वर, खांसी, शोथ आदि वात जनित उपद्रव सब दूर होते हैं।

चित्रकादि अवलेह।

चीता, कुट, कचीला, हाबूबेर, विदारीकन्द, पीपर, मेंथी, पीपरामूल, सोंठ, धनियां, अजमोदा, सोंफ, सोवा

का बीज, मंगरैल और श्वेतजीरा दो दो तोले। गाय का घी आधपाव। बकरी अथवा गोदुग्ध एक सेर। पुराना गुड़ ढाई सेर। समस्त औषधियों का महीन चूर्ण कर गुड़ को दूध में पकावे, चाशनी तैयार होने पर चूर्ण और घी मिला कर नीचे उतारले। शीतल होजाने पर आध सेर पुरानी मधु मिला एक २ तोले दोनों समय चटाने से क्षुधा की वृद्धि, रक्त, मांस, बल, और कांति बढ़ती है। इसके सिवा प्रसूता के समस्त रोग दूर होते हैं।

विजयादि अवलेह।

धुली भांग और तज छः छः मारो। छोटी इलायची का दाना १ तोला। गुर्च का सत और मूंगा भस्म डेढ़ डेढ़ मारो गोदुग्ध में शोधी हुई छोटी पीपर २तोले। वंशलोचन ४ तोले मिश्री और गोघृत आठ २ तोले। एक साल का पुराना मधु २४ तोले। सब का कपड़छन चूर्ण करके मधु और घी फेंट कर कांच के पात्र में रक्खे। तीन २ मारो प्रातः सायङ्काल चाट कर ऊपर से पाव आधपाव बकरी का गुनगुना दूध पान करने से प्रसूता स्त्री का ज्वर, खाँसी आदि रोग आराम होते हैं। इस अवलेह से क्षय रोग में बहुत अच्छा लाभ होता है।

अश्वगन्धादि पंजीरी।

असगंध, शतावर, बड़ागोखुरू, माजूफल, मोचरस कमरकस, बबूर की फली, बड़ीइलायची, दालचीनी, गाजर

का वीज , उटङ्गन का वीज, चिकनी सोपारी, सेमर कामुसरा श्वेत मुसली, श्याममुसली, तेजबल, इन्द्रयव, पलास का गोंद, धवपुष्प, केवांच का बीज, मजीठ, बीजबन्द, सोंठ ताल मखाना, अजवाइन, वायविडङ्ग, पिपरामूल, समुद्रशोख और भाऊ का फल एक २ तोला। सङ्गराहत ३ तोले। चिरोंजी और मखाना का लावा पांच २ तोले। गिरी मुनक्का और पिस्ता दस २ तोले। बादाम की बीजी एक पाव। गो घृत तीन पाव। गेंहूं अथवा उड़द का आटा और देशी चीनी डेढ़ डेढ़ सेर। पहले सङ्गराहत पर्यन्त सब औषधियों का महीन चूर्ण कर डाले और चिरोंजी, पिस्ता, लावा, गरी और मुनक्का साफ करके महीन कतर कर रखले। बादाम की बीजी का छिलका दूर कर पानी से सिल पर पीस आटा में मलदे। आधसेर घी कढ़ाही में डाल धीमी आंच से उस आटे को भूने। जब सोंन्धाहट आजाय नीचे उतार उसमें औषधियों का चूर्ण और बचा हुआ पावभर घी मिलाकर हाथ से मलदे। फिर चीनी, मेवा आदि मिलाकर रखले। मात्रा पांच तोले। दिन में तीन चार बार खाकर थोड़ा गुनगुना गाय का दूध पान करने से प्रसूता का ज्वर खांसी आदि रोग दूर होकर शरीर में बल की वृद्धि होती है। प्रसव के समय अधिक रक्तस्राव से उत्पन्न हुई निर्बलता दूर होकर क्षुधा बढ़ती है और समस्त वात विकार से उत्पन्न हुये रोग दूर होजाते हैं।

सौभाग्यशुण्ठी मोदक ।

बालक उत्पन्न होने के अनन्तर प्रसुता स्त्री को अधिक गरम पदार्थ सेवन कराये जाते हैं। यदि शीत ऋतु और सूतिका की प्रकृति शीतल हुई तो उससे लाभ होता है। किंतु विपरीत होने से हानि होती है। अधिक गरम वस्त्र न सेवन कराकर निम्न मोदक प्रसूता को खिलाया जायतो प्रत्येक ऋतुओं में सम न लाभदायक होगा और इससे प्रसूता के समस्त रोग दूर होकर शरीर में बल की वृद्धि होती है। तेजपात, जाविंत्री, स्याहजीरा, पीपरामूल चाव, चीता, पीपर, अगर, श्वेत, चन्दन, और अजमोदा एक २ तोला। सोंफ विंधारा, जायफल, नागकेशर, धनियां, श्वेतजीरा, दालचीनी, अकरकरा, कमलगट्टा की गिरी, नागरमोथा, खस, लवङ्ग, काली मिर्चा और शीतल चीनी डेढ़ २ तोला। त्रिफला असगन्ध, छोटी इलायची, शतावर, श्वेतमुसली, सोंठ, सिंघाड़ा, और वरियाराकी जड़ दो दो तोले। चिरोंजी ५ तोले। किशमिश अखरोट और बादाम के बीज दस २ तोले। पिस्ता और गोघृत एक२ पाव। वैतरा सोंठ डेढ़ पाव चीनी २॥ सेर। बकरी का दूध ४ सेर। मेवा को साफ करके छोटा टुकड़ा करले। सोंठ का चूर्ण अलग और अन्य एक, डेढ़, दो तोले वाली औषधियों का चूर्ण अलग बना-डाले। दूध को कड़ाही में औटावे, गाढ़ा होने पर वैतरा सोंठ का चूर्ण मिला घी के साथ मन्द आंच से भूने, जब

रवा विखर जाय किंचित सुर्खी प्रकट हो तब नीचे उतार रखे और चीनी की चाशनी करके उसमें सब चीजें मिला कर दो २ तोले का लड्डू बांधे। दोनों समय बलाबल के अनुसार एक वा दो लड्डू खाकर गोदुग्ध पान करने से ज्वर, पांडु, खांसी, शूल, शोथ, मन्दाग्नि, श्वास आदि प्रसूता, के रोग नष्ट होते हैं। शरीर में रक्त, बल बढ़ता है और कांति आती है। यदि यह मोदक गर्भिणी स्त्री को सेवन कराया जावे तो गर्भस्थित बालक पुष्ट होता है और गर्भिणी का बल नहीं घटता तथा समय पर सुख से प्रसव होता है।

द्वितीय सौभाग्य शुराठी मोदक।

जावित्री, जायफल, श्वेत जीरा, नागरमोथा, सौंफ, शतावर, कमलगट्टा, सिंघाड़ा, कसेरू, तज, छोटी इलायची, धनियां, धवपुष्प, कालीमिर्च, और कपूरकचरी दो २ तोले लोह भस्म और अभ्रक भस्म चार २ तोले। गाय का घी एक पाव। चीनी और गोदुग्ध दो दो सेर। पूर्वोक्त प्रकार लड्डू बना कर छः छः मासे दोनों समय दूध के साथ सेवन करने से सूतिका के समस्त रोग नष्ट होते हैं और शरीर में कांति-बल की वृद्धि होती है।

जीरकादि मोदक।

स्याहजीरा, अजमाइन, सौंफ, सोंठ, कालीमिर्च पीपर, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची, नागकेशर, चाब

चीता, वायविडङ्ग, नागरमोथा और लवंग दो २ तोले। धनियां और बैतरा सोंठ छः छः तोले। घृत श्वेतजीरा और पीपल वृक्ष का पका सूखा फल एक २ पाव। चीनी और दूध दो २ सेर। पूर्वोक्त रीति से मोदक बनावे और उसमें इच्छानुसार चिरोंजी, बादाम, किशमिश पिस्ता मिलाकर दो २ तोले का लड्डू बनावे। गाय वा बकरी के दूध से दोनों समय प्रसूता के खिलाने से ज्वर,खांसी,मन्दाग्नि आदि रोग दूर होते हैं और बल, रक्त,मांस, कांति, बुद्धि बढ़ती है।

शतावरी तैल।

असगंध, कमलगट्टा, कुट, छड़ीला जटामासी,तगर, देवदार, बरियारा को जड़, बड़ी इलायची, बाराहीकंद, श्वेतचन्दन, शतावर और सोंफ ढाई २ तोले। मुलहठी २ तो० असगन्ध, ककही की जड़, पिठवन, पीली कटसरैया, बड़ा गोखुरू, बरियारा कीजड़, शतावर और सरिवन साढ़े सात २ तोले। काले तिल का तैल, शतावर का स्वरस और गाय का दूध दो २ सेर। पहले साढ़े सात तोले वाली औषधियों को कुचल कर सन्ध्या को आठ सेर पानी में भिगोदे और सवेरे पकाकर क्वाथ करे। दो सेर जल रहजाने पर छान कर रखले। यदि शतावर गीली मिलसके तो कुचल कर दो सेर रस निचोड़ ले और सूखी हो तो एक सेर शतावर महीन कूटकर दो सेर पानी में भिगोवे, बारह घड़ी के बाद मल कर रस निकाल ले। ढाई और पांच तोले वाली औषधियों को कूट पीस कर

कल्क बनावे फिर सब साथ ही तैल में मिला उपलों की आंच से कड़ाही में डालकर पकावे और सिद्ध हो जाने पर वस्त्र से छानले। प्रसूता स्त्री को इस तेल का सर्वाङ्ग में प्रति दिन मर्दन कराने से ज्वर, खांसी, अंगों की पीड़ा, दाह, कम्प, योनिशूल, गृध्रसी, पाण्डु, कामला-वातरक्त, गठिया, रक्तविकार, उदरवृद्धि, निर्बलता, श्वास और वात पित्त जनित समस्त रोग निर्मूल होजाते हैं। प्रसूता के अतिरिक्त यह तैल पुरुषों के लिये अत्यन्त लाभकारी है। प्रमेह, नपुन्सकता, वीर्यविकार, धातु का पतला होना दूर होता और अभूतपूर्व शक्ति शरीर में उत्पन्न होती है। स्त्रियों का वन्ध्यत्व और पुरुषों का नपुन्सकत्व दूर करने के लिये शतावरी तैल आश्चर्यजनक शक्ति रखता है। वाजीकरण है और बेहद बलका बढ़ाने वालाहै। अद्वितीय गुणकारी सिद्ध महौषधि है।

पथ्यापथ्य।

प्रसूत रोग वाली स्त्री को मूंग अथवा मोथी की दाल। गेहूं अथवा जौ की गुरी की रोटी। मेथुआँ, लौकी और परवर की भाजी। पकाया जल और पीपर डालकर उबाला हुआ बकरी या गाय का दूध सेवन करना हितकारी है।

बासी अन्न, कफकारी पदार्थ, भात, दही, खटाई, परिश्रम, स्नान, पुरुष-प्रसङ्ग तीक्ष्ण वायु घाम या अग्नि

के सन्मुख रहना और चिंता से बचना चाहिये। यदि विनाल्हान के मैलेपन से जो घबरावे तो गरम पानी में तौलिया भिगो निचोड़ कर उससे शरीर पोंछ कर साफ वस्त्र पहन लिया करे। जो बहलाने वाले गानों को सुनना मधुर वाद्य देवस्तुति का श्रवण करना श्रेष्ठ है।

स्तनरोग

> सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्यस्तनौ स्त्रियाः।
> रक्तं मांसं च संदूष्य स्तनरोगाय कल्पते॥

प्रायः दूषित दुग्ध के जमजाने से प्रसूता स्त्री के स्तन में ग्रन्थि उत्पन्न होती है और वह पीड़ा के सहित धीरे धीरे बढ़ती है। पकजाने पर अत्यन्त दुखदाई हो जाती है। इसको स्तन रोग वा थनइल कहते हैं। यह रोग प्रायः प्रसूता ही को होता है इसी से सूतिका रोग कहलाता है।

स्तनरोग की भीषणता।

जब थनइल फोड़ा पकजाता है तब बड़ा ही दुःख-दाई और भीषण होजाता है। बड़ी कठिनता से और बहुत देर में आराम होता है। कभी २ सड़ कर प्राणों

का ग्राहक बनजाता है, इस लिये थनइल के उभड़ते ही खूब सावधानी से उसके बैठाने का उपचार करना चाहिये जिसमें वह पकने न पावे, क्योंकि पकने ही पर कष्टसाध्य होता है।

स्तनरोगकी चिकित्सा।

स्तनरोग में पित्तनाशक शीतल पदार्थों का प्रयोग करना चाहिये और जोंक लगवा कर दूषित रक्त निकलवा देना लाभकारी है। इस व्रण में स्वेद और सेक करना हानिकारी है अतः सेक और स्वेद द्वारा उपचार न करना चाहिये। जिन योगों से यह फोड़ा विना पके बैठ जाताहै उनका उल्लेख नीचे किया गया है।

(१) स्तन में थोड़ा शोथ और पीड़ा के उत्पन्न होते ही हल्दी और धतूरे का पत्ता समान भाग पानी से पीस लेप करने से पीड़ा तुरन्त घटजाती है और शोथ भी दबजाता है। इस लेप के प्रभाव से थनइल पकता नहीं।

(२) इनारुन की जड़ का लेप करने से थनइल फोड़ा विना पके बैठजाता है।

(३) बांझ खेखसा की जड़ का लेप करना इसी प्रकार लाभदायक होता है।

(४) कुकरौंधा पीसकर टिकरी बना स्तन पर बांधने से फोड़ा दबजाता है।

(५) भूसी रहित भुना जौ, छिलका रहित अरहर

को दाल और आम की गुठली बराबर भाग पानी से पीस दिन में तीन चार बार लेप करने से थनइल की पीड़ा दूर होती है और वह बिना पके ही बैठ जाता है ।

(६) हल्दी, दारुहल्दी, तगर, लालचन्दन, सुगन्धवाला, बड़ी इलायची, मुलहठी, कुट, जटमासी और सिरस की छाल एक एक तोला पानी से पीस घी मिलाकर लेप करने से पीड़ा नष्ट होती है और पकता नहीं, उभड़ता हुआ थनइल शीघ्र बैठ जाता है।

(७) तपाये हुये लोहे को पानी में बुझाकर स्तन रोग वाली स्त्री को वही बुझाया हुआ जल पिलाने से थनइल बिना पके बैठजाता है। इस पानी से स्तन को धोना भी आवश्यक और लाभकारी है।

(८) पलास के कोमल पत्तों पर घी चुपड़ कर सोथ पर कई पत्र देकर वस्त्र से बांध देना लाभदायक देखागया है।

थनइल पर स्वेद ।

यद्यपि स्तन रोग में स्वेद मना है, तो भी एक प्रसिद्ध वैद्यराज ने बड़े दावे के साथ अपना अनुभूत योग प्रसिद्ध किया है और दृढ़ता के साथ विश्वास दिलाया है कि इसके प्रयोग से किसी प्रकार की हानि नहीं होती, प्रत्युत आश्चर्यजनक लाभ तत्क्षण प्रकट होता है। उठता हुआ फोड़ा तुरन्त दबजाता है और पीड़ा दूर होजाती है। योग यह है—

एक बोतल में खौलता हुआ पानी भर कर तीन चार मिनट के पीछे पानी गिरादे और बोतल के मुख में काग लगा बन्द कर देवे। स्तन का अग्रभाग (काला स्थान) बचाकर शोथ की जगह मोम से तर किया हुआ पतला वस्त्र हाथ से चिपकादे और बोतल की डाट खोल कर उसका मुख चिपकाई हुई पट्टी के समीप करके सेक करे। बोतल में भरी हुई गरम वायु के लगने से कुछ पीड़ा उत्पन्न होगी, किंतु उससे डरने की कोई बात नहीं है। बार २ बोतल हटा कर काग बंद कर दिया करे और फिर उसी प्रकार सेक करता जावे तो जमा हुआ दूध फट जाता है। दो तीन बार इस क्रिया के करने से थनइल की पीड़ा मिट जाती है और वह पकता नहीं शीघ्र बैठ जाता है। फिर किसी प्रकार का कष्ट नहीं रहजाता।

योषापस्मार–हिस्टीरिया।

यह रोग अधिकांश में सभ्य जाति की स्त्रियों को ही होता है। प्रायः वयःप्राप्ता–युवती, विधवा, अविवाहिता, सन्तानविहीना सधवा और सन्तानवती भी इस रोग से आक्रांत होती है। इसके लक्षणों का प्रादुर्भाव प्रायः ऋतुधर्म के समय होता है। कारणवश विषयवासना की इच्छा की पूर्ति न होने और बारम्बार मनोवेग के रोकने पर दुःख निराशा से उठी हुई लहरें हृदय पर भीषण प्रभाव डालती हैं जिससे कामोन्मादित होकर कामिनी मन ही मन व्यथित होती है। ऐसी दशा में किसी बाहरी कारण के अकस्मात प्रभाव पड़ने

पर हिस्टीरिया रोग उत्पन्न होता है। प्रिय की अप्राप्ति, धनक्षय; भय, शोक आदि से मनोविघात होने पर भी इस रोग की उत्पत्ति होती है। अजीर्ण, योनिरोग, रक्तसञ्चालन में अवरोध और नाड़ीचक्र की विकृति आदि भी रोगोत्पादन के सन्निकृष्ट कारण होते हैं।

आयुर्वेदीय, अंग्रेजी और यूनानी चिकित्सकों के बहु-मत से प्रकट है कि यह रोग प्रायः स्त्रियों ही को होता है, परन्तु ऐसा नही है-पुरुषों को भी होते देखा गया है। ज्ञानपुर के भूतपूर्व तहसीलदार और वर्तमान डिप्टी कलक्टर बाबू रूपनारायण के ज्येष्ठ पुत्र को बारह तेरह वर्ष की अवस्था में हिस्टीरिया रोग होगया और चार पांच वर्ष तक बना रहा। अनेक प्रकार की डाक्टरी चिकित्सा हुई, किंतु कुछ भी लाभ नहीं हुआ अंत को वह इसी रोग से स्वर्गगामी होगया।

प्रयाग फूलपुर तहसील के तहसीलदार बाबू मुरलीधर के एक प्रियबालक को पन्द्रह वर्ष की अवस्था में यह रोग उत्पन्न हुआ और सात वर्ष पर्यन्त रहा। उन्नाव, लखनऊ, प्रयाग आदि नगरोंके कितने ही अनुभवशील प्रसिद्ध डाक्टरों और हकीमों का इलाज होने पर भी कोई लाभ नहीं प्रगट हुआ। शीतकाल में दस बारह दिन के अंतर से फिट आता था और गरमी के दिनों में प्रतिदिन एक बार तथा कभी २ दो दो तीन तीन बार वेग का दौरान होता था। अप्रेल सन् १६१२ ई० में कार्यवश मैं फूलपुर गया और उक्त तहसीलदार महाशय ने मुझे बुला कर चिकित्सा के लिये विशेष आग्रह किया रोग को कष्टसाध्य जानते हुए भी हमने ईश्वर का नाम

लेकर औषधियों के प्रभाव पर दृढ़ भरोसा करके चिकित्सा प्रारम्भ की उससे आशातीत लाभ प्रगट हुआ। दूसरे ही दिन से फिट आना सदा के लिये बंद हो गया जिसका उल्लेख आगे चिकित्सा प्रकरण में किया गया है।

हिस्टीरिया शब्द यूनानी कोश का है। पहले यूनानी हकीम इस रोग को इखतना कुल—रेहम, कहते थे। यूनानी भाषा में गर्भाशय को रेहम कहते हैं और इस पूरे शब्द का अर्थ हुआ गर्भाशय का गला घोंठनेवाला। इसी सिद्धान्तानुसार यूनानी—चिकित्सक इसको गर्भाशय का रोग मान कर चिकित्सा करते थे परन्तु कुछ काल से वे अपने विचारों को भ्रान्त मूलक अनुमान कर अब इसको शिरा (नर्वस डिजीज या ब्राक) रोग मानने लगे हैं। वास्तव में जब यह रोग स्त्री—पुरुष दोनों को हो सकता है तब गर्भाशय की विकृति से इसकी उत्पत्ति बतलाना सर्वथा निर्मूल और भ्रम युक्त था।

पाश्चात्य चिकित्सक इस रोग के सम्बन्ध में कैसा विचार रखते हैं यह जानने के निमित्त हम कुछ अनुभवी डाक्टरों के सिद्धान्त उद्धृत करते हैं। डाक्टर स्काट का मत है कि मनोवृत्ति, विवेक बल, चिन्ता, अनुभव की शक्ति, पेशीसंचालन, स्पर्शानुभव सम्बन्धी क्रिया वैलक्षण्य और संयुक्त नाड़ी चक्र के विशेष क्रिया—विकार को 'हिस्टेरिया कहते हैं। डाक्टर न्यूमान लेएड लिखते हैं कि यह रोग अधिकतर स्त्रियों को होता है डाक्टर न्यूमान लेएड लिखते हैं कि

यह रोग अधिकतर स्त्रियों को होता है।इसमें मनोवृत्ति और कार्य-स्वायत्त नहीं रहता। वे इसको दो भागों में विभक्त करतेहैं प्रथम हिस्टिरोएपिलेप्सी(Hystero Epilepay)अर्थात् अपस्मार के समान आक्षेपयुक्त प्रबल हिस्टीरिया और दूसरी हिस्टीरिया माइनर (Hysteria minor) अर्थात् सामान्य आक्षेपयुक्त मृदु हिस्टीरिया जिसमें सम्मोह नहीं होता। इन दोनों को उन्होंने वातव्याधि के अन्तर्गत माना है। हिस्टीरिया माइनर के वेग का वर्णन डाक्टर जेरोपर्टसन वालेस इस प्रकार कहते हैं कि रोगी ऐसी चेष्टा करता है मानो उसने किसी जीव विशेष का रक्त पान कर लिया है और उसको वमन द्वारा इस लिये बाहर निकालता है जिससे उसके कुटुम्बियों के हृदय में भय का सञ्चार हो अपने मूत्र में कोई रंग मिलाकर लोगों को धोखे में डालने के लिये दिखाता है कि मेरे मूत्र का रंग बदल गया है। वह रोगी अपने चिकित्सक तथा अन्य पुरुषों पर मिथ्या दोषारोपण और पापमय कार्यों का आरोप करने में नहीं हिचकिचाता। सारांश यह कि हिस्टीरिया का रोगी झूठ बोलकर वंचना और अधर्म करने का प्रयत्न करता है।

वंग देशीय कविराज विनोद लाल सेन ने अपने 'आयुर्वेद विज्ञान, में इस रोग का नाम 'योषापस्मार, लिखा है और इस नामकरण का कारण दिखाते हुए कहा है—"योषितामेव बाहुल्याद्यस्य एष भवेद्गदः। अपस्मार प्रकृतिकस्तेनास्यैषाभिधा मतो" अर्थात् यह रोग प्रायः स्त्रियों को ही हुआ करता है और इसकी प्रकृति अपस्मार

के सदृश है इसलिये इसका नाम योषापस्मार है। स्वर्गीय श्यामसुन्दराचार्य रसायन शास्त्री और वर्तमान के अनेकानेक आयुर्वेद विशारद विद्वानों ने इसीका अनुगमन किया है। यह नामकरण नवीन है, क्योंकि चरक सुश्रुतादि ऋषि-प्रोक्त ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। सुश्रुतोक्त उन्माद के लक्षण हिस्टीरिया से मिलते जुलते हैं।

मदयंत्युद्धतादोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।
मनसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥

अर्थात् जब बढ़े हुए दोष विपरीत मार्ग से ऊर्ध्वगामी होकर मस्तिष्क को प्राप्त होते हैं तब मद (बेहोशी) उत्पन्न करते हैं वह मानसिक रोग उन्माद कहलाता है फिर भी हिस्टीरिया और उन्माद के वेग में बहुत अन्तर है प्रथम तो उन्माद का रोग आक्षेप होने पर पतित नहीं होता शीघ्र शीघ्र चेतनता लाभ नहीं करता और हिस्टीरिया का रोगी मूर्छित हो जाता है तथा वेग निकल जाने पर चैतन्य दिखाई देता है दूसरे उन्माद के प्रकरण में यह उल्लेख नहीं है कि यह रोग स्त्रियों ही को होता है और पुरुषों को नहीं यदि सन्यास कहा जाय तब भी सन्देह दूर नहीं होता महात्मा सुश्रुत लिखते हैं—"सन्यस्तसंक्षोभृश दुश्चिकित्स्यो ज्ञेयः स्तदा बुद्धिमता मनुष्यः" सन्यस्त का रोगी अधिकांश चिकित्सा के योग्य नहीं होता दोषों के अत्यन्त कुपित होने के कारण वह चेतना लाभ नहीं करता अर्थात् मर जाता है। इसके अतिरिक्त सन्यास का रोगी 'हिलता-डोलता' नहीं और न जल्पना ही करता है वह तो अचेतन्य अवस्था में

काठ के समान पड़ा रहता है, किंतु हिस्टिरिया में इसके विपरीत लक्षण प्रकट होते हैं।

अपस्मार प्रायः रोगी के मुख से झाग (फेन) निकलता है, किन्तु हिस्टीरिया में वैसा नहीं होता। फिर भी हिस्टीरिया और मृगी के लक्षणों में बहुत कुछ साम्यता पाई जातीहै, इसीसे आयुर्वेदाचार्य विद्धद्वरोंने इसका योषापस्मार नाम करण किया है। अब शङ्का यह उठती है कि जब यह रोग स्त्री पुरुष दोनों ही को होता है तब इसका 'योषापस्मार नाम करण कहां तक उपयुक्त और युक्तिसंगत कहा जा सकता है।

सुधानिधि पत्र के सम्पादक वैद्यवर पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल ने अंग्रेज़ी, यूनानी और आयुर्वेदिक चिकित्सकों के मत मतान्तर की लम्बी आलोचना करते हुए हिस्टीरिया रोग को वात व्याधि के अन्तर्गत अपतंत्रक रोग सिद्ध कर दिखाने का प्रयास किया है। आपका कथन है कि अपतंत्रक और अपतानक दोनों एक ही रोग है। इन दोनों रोगों के मिश्रित लक्षण ग्रन्थान्तरों में इस प्रकार वर्णित है। अपने कारणों से कुपित हुई वायु पक्वाशय से ऊर्ध्वगामी होकर हृदय, मस्तक, कनपटियों को पीड़ित करती हुई शरीर को धनुष के समान नवाकर कंपाती और व्याकुल कर देती है। ऊंची श्वास चलती है और गले से कबूतर के समान शब्द निकलता है। नेत्र कभी खुले कभी बन्द रहते हैं, ज्योति मन्द होजाती है और रोगी मूर्छा में बेसुध होजाता है।

हिस्टीरिया से ये लक्षण अवश्य मिलते हैं; किंतु रोना हँसना, जल्पना करना आदि इसमें नहीं होता। इसका निराकरण शुक्लजीने इस तर्क से किया है कि रोगी का कंठ रुक जाता है, श्वासावरोध की पीड़ा से वह जितना भी चीखे उतना ही थोड़ा है। जब वायु हृदय में पहुंचती है तब चेतनाशक्ति में भेद पड़जाता है। उस समय रोगी की अवस्था बदल जाती है। उसके मन में जैसा भाव वर्तमान रहता है वैसा ही प्रकट करता है। हंसना, रोना, चीखना, मन का भेद बतला देना जो कुछ भी कहो सच होसकता है।

जब तक वैद्य सम्मेलन और चिकित्सक समुदाय इस मत भेद को निर्मूल कर कोई निश्चित आयुर्वेदिक नाम करण नहीं कर सकता है तब तक पूर्व परिपाटी का अनुशरण करते हुए हमें भी इस रोग को 'योषापस्मार' के ही नाम से प्रसिद्ध करने को बाध्य होना पड़ा है।

योषापस्मार के लक्षण।

इस रोग में दो प्रकार के असाधारण लक्षण होते हैं। एक आक्षेप विहीन अवस्था और दूसरी आक्षेपिक अवस्था आक्षेप विहीन अवस्था में साधारण ज्ञान विज्ञान और विवेकशक्ति का अभाव होजाता है। प्रायः रोगी मिथ्या प्रलाप करने लगता है, उसको शीतोष्ण का परिज्ञान नहीं रहता और शरीर के किसी स्थान में स्पर्श करने से वेदना का अनुभव होता है। वेग निकल जानेपर थोड़ी देर में चैतन्य होजाता है।

आक्षेपिक अवस्था में मूर्छित होने के पूर्व प्रायःरोगी को वेग आने का ज्ञान होजाता है। वहुतों का श्वास खिंच कर आने लगता है और आंखें चढ़कर लाल रङ्ग की हो जाती हैं जंभाई आना, निरर्थक हंसना, रोना, चीखना और शरीर को इतस्ततः संचालन करना इत्यादि होता है। रोगी को यह जान पड़ता है मानों गले में गेंद के समान कोई गोली वस्तु नीचे से आकर अटक गयी है। जव तक वह मूर्छित नहीं होजाता तव तक उसके चारों ओर क्या हो रहा सव जानता रहता है, परंतु कोई स्पष्ट वाक्य मुख से नही निकाल सकता। हाथ की मुट्ठी वंध जाती है। हाथ पांव और सम्पूर्ण शरीर पेंठने लगता है। आंखों से सुझाई नहीं पड़ता, हृदय धड़कता है और शिर में तीव्र पीड़ा होती है वहुतों के वेग के समय जितने अंग टेढ़े होजाते हैं। वेग के शांत होने पर भी सहसा वे सीधे नहीं होते आक्षेप के समय संभालने वाले लोग पास में न हों तो रोगी का शरीर भग्न होजाय। मूर्छित होजाने पर रोगी शांत पड़ा रहता है। इसका वेग पांच सात मिनट से लेकर किसी २ को आठ २ दस २ घन्टे तक वना रहता है। साधारण वेग में चेतना शीघ्र आजाती है, किंतु प्रवल आक्षेप में विलम्व से होश होता है। निर्वलता शिर और कमर में पीड़ा आदि दो तीन दिन तक वनी रहती है। अंग्रेजी में इस के वेग को फिट कहते हैं।

इस रोग के लक्षण सव रोगियों के एक समान नहीं होते, उनमें प्रायः भिन्नता पाई जाती है। कोई हाथ पांव

फटकारते हुये गला फाड़ फाड़ कर रोने चीखने लगता है तो कोई विना किसी शब्द के स्तब्ध होकर गिर पड़ता है। किसी को नोंचने खसोटने की धुन सवार हो जाती है और कोई भय भीत होकर भूत प्रेत की लीला का अनुभव कर दुखी होता है। किसी को यह प्रतीत होने लगता है कि मांसाहारी जीव मेरा पेट फाड़ कर अथवा हृदय में घुसकर उदरस्थ अवयवोंको खाये डालते हैं। कोई गाली बकना, अपना और दूसरों के शरीर का वस्त्र नोच खसोट कर फेंकना, गृहवस्तुओं को तोड़ना फोड़ना इत्यादि इतना ऊधम मचाता है कि घर वाले हैरान हो जाते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के लक्षणों का कारण यह जान पड़ता है कि सुख दुःख प्रसन्नता और खेद आदि के अनुभव करने का कार्य मस्तिष्क भिन्न भिन्न विभागों में सम्पादन करता है, अतएव जिस अंश पर रोगोत्पादक शक्ति का प्रभाव पड़ता है वही उत्तेजित हो उठते हैं।

योषापस्मार की चिकित्सा।

यद्यपि यह रोग कष्ट साध्य होता है तो भी इसका वेग समय पर आकर अपने आप दूर होजाता है, अतएव आक्षेप से अधिक घबराने की बात नहीं है। उस समय रोगी के गले के बटन आदि खोल देना चाहिये और वेग को शांत करने के लिये पांव के तलुओं पर गरम जल की धारा बहाना, नौसादर पानी में घोल साफ वस्त्र भिगोकर उसकी गद्दी बना माथे पर रखना और आंखों में पिपरमेन्ट के सत्त का अंजन करना लाभकारी है यदि

दांत लग गये हों तो नकछिकनी और तमाखू के पत्ते का चूर्ण सुघाने से छींकें आती हैं और उससे दांत खुल जाते हैं। प्रथम इस रोग पर अपना अनुभूत योग हम उपस्थित करते हैं।

केशरादि वटी।

केशर और जावित्री चार चार माशे। असगन्ध जायफल और गाय के दूध से शोधी हुई छोटी पीपरि एक एक तोला। अदरक २ तोले पका हुआ श्वेत बंगला पान १० संख्या। सब औषधियों को पीस एक प्रहर खरल में अच्छी तरह घोट कर उड़द बराबर गोली बना छाया में सुखा ले। मात्रा एक से दो गोली पर्यन्त पान के बीड़ा में रख कर प्रातः सायंकाल दो मास सेवन करने से योषापस्मार रोग शान्त होता है। मृगी उन्माद सन्यास का दमन होकर मस्तिष्क बलवान होता है।

मस्तिष्क विनोद तैल।

पिपरमेन्टका सत्त ६ मासे। खसका चोखा इत्र १ तो० दाल चीनी का तेल २॥ तोले। चन्दन का तेल ४ तोले। इलायची का तेल ५ तोले। केवड़ा का तेल, चमेली का तेल और मोगरा का तेल आध २ पाव। सन्तरा का तेल डेढ़ पाव। तिली का ताजा तेल ५ सेर। सब को एक में मिला उसमें दो तोले रतजोत का चूर्ण डाल कनस्तर का मुख बन्द करके रखदे और प्रतिदिन एक दो वार हिलादिया करे। आठवेंदिन

मोटे वस्त्र से छान बोतलों में भर काग लगा रख छोड़े और एक मास के अनन्तर व्यवहार में लावे। इस प्रकार अत्यंत सुहावनी मीठी सुगंधि का तैल तैयार होता है। इसको मस्तक पर धीरे २ मलवाने से शिर की पीड़ा, गरमी चक्कर आना बातों का भूलना, मस्तिष्क की निर्बलता दूर होती है और अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया रोग में अच्छा लाभ पहुंचाता है। दिमागी काम करनेवाले वकील, मुख्त्यार, शिक्षक विद्यार्थी और कवियों के लिये विशेष उपकारी है। स्मरण रहे कि इत्र, तैलादि जितने ही उत्तम मिलाये जायंगे तैल भी उत्तरोत्तर उतना ही गुणकारी होगा।

महालाक्षादि तैल।

कस्तूरी ६ माशे। अगर, असगन्ध, आँवला, काकड़ासिंगी, कचूर, कमलगट्टा, कालीमिर्च, कूठ, कुटकी, गुलाब का फूल, चम्पावती, चिकनी सुपारी, छड़ीला, छोटी इलायची जटामांसी, जायफल, जावित्री, तज तेजपात, देवदारु, धनियां धव का फूल, नागकेशर, पद्माख, पित्तपापड़ा, पीपर, बड़ी इलायची, वायविडंग, मजीठ, मलयाफल, मालकंगुनी, मुर्रा मुलहठी, मेथी, रेणुका, लवंग, लाल चन्दन, बंशलोचन, श्वेत जीरा, सुगन्ध कोकिला, सुगंध मंत्री, सोंठ, सौंफ, स्याहजीरा हाऊबेर और हल्दी, एक २ तोला। कपूर कचरी, खस, तालीसपत्र, नागरमोथा, पानड़ी रतनज्योति, श्वेत चन्दन का बूरा और सुगंधवाला, दो२ तोले। कपूर ४ तोले। कमलगट्टा, खस, नागकेशर, पीपल वृक्ष की लाख बरियारा, बेरकी पत्ती मंजीठ, मुलहठी, श्वेतचन्दन और हल्दी आध आध सेर। गाय का दूध और तिल का तैल चार २ सेर। कस्तूरी, कपूर और रतनजोत को अलग रखकर पहले अगर से सुगन्धवाला

पर्यन्त एक २ तथा दो दो तोले वज़न की समस्त औषधियां महीन कूट कर सन्ध्या को पानी में भिगो दे। और प्रातःकाल सिल पर पीस कर कल्क तैयार करले। फिर आध आध सेर की दसों औषधियां अधकुट करके २० सेर पानी में पकावे, चौथाई जल रहने पर उतार कर छानले। कल्क, काढ़ा, दूध और तैल साथ ही कढ़ाई में डाल धीमी आंचसेपचावे।जबऔषधियोंमें तरीमात्ररहजाय तबरतनजोतका चूर्ण मिलादे और उतारने के समय कपूर डालकर नीचे उतार छानले। शीतल होजाने पर दो तोले तैल में कस्तूरी घोंट कर मिला देने से महा लाक्षादि तैल तैयार होता है। कुछ दिन निरंतर इस तैल को शरीर पर मर्दन कराने से सब प्रकार का विषमज्वर, जीर्णज्वर, अस्थिगत ज्वर, खांसी क्षय(तपेदिक) अपस्मार, उन्माद, रक्तदोष और योषापस्मार आदि रोग नष्ट होते हैं। प्रेतबाधा दूर होती है। शरीर में बल, कांति, रक्त और ओज की वृद्धि होती है।

केशरादि वटी, मस्तिष्क विनोद तैल और महालाक्षादि तैल इन्हीं तीनों औषधियों के यथोचित् प्रयोग से हिस्टीरिया ग्रस्त फूलपुर के नवयुवक को हमने आरोग्य कियाथा।

अन्यपरीक्षित प्रयोग।

काशी निवासी। रसायनसार के प्रणेता स्वर्गीय श्यामसुन्दराचार्य रसायन शास्त्री ने योषापस्मार के सम्बन्ध में जिस प्रकार अपना अनुभव प्रकाशित किया है उसका सारांश प्रयोग के सहित नीचे दिया जाता है।

शास्त्रीजी एक बार गुजरात प्रांत के पेथापुर महीकांटा

नामक ग्राम में गये थे। वहां के नगर सेठ फतेचन्द रविचन्द की भतीजी मणीबाई और उनके भतीजे को बहू फूलीबाई को दो वर्ष से हिस्टीरिया रोग था। दोनों रोगियों के विषय में शास्त्री जी लिखते हैं कि प्रातः काल ६ बजे से १० बजे तक और सायंकाल ४ से ८ बजे रात्रि पर्यन्त हिस्टीरिया का वेग जोरों पर रहता था। रोगियों को चार २ आदमी पकड़ कर दबाते थे, फिर भी दो तीन मिनट के लिये उनका शरीर धनुष के समान वक्र होजाता था बीच २ में दो चार मिनट के लिए जब वेग शांत होजाता था तब रोगी मूर्छित अवस्था में पड़ा रहता था, किंतु पुनः आक्रमण होता था और रोगी की चिल्लाहट तथा आर्त्तनाद से गृह एवम् अड़ोस पड़ोस के लोगों में बड़ा आतङ्क उत्पन्न होता था। यदि वेग उठने के समय उपचारक गण रोगी के समीप उपस्थित न रहें और उनके शरीर को न संभाल रक्खें तो टेढ़े हुये अवयव वेगके उतरजाने परभी सहसा सीधे नहीं होतेथे।

उन दोनों रोगियों को प्रथम इच्छाभेदी जुलाब से ५ छः दस्त करा कर फिर प्रातः सायंकाल मधु के साथ दो दो रत्ती मल्ल चन्द्रोदय सेवन कराया गया और दूसरे ही दिन से वेग का आना बन्द होगया। वेग का आरम्भ उन बाइयों के हाथ पांव की उंगलियों को जड़ से होता था इस लिये वहां तीन दिन संखिया का तेल मलवाया। उस तैल की तीव्रता से उंगलियों में घाव होगया जो कपूर मुरदासंग और रस कपूर को घी में घोट कर लगाने से अच्छा हुआ था यह घटना सम्वत् १९७२ की है, दो वर्ष व्यतीत हुये, किंतु रोग का पुनः आक्रमण नहीं हुआ। शास्त्रीजी के बनाये रसा-

यन सार ग्रन्थ से मल्ल चन्द्रोदय और मल्लतैल बनाने की रीति उधृत की जाती है।

मल्लचन्द्रोदय।

श्वेत, लाल, पीली और काली चार प्रकार की संखिया होती है, उनमें एक दूसरी उत्तरोत्तर उग्रवीर्यवाली, बलवान और प्रभावोत्पादक होती है। सङ्खिया और स्वर्ण-ग्रसित बुभुक्षित पारद दस दस तोले। शुद्ध आंवलासार गन्धित २० तोले। प्रथम सङ्खिया को नीबू के रस में तीन दिन घोट कर छाया में सुखा ले और पारा - गन्धक की कज्जली करके उसमें सङ्खिया मिला खूब अच्छी तरह खरल करके कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरकर बालु का यंत्र में रख सर्वार्थकरी भट्टी पर चढ़ा पत्थर के कोयले की तीन पहर आँच दे और स्वयम् शीतल होजाने पर शीशी के गले में लगा हुआ मल्ल चन्द्रोदय निकाललें। श्वेत संखिया द्वारा बना चांद्रोदय अत्यन्त बल-वर्द्धक होता है, उसी प्रकार लाल पीली काली सङ्खिया से बने हुए क्रमशः अधिक वीर्यवान होते हैं। इसकी मात्रा चावल भर से दो रत्ती पर्यन्त है। सन्निपात हैजा आदि तत्काल प्राण नाशक व्याधियों को दमनकर प्राणियों को प्राण बचानेके लिये वैद्य के पास इससे बढ़कर दूसरा कोई शस्त्र नहीं है।

संखिया का तैल।

सोड़ा ४ तोले सङ्खिया का चूर्ण ८ तोले दोनों को लोहे की छोटी कड़ाही में रख कर उसमें २४ तोले पानी डाल चूल्हे पर चढ़ा मन्द आंच से पकावे। जब दो तोले पानी रहजाय तब कड़ाही नीचे उतार ले और पानी सूख

जाने पर तेल निकाल कर शीशी में रक्खे। पांच तोले कड़ुए तैल में एक तोला यही सङ्खिया का तैल मिलाकर जिस अंग में वात व्याधि की पीड़ा होती हो मर्दन कराकर ऊपर से अन्ड के पत्ते गरम कर बाँध देने से पीड़ा मिट-जाती है। अथवा तैल मर्दन कराने के अनन्तर खाट पर अंड के पत्ते बिछाकर उस पर लेट जाय और नीचे निर्धूम मंद अग्नि द्वारा गरमी पहुचावे तो बात जनित पीड़ा दूर होती है। दमा का रोगी जिसके कंठ में कफ भरा हो और श्वास खाँसी के कष्ट से रात भर बैठ कर सवेरा करता हो उसको थोड़ा सङ्खिया का तैल पान के ऊपर लगाकर खिला देने से सैकड़ों वमन आती है और जमा हुआ कफ बाहर निकल जाता है। जब रोगी छर्दि करते करते घबरा उठे तब मिश्री डाल कर दूध पिला देने से तुरन्त वमन बन्द होजाती है और कफ का सारा उपद्रव मिट जाता है। इस तैलकोसांप के काटे हुगे स्थान पर लगाने से विषका प्रभाव नष्ट होता है।

हिस्टीरिया रोग में निम्न लिखित ब्राह्मी घृत और सञ्जीवनी वटी का सेवन लाभकारी होता है।

ब्राह्मीघृत।

कूट, वाल बच और शङ्खपुष्पी (कौड़ेनी) सात सात तोले। ब्राह्मी का रस और गाय काघृत एक २ सेर। तीनों औषधियों को ब्राह्मी के रस से सिल पर महीन पीस कल्क बनाले फिर घृत, कल्क और स्वरस कड़ाहीमें डाल मन्द आंच से पचावे सिद्धि होने पर उतारकर छानले। मात्रा एक से चार तोले पर्यन्त बलाबलके अनुसार दोनों समय सेवनकरने से अपस्मार, उन्माद और हिस्टीरिया रोगका नाश होता है।

संजीवनी वटी ।

आँवला, गुर्च का सत्व, पीपरि, बहेड़ा के फल का छिलका बायविडंग बालवच. शुद्ध भिलावा, शुद्ध सिंगिया, सोंठ और हरड़ एक२ तोला लेकर कपड़ेमेंछान चूर्ण बनाडाले. फिर उसको गौमूत्र के साथ घोट कर सुखाले। पीछे दशमूल के क्वाथ में एक प्रहर खरल करके उड़द बराबर गोली बना धूप में सुखा डाले। एक २ वा दो दो गोली प्रातः सायङ्काल अदरक के रस और मधु के साथ चाट कर ऊपर दशमूल का क्वाथ पान करने से आक्षेप विहीन अवस्था के योषापस्मार का रोग नष्ट होजाता है।

इन गोलियों से मलेरिया प्लेग और सन्निपात आदि संक्रामक रोगों में अच्छा लाभ होता है।

कल्याण चूर्ण ।

अजवाइन. आंवला कञ्जा के फल की गिरी काली मिर्च चाब, चीता, धनियां पीपरामूल पीपरि बहेड़ा वायविडंग, श्वेतजीरा सेंधानोन, सोंचरनोन, सोंठ,और हरड़ दो दो तोले सबका कपड़छन कर चूर्ण बनाले। मात्रा दो मासे से छे मासे पर्यन्त दशमूल क्वाथ अथवा गरम जल के साथ दोनों समय सेवन करने से अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया, अर्श, मन्दाग्नि और वात कफ जनित सम्पूर्ण रोगों का शमन होता है। इसके सिवाय अपस्मार,उन्माद प्रकरण की औषधियोंका प्रयोग और नारायण तैल, शतावरी तैल आदि का शरीर पर मर्दन करने तथा वातनाशक योगों के सेवन से योषापस्मार रोग में लाभ होने की आशा की जा सकती है।

परिशिष्ठ कोश।

अधकुट—आधा कूटा वा पीसा हुआ। अधकचरा अधकुटा। जवकुट।

अन्न—अनाज। नाज। धान्य। गल्ला। दाना खाद्यपदार्थ।

अफीम शोधन—अदरक के रस में एक घड़ी घोट कर सुखा लेने से अफीम शुद्ध होती है।

अभ्रकभस्म—वज्राभ्रक को कोयले की आग में तपा, २ कर सातवार गोदुग्ध में बुझावे, फिर नीबू और चौराई के रस में आठ पहर भिगो रक्खे। पीछे सुखाकर महीन चूर्ण कर डाले और चतुर्थांश चावल के साथ कम्बल में पोटली बांध चार घड़ी पानी में भिगोकर हाथ से खूब मर्दन करे जिसमें अभ्रक छन कर पानी में निकल जाय। थिराने पर पानी बहा कर अभ्रक सुखाले। यह भस्म करने योग्य धान्याभ्रक कह-लाता है। शुद्ध किये हुये अभ्रक को मदार के दूध में एक दिन घोट कर छोटी २ टिकिया बना कर सुखाडाले और मदार के पत्ते में लपेट कपड़ौटी करके अच्छी तरह सूखने पर गजपुट की आँच में जलावे। इसी प्रकार सात

आँच मदार के दूध की और तीन आँच वरौर के काढ़े की देने से अभ्रकभस्म तैयार होजाती है । यदि १०० देना हो तो घीकुआर के रस की ६० आँच देने से सौआँच की भस्म तैयार होगी ।

अरिष्ट—औषधियों का क्वाथ बनाकर उसमें गुड़ चूर्णादि मिला मिट्टी के पात्र में भर कर मुखबन्द कर के एक मास सिरका के समान रखकर छानले, उसको अरिष्ट कहते हैं ।

अर्क—कुटी हुई द्रव्यों को चौगुने पानी में बारह घड़ी भिगोकर भभके द्वारा जल टपकाले, उसको अर्क कहते हैं ।

अवरोध—अटकाव । रुकावट । छेंक ।

अवलेह—चीनी, मिश्री, शक्कर वा गुड़ को पानी के साथ अथवा काढ़ा आदि में पकाकर मधु के समान होजाने पर उसमें चूर्ण घृत आदि मिला चाटने योग्य बनता है उसको अवलेह कहते हैं।

अष्टावशेष—जिस क्वाथ में अष्टमांश जल शेष रहता है उसको अष्टावशेष क्वाथ कहते हैं।

आरनालकांजी—हींग २तोले । श्वेत ज़ीरा और सोंठ चार २ तोले । हल्दी ८ तोले । राई १६ तोले सेंधानोन आध सेर। दोसेर गेहूं का चोकर १६ सेर पानी में एक प्रहर भिगो मलकर छानले । कडुवे तेल से पुता हुआ मिट्टी का

कद्दूरा उसी में पानी भर और सब चीज़ों का चूर्ण मिला मुख बन्द कर पांच छः दिन रक्खे, फिर छानले उसको आर-नाल कांजी कहते हैं। खींचा हुआ गेंहू का अर्क आरनाल कहाजाता है।

आंवल—एक झिल्ली जिससे गर्भ में बच्चे लिपटे रहते हैं और जो बालक उत्पन्न होने के पीछे स्वयम् गिर-जाती है। खेढ़ो, खेड़ी, जेरी, साम, अंवर।

आसव—इसका विधान भी अरिष्ट के समान है। अन्तर केवल यह है कि अरिष्ट क्वाथ में और आसव कच्चे पानी में तैयार कियाजाता है।

उबकाई—उबान्त, ओकाई, मतली, कै, वमन।

कज्जली—पारा और गन्धक को खरल में धीरे धीरे एक घड़ी तक घोटने से वह काले रङ्ग का चूर्ण बन जाता है, उसको कज्जली कहते हैं। कालिख,काजल।

कपड़मिट्टी—पोतनी मिट्टी एक पाव। सेलखड़ी और पुरानी रूई दो दो तोले। तीनों को पानी के साथ काठ की मुगरी से चिकने पत्थर पर दो पहर कूटे जिस प्रकार सोनार चांदी सोना गलाने के लिये घरिया बनाते हैं इस मिट्टी से आंधा अंगुल या एक अँगुल सम्पुट पर लेप करके सुखावे। इससे बढ़कर दूसरी कपरौटी नहीं होती।

कपूर उड़ाना—कांसे की थाली में कपूर के चूर्णपर कटोरा औंधा रखकर गेंहू के सने आटे से सन्धि बन्द कर थाली चूल्हे पर रक्खे। उसके नीचे चार घड़ी दीपक की

लौके समान आंच देता रहे और कटोरे के पृष्ठ भाग पर गीला वस्त्र रक्खे। उसको वार२ तर करता रहे। पीछे आंच बन्द कर शीतल होजाने पर खोलकर कटोरे के पेट में उड़ा हुआ कपूर खुरच कर निकाल लेवे।

कल्क—गीली औषधि सिल पर महीन पीसले और सूखी को पानी से उवटन के समान पीस लेने को कल्क कहते हैं।

कषाय—कुटी हुई औषधि को सोलहगुने पानी में पकाकर चतुर्थांश रहजाने पर उतार कर छान लें; इसको कषाय, क्वाथ काढ़ा और जोशांदा कहते हैं। यही अष्टमांश जल रहजाने पर अष्टावशेष कहाजाता है।

कांजी—एक प्रकार का खट्टा पानी जो इस प्रकार बनता है। हींग ५ तोले। श्वेतजीरा और सोंठ दस दस तोले बांस का पत्ता, हल्दी और कडूतैल में पकाया हुआ उड़द का वरा एक२ पाव। राई आध सेर। भात से निकाला हुआ मांड़, सेंधा नोंन और कुरथी एक २ सेर। माठा ५ सेर। पानी १२ सेर। पहले कूटने योग्य औषधियों को महीन कूट डाले फिर कुरथी को ८सेर पानी में पकावे जब दो सेर जल रहजाय नीचे उतार छान ले। एक मिट्टी के पात्र में उसके भीतर कडूतैल पोतकर पानी, काढ़ा, माठा मांड़ और पिसी चीजें सब मिला पात्र का मुख बन्द करके जाड़े में सात दिन और गरमी में चारदिन सड़ाकर फिर वस्त्र से छानले। इसी खट्टे पानी को कांजी कहते हैं।

धातुओं के शोधन और पारा के स्वेदन में यही कांजी काम आती है।

कोढ़ा—'कषाय' देखो।

कुचला शोधन—भैंस का गोबर पानी में घालकर दोलायन्त्र द्वारा दो पहर कुचले को पकावे, फिर उसको स्वच्छ जल से धोकर छिलका और पेट की पत्ती अलग करके सरौते से चावल बराबर टुकड़ा बना तवे पर गोघृ त के साथ तलले। सुरखी आने पर उतार कर रख लेवे बस इस प्रकार कुचला शुद्ध होजाता है।

कौड़ी शोधन—सेंधानोंन आधपाव। कागजी नीबू का रस एक पाव और पानी दोसेर हाँड़ी में भर, दोलायंत्र द्वारा एक पहर पकाने से कौड़ी शुद्ध होजाती है।

क्वाथ—'कषाय' देखो।

खपरिया शोधन—गोमूत्र में, दोलायंत्र द्वारा सात दिन निरन्तर पकाने से खपरिया शुद्ध होती है।

खरळ—खरल औषधियों को कूटने पीसने का पत्थर अथवा धातुओं का यंत्र।

(२) औषधियों के चूर्ण को स्वरसादि के साथ घोटना खरल कहलाता है। खरल करना। महीन पीसना।

खांड—शक्कर, मगरा खांड।

खिचड़ी—दाल और चावल एक में मिलाकर पकाया हुआ पक्वान्न।

गजपुट—एक हाथ की गोलाई में दो हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें उपले आधे गड्ढे तक भर बीच में सम्पुट रख ऊपर से शेष भाग उपलों से भर अग्नि लगादे और स्वयम् शीतल होने पर निकाल ले यह गजपुट कहाजाता है।

गन्धक आंवलासार शोधन—आधपाव घी में एक पाव गन्धक का चूर्ण डाल आंच से पिघलावे और उसको एक सेर गोदुग्ध में डाल कर बुझावे। इसी प्रकार तीन बार बुझाने से गन्धक शुद्ध होती है।

गर्भ—पेट के भीतर का बच्चा। हमल।

गर्भवती—गुर्विणी, गर्भिणी, जिसके पेट में बच्चा हो

गर्भाशय—स्त्रियों के पेट में वह स्थान जहां बच्चा रहता है। पुरुषों का अण्डकोष और स्त्रियों का गर्भकोष एक ही अवयव है। अन्तर केवल इतना है कि पुरुषों का यह अवयव बाहर और स्त्रियों का योनि से मिला हुआ भीतर होता है। स्त्री का गर्भाशय डेढ़ इञ्च लम्बा, पौन इञ्च चौड़ा और आधा इञ्च मोटा होता है। उसमें एक गर्भनाड़ी रहती है जिससे बच्चा निकलता है।

गुड़—ऊख के रस को कड़ाह में पकाकर गाढ़ा करके कतरा, बट्टी भेली या पिंडा के रूप में बनता है उसको गुड़ कहते हैं। औषधि कर्म में तीन साल का पुराना गुड़ ग्रहण करना चाहिये।

गिरी—वहगूदा जो बीजा के तोड़ने वा फोड़ने पर निकलता है। बीजो। गूदो।

गेरूशोधन—गेरूका शोधन कौड़ीके समानहीहोताहै।

गोली—'वटी' देखो।

घृत—दूध को पका जांवन डाल कर जमाते और दूसरे दिन मथानी से मथकर उसका सार नवनीत निकाल चुरा लेते हैं उसको घी कहते हैं। औषधियों के योग से पकाया हुआ घृत जैसे फलघृत, कल्याण घृत इत्यादि।

चांदीभस्म—श्वेतरङ्ग कोमल चाँदी का पतला पत्र पिटवाकर अथवा गला २ कर काले तिल के तेल माठा, गोमूत्र कांजी और कुल्थी के काढ़े में तीन २ बार बुझाने से सामान्य शुद्धि होती है। मुनक्का का क्वाथ इमली पत्र वा छाल का क्वाथ अगस्तिया के पञ्चांग के काढ़े में सात सात बार बुझाने से विशेष शुद्धि होती है। इस प्रकार शुद्ध की हुई चांदी ५ तोले का पत्र बनाकर शुद्ध सोना-मक्खी एक पाव। दोनों को अपामार्ग के रस से एक प्रहर खरल करके तीन २ मासे की टिकरी बनाकर सुखा डावे। उसको सम्पुट में कपड़माटी करके पांच घड़ी तक उपलों की तीव्र आंचदे पांच आंच इसी प्रकार देने से चांदी भस्म होती है।

चावल का धोवन—ढाई तोले चावल को पाव भर पानी में एक घड़ी भिगोकर मल से छान दे, इसको चावल का धोवन कहते हैं।

चासनी—गुड़, शक्कर चीनी वा मिश्री को पानी में पकाकर मधु के समान लसीला बनाना चाशनी कही जाती है यह शब्द फारसी भाषा का है।

चीनी—शक्कर को सेंवार में रखकर श्वेत बना लात से मसल कर भुरभुरा चूर्ण सा तैयार करके उसको चीनी कहते हैं। यह यन्त्र से भी श्वेत की जाती है। विदेशों से चुकन्दर आदि की चीनी बन कर भारत में आती है।

चूर्ण—औषधियों को कूट कर वस्त्र से छान लेते हैं उसको चूर्ण, चूरन, बुकनी और सफूफ कहते हैं।

छत—छाजन, छप्पर जो मकान के ऊपर छाया जाता है। (२) छत, घाव, जख्म। (३) पाटन।

छाल—वृक्षों की त्वचा जो धड़, शाखा, टहनी और जड़ के ऊपर आवरण सा रहता है। वल्कल वक्कल।

छिलका—फल और कन्द आदि के ऊपर का आवरण जो छीलने, काटने वा फोड़ने से अलग होता है। छोकला।

डमरूयन्त्र—दो हांडी समान मुखवाली कपड़मिट्टी करके सुखा डाले फिर दोनों का मुंह जोड़ संधि बन्द करदे उसको डमरूयन्त्र कहतेहैं। यह पारा उड़ानेकेकाममेंआती है।

तेल, तैल—वह चिकना तरल पदार्थ जो बीजों, वनस्पतियों आदि से यंत्र द्वारा निकाला जाता है वा स्वयम् निकलता है। चिकना। रोगन। (२) औषधियों के योग से बना हुआ तैल, जैसे—चन्दनादि तैल नारायण तैल आदि।

दाई } वह स्त्री जो स्त्रियों के बच्चा जनने में सहायता
दाया } देती हो। प्रसूता के उपचारार्थ नियुक्त कीहुई
स्त्री (२) दूसरे के बच्चे को अपना दूध
पिलाने वाली स्त्री। धाय (३) वह स्त्री जो बच्चों को खिलाने और देख भाल के लिये रक्खी जाय।

दाळ—अरहर, उड़द, मूंग, मोठ, मसूर, चना और मटर आदि दले हुए छिलका रहित अन्न जिसको पानी में उबाल कर नोंन हल्दी धनियां गोलमिर्च आदि डाल सालन के समान रोटी भात के साथ खाई जाती है।

दोला यंत्र—घड़े अथवा हांडी में तैल, काथ, मूत्र, दूध स्वरसादि भर कर उसके मुख पर लकड़ी रख औषधि को पोटली बांध धागा से लकड़ी द्वारा इस तरह लटका दी जाय कि पेंदे में नछूजावे। चूल्हे पर चढ़ा आंच आवश्यकता नुसार देना दोलायंत्र कहाजाता है।

धतूरबीजशोधन—धतूरे के बीज को बारह घंटे पानी में भिगोकर सुखा लेने से वह शुद्ध होजाता है।

धान्य—अन्न, अनाज गल्ला।

धाय—दाई, दाया।

धारोष्ण—तुरन्त का दुहा दूध जिसके धार की उष्णता दूर न हुई हो।

धूनी—गंधयुक्त द्रव्यों का धुवां जो किसी अङ्ग विशेष में दिया जाता है।

धूप—गंध द्रव्य के जलाने से उठा हुआ सुगंधित धुआँ

कई गंधद्रव्यों के योग से बनाई हुई धूप जैसे—अष्टाङ्गधूप और दशाङ्गधूप आदि। (२) कूटी हुई औषधियों को निर्धूम अग्नि पर डाल उससे किसी अङ्ग विशेष को धूपित करना वा धूनी देना, जैसे कमर मेंधूनी देना आदि।

नागभस्म—'शीशाभस्म' देखो।

निथार—पानी मेंघोली हुई चीज़ के बैठजाने परथिराया हुआ स्वच्छ जल पसाकर निकालने की क्रिया। थिरायाहुआ पानी निकालना।

निर्धूम—जिसमें धुंआ नहो। बिनाधुएँ का धूम रहित अग्नि।

निस्तुष—जिसमें भूसीन हो। बिना भूसी का। भूसी अन्न रहित।

पंजीरी—एक प्रकार चूर्ण के समान मिठाई जो अन्न के चूर्ण को घी में भूनकर चीनी मेवा आदि डालकर बनाई जाती है। सत्यनारायण की कथा, जन्माष्टमी और राम नवमी आदि उत्सवों में इसका प्रसाद बटता है।

पाक—मिश्री, चीनी और शक्कर आदि की चाशनी में औषधियों का चूर्ण मेवादि मिला मोदक के रूप में बनाना पाक कहलाता है।

पातालयंत्र—शीशी वा मिट्टी का पात्र कपड़ौटी करके एक के ऊपर दूसरा रख ऊपर के पात्र में जिस वस्तु का तेल निकालना हो उसे भर मुख बन्द करके नीचे वाला पात्र गड्ढे के भीतर रख गड्ढे को भुरभुरी मिट्टी से भरदे; किंतु

ऊपर की हड़िया ऊपर दीखती रहे और उसे चारों ओर उपजों से ढंक कर अग्नि लगादे। स्मरण रहे कि हाँड़ी के पेंदे मे सूई जाने बराबर पांच सात छिद्र बना देना चाहिये आंच लगने पर नीचे की हाँड़ो में तेल टपकेगा उसको शीतल होने पर निकालले। पातालयंत्र से प्रायःकठिन औषधियों का तेल निकाला जाता है।

पाराशोधन—हल्दी, ऊन की भस्म, लालईंट का चूर्ण गृहधूम का कालिख और बिना बुझा पत्थर का चूर्ण कर आठ २ तोले। पारा एक पाव। सब का महीन चूर्ण कर पारे के साथ कागज़ी नीबू के रस में चार प्रहर खरल करके सुख डाले और डमरूयन्त्र में रखकर एक प्रहर की आंच से पारा उड़ाले। ऊपर की हाँड़ो का पेंदा गीले वस्त्रमें शीतल रक्खेतो पारा हांडीके पेट में ऊपर जालगेगा उसको वस्त्र से पोंछकर निकालले। फिर आध पाव नीबू का रस एक सेर सेंधानोन और चार सेर पानी में दोला यंत्र द्वारा पारे को दो प्रहर स्वेदन करने से वह शुद्ध प्रत्येक काम में वर्त्तने योग्य होजाताहै।

पिचुधारण—औषधियोंका कपड़छानचूर्ण करके उसको रुई में लगाकर योनि में धारण करना पिचु धारण कहा जाता है।

पित्त—की थैली। पित्ताशय। यकृत में पीछे नीचे को ओर नासपाती के आकार का जिसमें पित्त संचित रहता है उसको पित्ता कहते हैं।

पीपरशोधन—चार पहर गोदुग्ध में भिगोकर सुखा लेने से पीपर शुद्ध होजाती है।

पुरानागुड़—औषधिकर्म में तीन वर्ष का पुराना गुड़ ग्रहण करना श्रेष्ठ है। दो वर्ष का पुराना मध्यम और एक वर्ष का साधारण निकृष्ट है।

पुरानीमधु—एक वर्ष की पुरानी मधु मल रहित सब काम के योग्य होती है।

पेय—पीने के योग्य। जिसको पी सके। पीने की वस्तु।

पोटली—कुटी औषधि वा अन्नादि वस्त्रके बीच रख उसको चारों ओर से बटोर कर गोल बांधना पोटली कही जाती है।

प्रयोग—व्यवहार, इस्तेमाल, बरतांजाना।

(२) अनुष्ठान, साधन आयोजन,।

प्रलेप—गीली पीसी हुई औषधि को शरीर पर अंगुल आध अंगुल की मोटाई से लेप करना। लेप पुल्टिस।

प्रसव—जन्म, उत्पत्ति, पैदायश। (२) बच्चा जनने की क्रिया। प्रसूति।

प्रसविनी—बच्चा जननेवाली स्त्री। प्रसूता।

प्रसूत गृह प्रसूत भवन प्रसूतागार—प्रसूता स्त्री के रहने का घर। सौरी सदन। सौरीगृह।

फिटकिरी फुलाना—फिटकिरी का चूर्ण खपड़े या सकोरे में डाल उपलों की निर्धूम अग्नि पर रक्खे। जब वह गल कर गाढ़ी हो जाय तब लकड़ी से चलाता रहे और फूल कर लावा बन जाने पर नीचे उतार काम में लावे।

फुलका—हलकी और पतली रोटियाँ। चपाती।

वफारा—औषधि मिश्रित जल को औटा कर उसकी वाफ से किसी रोगी अंग को सेकने का काम। स्वेद।

बलका—मिट्टी के कसोरे आदि को अग्नि में तपा कर बाहर निकाल उसमें औषधियों का रस डालदे। जब उबल कर शान्त हो जाय तब काम में लावे। इसको बलका कहते हैं।

बाल—बालक, शिशु, लड़का। (२) केश चिकुर, बार। (३) कुछ वृक्षों, पौधों और अन्नों का वह डंठल जिसके भीतर वा ऊपर बीज गुच्छे रहते हैं जैसे—जौ, गेहूँ, ज्वार और बाजरे की बाल। ताड़वृक्ष की बाल। मकई की बाल इत्यादि।

बेनौला—कपास का बीज। बिनौला। बनौर। बेनउर। कुकटी। बेनौरा।

भस्म—लकड़ी आदि के जलने पर उसका बचा हुआ शेष अंश। राख। (२) धातु और उपधातुओं को जला कर उसकी बनाई हुई राख। रस।

भात—एक पाव चावल को चार सेर पानी में पकावे। जब चावल गल जाय तब नीचे उतार मांड़ पसा कर निर्धूम अग्नि पर पात्र का मुख ढाक कर थोड़ी देर रख पानी सुखादे इसको भात कहते हैं।

भावना—औषधियों के चूर्ण को स्वरस, दूध अथवा काढ़ा आदि में भिगो कर थोड़ी देर खरल में घोंट कर सुखा लेना भावना कहलाती है।

भुनाजीरा—जीरा को तवे पर मन्द आंच से भूने और

चलाता रहे। जब सोन्हाहट महकने लगे नीचे उतार ले।

भुनी हींग—छोटा छोटा टुकड़ा करके हींग को घी में डाल फुलाने से भुन जाती है। दूसरी विधि रूई में लपेट कर अंगारों के बीच में रख कर भूनी जाती है किन्तु इससे घी वाली उत्तम भुनती है।

मण्डूरभस्म—लोहा की कीट को मण्डूर कहते हैं। सौ वर्ष की पुरानी लोहकीट को बहेड़े की लकड़ी की आग में तपा २ कर गोमूत्र और त्रिफला के क्वाथ में सात २ बार बुझावे। फिर उसको सुखा कर लोहे के खरल में कूट कर कपड़छान करले और अष्टावशेष त्रिफला का काढ़ा पुनः पकाकर गाढ़ा करके उससे एक पहर मण्डूर को घोंट कर छोटी २ टिकिया बना सुखा डाले। सम्पुट में बन्द कर गज पुट की आंच में मण्डूर भस्म तैयार होती है।

मधु—माक्षीक, क्षौद्र, शहद। मक्खियों द्वारा एकत्रित किया हुआ फूलों का रस।

(२) पानी, जल। (३) मदिरा, शराब (४) दुग्ध, क्षीर (५) अमृत, सुधा। (६) स्वादिष्ठ, मीठा।

माड़—पके हुए चावलों से निथारा हुआ पानी से कुछ गाढ़ा पदार्थ। भात का पसेव।

मात्रा—परिमाण, मिकदार, खोराक।

मासिकधर्म—'ऋतु धर्म' देखो।

मिश्री—बहुत साफ चीनी की चाशनी को कूजे वा थाल में जमाकर कतरे के रूप में अथवा अर्धगोल वस्तु जो

बाजारों में बिकती है।

मोदक—लड्डू, मिठाई (२) चीनी मिश्री में बना हुआ औषधियों का लड्डू पाक।

यूष—अरहर, मूंग मोठ, चना आदि की दाल को १८ गुने पानी में पकावे दाल के गलजाने पर सेंधानोन मिला नीचे उतार ले। इसको यूष कहते हैं।

योग—औषधियों का पर्चा (नुसखा)। (२) संयोग मिलाप (३) सम्बंध, लगाव। (४) समाधि, चित्तवृत्ति का रोकना।

यन्त्र—तांत्रिक यंत्रमंत्र। टोटका आदि। (२) कल औज़ार (३) नलिका यंत्र, अर्क खींचने का पात्र। (४) ताला, कुफुल।

रज—धूलि, धूरि। (२) स्त्रियों के रस से उत्पन्न हुई धातु जो महीने में तीन दिन तक रक्त के रूप में निकला करती है।

रजस्राव } ऋतुधर्म; रजका बहना।
रजोदर्शन } रजका दिखाई देना।

रसवतशोधन—गोदुग्ध में पकालेने से रसवत शुद्ध होता है।

रांगाभस्म—'वङ्गभस्म देखो।

ऋतुदोष—ऋतुधर्म में विकार का उत्पन्न होना।

ऋतुधर्म—वह रज जो स्त्रियों की योनि द्वारा तीन से पांच दिन तक महीने २ निकलता है। ऋतु में उत्पन्न होने वाला आर्त्तव। पुष्प स्राव, रजस्राव, मासिकधर्म हैज।

श्री धन्वन्तरि कार्यालय का उद्देश्य

(१) आयुर्वेदीय शास्त्रीय औषधियों को शास्त्रीय प्रक्रियानुसार बनाकर वैद्य हकीम और धर्मार्थ औषधालय के स्वामियों व सर्वसाधारण को स्वल्प मूल्य में देवने के लिये वृहत् औषधालय स्थापित करना (२) आयुर्वेदीय पत्र निकाल वैद्यों में जागृति उत्पन्न करना (३) आयुर्वेदीय प्राचीन और नवीन शैली से लिखी हुई पुस्तकें प्रकाशित करना (४) रोगियों की चिकित्सा के लिये आरोग्य भवन स्थापित करना (५) धनिकों को उत्साह दिलाकर उनसे आयुर्वेदीय पाठशालायें और दातव्य औषधालय खुलवाना (६ भिन्न २ प्रांतों से वनौषधियाँ मंगाकर संग्रह करना और वैद्यों को स्वल्प मूल्य में भेजना।

उपरोक्त उद्देश्यों की सिद्धि के लिये निम्नलिखित विभाग स्थापित हैं

मासिक पत्र विभाग	का पूरा पता	श्री	धन्वन्तरि	कार्यालय
पुस्तकालय	,,	,,	,,	पुस्तकालय
प्रेसविभाग	,,	,,	,,	प्रेस
औषधि विभाग	,,	,,	,,	औषधालय
चिकित्सालय	,,	,,	,,	चिकित्सालय
वनौषधि विभाग	,,	,,	,,	वनौषधालय

श्री धन्वन्तरि कार्यालय—

इस विभाग से पहले "आरोग्यसिन्धु" नामक एक आयुर्वेदीय मासिकपत्र स्वर्गीय राजवैद्य पं॰ म॰ भों के सम्पादकत्व

में दो वर्ष निरंतर प्रकाशित होता रहा था कई एक कारणों से उसके बाद श्रीधन्वन्तरि नामक मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था। पहला आरोग्यसिंधु कलापत्र था। इसके लिये यह कह सकते हैं कि उसकी फाइल मंगाकर देखिये जिसका मू० २) है पारद व्यय पृथक् है तब आप ही कह देंगे कि पत्र आयुर्वेदीय वैद्यक पत्रों में से एक ही पत्र था उसकी प्रशंसा अनेक विद्वान् वैद्यो और सहयोगियों ने की थी अब श्री धन्वन्तरि सचित्र मासिक पत्र निकल रहा है वह कैसा है? इस प्रश्न के उत्तर में अधिक न लिख सिर्फ यही कहते हैं कि इसके समान आज तक आयुर्वेदीय पत्र निकला ही नहीं यह सरस्वती माधुरी चांद आदि प्रसिद्ध साहित्य पत्रिकाओं के समान आकार प्रकार और उच्च श्रेणी के महत्व पूर्ण लेख यहां अनेक रंगीन तथा सादे चित्रों से युक्त रहता है जिस पर भी उपहार में वार्षिक मू० ४) के चार रुपये मू० की ही उत्तमोत्तम पुस्तकें मुफ्त भेट करता है। नमूना ।) की टिकट भेजियेगा देखिये।

२—श्रीधन्वन्तरि पुस्तकालय

विज्ञ वैद्यों से यह बात छिपी नहीं है कि वर्त्तमान समय में आयुर्वेद साहित्य बड़ी गिरी दशा में है जिस विद्या का साहित्यरूपी कोष पूर्णनहीं होता उसकी कभी उन्नति नहीं हो सकती आयुर्वेदीय चिकित्सा को उच्चशिखर पर बैठाने की कामना करने वाले महानुभावों को पहले इस के साहित्य को पुष्ट करना चाहिये हिंदी भाषा में आयुर्वेद साहित्य के अनेक अनुपम रत्न प्रकाशितनहीं हुये और नहनको वा टिकामें नयेर विषयरूपी पुष्प ही खिलते है इसही विचार को लेकर हमने अपने कार्यालय में साहित्य पुस्तक विभागभी रक्खा था और उसका उद्देश था कि आयुर्वेदीय नवीन शैलीसे लिखी उत्त-

मोत्तम पुस्तकें और अप्रकाशक प्राचीन ग्रंथ जो उपयोगी हों प्रकाशित किये जांय इसी उद्देशानुसार इस विभाग ने अब तक १६निबंध प्रकाशित किये हैं जिन में ६निबंध स्व०वैद्यराज राधावल्लभजी सम्पादक आरोग्यसिंधु द्वारा लिखितहैं निबंध इतने उपयोगी लिखे गये थे कि उनकी प्रशंसा अनेक विद्वान् वैद्यों के अतिरिक्त अनेक पत्र सम्पादकों ने मुक्तकंठ से की है और युक्त प्रांतीय द्वितीय वैद्य सम्मेलन के सभापति श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल संपादक सुधानिधि ने रौप्य पदक प्रदान कियाथा इस विभाग में अपनी प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त औरभी वैद्यक की उत्तमोत्तम पुस्तकें अन्य स्थानों से मंगाकर संग्रह की गई हैं तथा जल चिकित्सा सूर्यरश्मि चिकित्सा अगदतन्त्र (विष चिकित्सा) यह पुस्तक लिखी जा चुकी हैं जो शीघ्र ही छपकर प्रकाशित होंगी। और जो महाशय अपनी लिखी पुस्तकें हमारे द्वारा प्रकाशित करना चाहें वह पुस्तक भी उत्तम होने पर प्रकाशित कीजा सकेगी आशा है कि वैद्य महानुभाव पुस्तकों का सूचीपत्र मुफ्त मंगा हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे।

३–श्री धन्वन्तरि चिकित्सालय विभाग

इस विभाग से स्थानीय और बाहर से आये हुये रोगियों की चिकित्सा की जाती है बाहर के रोगियों के लिये स्थानादि का प्रबंध अभी पूर्ववत् ही है पर आरोग्य भवन आयुर्वेदीय अस्पताल के लिये १० बीघा जमीन लेली गई है जिसकी बिल्डिंग बनजाने पर बाहर के और स्थानीय रोगियोंके लिये डाक्टरी अस्पताल के समान सब प्रकारका प्रबंध होजायगा जो रोगी यहां नहीं आसकते अथवा अपने यहां वैद्य को भी

पद्य सम्म नन ... ... पत्रक भी प्रदान किया गया है हम आशा करते हैं कि आ... ... यदि वनौषधि को आवश्यकता होगी तो इस कार्य्यालय से मंगावेंगे और जो औषधियां आपके यहां पैदा होती हैं, उनका सूचीपत्र और भाव लिख भेजेंगे। [illegible] जानने के लिये वनौषधियों का सूचीपत्र मुफ्त मंगा दे.[illegible]

५—श्री धन्वन्तरि-औषधालय:—

इस विभाग में सर्व प्रकार की आयुर्वेदीय औषधि शास्त्रीय प्रक्रिया नुसार बनती हैं। हमने जब इस विभाग को स्थापित किया था तब ही अपने उद्देश्य शास्त्रीय [illegible]

निवेदक—

[illegible]ङ्कारनाथ गोभिल श्रीधन्वन्तरि कार्य्यालय विज[illegible]

४—श्रीधन्वन्तरि वनौषधालय विभाग —

चिकित्सा के लिये जिस प्रकार सिद्ध औषधियों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार औषधि बनाने के लिये वनस्पतियों की आवश्यकता है। यदि यही वनस्पति नकली सड़ी गली पुरानी वीर्यहीन होंगीतो उनके द्वारा बनाई हुई औषधि भी गुण हीन होंगी यही बात विचार कर हमने उत्तम नई वनस्पतियों का संग्रह किया है जो वन औषधियां संदिग्ध हैं उनका निर्णय भिन्न २ प्रान्तीय वैद्योंकी सहायता करके व्यवहार में लाते हैं इसी प्रकार हमने दशमूल की औषधियों का अन्वेषण किया है, और दशमूल पर एक निबंध भी लिखाया गया है। जिसके लेखक श्रीयुत बाबूरूपलाल जी वै० को युक्तप्रान्तीय

नहीं बुला सकते वह पत्रद्वारा अपने ... ब लक्षण व्यौरे वार हाल लिख भेजें उनके पत्र आते ही प्राचीस विभाग से रोग व्यवस्था और औषधि योजना करदी जाती है इस विभाग के वर्तमान चिकित्सक श्रीमान् वैद्यराज बांकेलालजी गुप्त ने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की है उन्हें उत्तम चिकित्सा के लिये वैद्य भास्कर की उपाधि और स्वर्णपदक हिजहोलीनेश श्री ... गोस्वामी द्वारिकाप्रसाद देव वैष्णवाचार्य जी से प्राप्त हुआ है अनेक सभा समितियों से पदक और प्रशंसा पत्र मिले हैं।

...प अनेक सभासमितियों के पदाधिकारी एवं सभ्य हैं ...लने के लिये श्री धन्वन्तरि चिकित्सालय की नियमा...ला देखिये।

से मगप मूल्य में सर्वसाधारण को दन का ... जा चि... औषधियां बहुत उच्च पद्धति, हाईस्टेन्डर्ड, के और महा चुकी—इसका ध्यान रक्खा था। यह कारण है इस कार्या लय को भारतवर्ष के प्राय, सबही शीघ्र प्रतिष्ठा की दृष्टि देखते हैं और सहयोग रखते हैं इस कार्य्यालय की बनाई औ धियों में निम्न लिखित विशेषतायें हैं।

औषधियां बनाने में सब वस्तु उच्च श्रेणी की ... जाती हैं वनस्पतियां गली, सड़ी, पुरानी गुण हीन नक... और सस्ते भाव की न लेकर उत्तम नवीन औषधियां लीजाती हैं इस हेतु हमने वनौषधि विभाग स्थापित किया है जिसमें अनेक प्रान्तों से वनौषधियां मगा कर संग्रह की जाती हैं कारण बाजार में औषधियां सड़ी गली पुरानी गुण हीन मिलती हैं।

(२) औषधियां बनाते समय परिश्रम और मूल्य का ध्यान न रख गुणशाली बने इसका ध्यान रक्खा जाता है।

अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन, वैद्य सेवासमिति आयुर्वेद छात्र सम्मेलन आदि अनेक सभासमितियों से स्वर्णपदक प्रशंसा पत्र प्राप्त भारतवर्ष के सबही प्रान्तों के वैद्य वैद्युराजों द्वारा प्रशंसित, राजगुरुओं से सन्मान स्वर्ण-पदक प्राप्त तथा स्व० वैद्यराज राधावल्लभ जी द्वारा संस्थापित

श्री धन्वन्तरि औषधालय विजयगढ़ की

बनाई हुई और परीक्षित

अव्यर्थ औषधियां

अशोकारिष्ट

ज्वरञ्च रक्तपित्तार्शो मन्दाग्नित्वमरोकचम् ।
मेह शोथारुचिहर स्त्वशोकारिष्ट संज्ञितः ॥ १॥

—भैषज्य रत्नावली

अशोकारिष्ट—सब प्रकार के प्रदरों के लिये शीघ्र फलदायक है योनिशूल वस्तिशूल रजोदोष दूर करने में अति प्रभाव दिखाता है । इससे दूर हुआ प्रदर फिर सहसा उत्पन्न नहीं होता। इसके साथ प्रदरान्तक रस सेवन करने से विशेष लाभ होता है। सेवनविधि—मात्रा १ तोला से २॥ तोला पर्य्यन्त अनुपान—जल समय—प्रातः और सायंकाल। यदि प्रदरान्तक रस भी सेवन करना हो तब एक वटी सेवन कर ऊपर से अशोकारिष्ट पानी में मिलाकर पीना चाहिये। मू० १ बोतल १॥)

चन्दनादि चूर्ण

अतिसारं तथा छर्दिं स्त्रीणां चापि रजोग्रहे।
अच्युतानां च गर्भाणां स्थापनं परमिष्यते॥ १॥

भैषज्य, गद, रत्न, योग,तरंगिणी, वङ्ग, वृन्दिघन्टु।

चन्दनादि चूर्ण—यह स्त्रियोंके लाल और श्वेतप्रदर की प्रसिद्ध औषधि है। प्रदर के साथ होने वाले रोग दर्द, दाह दस्त, रक्त पित्त, रक्तार्श, आदि रोग इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं पित, प्रकृति वाली स्त्रियों के लिये विशेष उपकारी है गर्भ की अवस्था में होने वाले दस्त और प्रदर इससे नष्ट हो जाता है। और गर्भ को भी कुछ हानि नहीं पहुंचाती। व्यवहार—तीन तीन मारो प्रातः और सायंकाल, साठी चावल के पानी में मधु मिला कर, उसके साथ फांकना चाहिये। मूल्य १० तोला ॥=)

गर्भपालरसः

गर्भपुष्टा भवेदस्य गात्राणां स्फुरणं जयेत्।
पुत्रं प्राप्नोति सा नारी बुद्धिमन्तं शतायुषम्॥१॥

वैद्यकसार संग्रह

गर्भपालरसः—जिन स्त्रियों का गर्भ बार बार श्राव हो जाता है। उन को गर्भहीन रहनेके साथर ही नव (नौ)महीना तक बराबर सेवन कराना चाहिए और जिन स्त्रियोंका बालक थोड़े ही दिन जीता है उन्हें भी गर्भ रहने से लेकर बच्चा पैदा होने तक बराबर सेवन करना चाहिये तथा जिन को गर्भ के समय ज्वर खांसी,वमन शोथ आदि उपद्रव होते हो उनके लिये भी उत्तम औषधि है इसके सेवन से गर्भ में रहने वाला बच्चा पुष्ट और दीर्घजीवी होता है तथा स्त्री का भी शरीर निर्बल नहीं होता यह गर्भकी परीक्षा करनेवाली प्रसिद्ध रसायन

औषधि है **अनुपान**—मुनक्का [द्राक्षामाख] तोले १ छटांक को पानी में पीस कर गर्भपाल रस रत्ती २ को मधु अथव शर्बत अनार में चटा कर ऊपर से पिलाना चाहिये यदि स्त्री अधिक निर्बल हो अथवा गर्भाशय भी अधिक निर्बल ह (गर्भ बार२ स्राव होजाता हो) तब वसंत मालती रत्ती१ गर्भ पाल रस रत्ती१ मुलहठी माशे १ तीनों को मधु में चटा ऊपर से दुग्ध पान कराना चाहिये। यह अनुपान हमारा अनुभूत है इससे स्त्रियों के गर्भस्राव रुककर बच्चा समय पर उत्पन्न होता है और बच्चा पुष्ट एवं दीर्घ जीवी होताहै मू०१तो०१)

प्रदरान्तरसः

मन्दाग्नि मरुचिं पाण्डुं कृच्छश्वासञ्च कासव
असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणा न्नात्र संशयः॥१॥

रसेंद्र, भैषज्य, सुंदर,

प्रदरान्तक रस—यह प्रदर रोग की प्रसिद्ध औषधि है इसकेसेवन से रक्त प्रदर और अत्यधिक आर्तव स्राव नष्ट होता है। प्रदर के साथ होनेवाला मन्दाग्नि' अरुचि, कास श्वास, पांडु कामला शोथ को भी नष्ट करता है **अनुपन**—प्रातः और सायँकाल एक २ अथवा दो दो वटी माठी चावल के पानी (चावल का पानी बनाने की विधि पूर्व लिख चुकेहै) के साथ सेवन करना चाहिये। मूल्य १ तोला १॥)

वैद्य बांकेलाल गुप्त
धन्वन्तरि औषधालय
पो० विजयगढ़ जिला अलीगढ़

अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन से स्वर्णपदक प्राप्त और
भारतीय वैद्य सेवासमिति से सार्टीफिकेट प्राप्त
युक्त प्रांतीय प्रथम वैद्य सम्मेलन द्वारा
निर्धारित प्रस्तावानुकूल अनेक
वैद्य वैद्यराजों द्वारा
प्रशंसित

—*—

श्रीधन्वन्तरि—कार्य्यालय विजयगढ़

के कार्य्य विभाग का

दिग्दर्शन

संस्थापक-

स्वर्गीय लाला नारायणदास राधावल्लभजी वैद्यराज

कार्यसंचालक-

वैद्यभास्कर बांकेलाल गुप्त श्रीधन्वन्तरि औषधालय
पोष्ट विजयगढ़ जि० अलीगढ़ ब्रांच माली वाड़ा देहली
पसरट्टा बाजार हाथरस नदरईदरवाजा कासगंज
स्टेशन का पता-रती का नगला बी०बी०एण्डसी०आई० रेलवे

तार का पता-"धन्वन्तरि" रती का नगला।

मोत्तम पुस्तकें और अप्रकाशक प्राचीन ग्रंथ जो उपयोगी हों प्रकाशित किये जांय इसी उद्देशानुसार इस विभाग ने अब तक १६निबंध प्रकाशित किये हैं जिन में ८निबंध स्व०वैद्यराज राधावल्लभजी सम्पादक आरोग्यसिंधु द्वारा लिखितहैं निबंध इतने उपयोगी लिखे गये थे कि उनकी प्रशंसा अनेक विद्वान् वैद्यों के अतिरिक्त अनेक पत्र सम्पादकों ने मुक्तकंठ से की है और युक्त प्रांतीय द्वितीय वैद्य सम्मेलन के सभापति श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल संपादक सुधानिधि ने रौप्य पदक प्रदान कियाथा इस विभाग में अपनी प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त औरभी वैद्यक की उत्तमोत्तम पुस्तकें अन्य स्थानों से मंगाकर संग्रह की गई हैं तथा जल चिकित्सा सूर्यरश्मि चिकित्सा अगदतन्त्र (विष चिकित्सा) यह पुस्तक लिखी जा चुकी हैं जो शीघ्र ही छपकर प्रकाशित होंगी। और जो महाशय अपनी लिखी पुस्तकें हमारे द्वारा प्रकाशित करना चाहें वह पुस्तक भी उत्तम होने पर प्रकाशित कीजा सकेगी आशा है कि वैद्य महानुभाव पुस्तकों का सूचीपत्र मुफ्त मंगा हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे।

३—श्री धन्वन्तरि चिकित्सालय विभाग

इस विभाग से स्थानीय और बाहर से आये हुये रोगियों की चिकित्सा की जाती है बाहर के रोगियों के लिये स्थानादि का प्रबंध अभी पूर्ववत् ही है पर आरोग्य भवन आयुर्वेदीय अस्पताल के लिये १० बीघा जमीन लेली गई है जिसकी बिलडिंग बनजाने पर बाहर के और स्थानीय रोगियोंके लिये डाक्टरी अस्पताल के समान सब प्रकारका प्रबंध होजायगा जो रोगी यहां नहीं आसकते अथवा अपने यहां वैद्य को भी

वैद्य सम्मेलन ... पदक भी प्रदान किया गया है हम आशा करते हैं कि आ... यदि वनौषधि की आवश्यकता होगी तो इस कार्य्यालय से मंगावेंगे और जो औषधियां आपके यहां पैदा होती हैं, उनका सूचीपत्र और भाव लिख भेजेंगे । ... जानने के लिये वनौषधियों का सूचीपत्र मुफ्त मंगा देखिये

५—श्री धन्वन्तरि–औषधालयः—

इस विभाग में सर्व प्रकार की आयुर्वेदीय औषधि शास्त्रीय प्रक्रिया नुसार बनती हैं । हमने जब इस विभाग को स्थापित किया था तब ही अपने उद्देश्य शास्त्रीय ...

निवेदक—
...रनाथ गोभिल श्रीधन्वन्तरि कार्य्यालय विजय...

४—श्रीधन्वन्तरि वनौषधालय विभाग —

चिकित्सा के लिये जिस प्रकार सिद्ध औषधियों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार औषधि बनाने के लिये वनस्पतियों की आवश्यकता है । यदि यही वनस्पति नकली सड़ी गली पुरानी वीर्यहीन होंगी तो उनके द्वारा बनाई हुई औषधि भी गुण हीन होंगी यही बात विचार कर हमने उत्तम नई वनस्पतियों का संग्रह किया है जो वन औषधियां संदिग्ध हैं उनका निर्णय भिन्न २ प्रान्तीय वैद्यों की सहायता करके व्यवहार में लाते हैं इसी प्रकार हमने दशमूल की औषधियों का अन्वेषण किया है, और दशमूल पर एक निबंध भी लिखाया गया है । जिसके लेखक श्रीयुत बाबूरूपलाल जी वै० जो युक्तप्रान्तीय

मोत्तम पुस्तकें और अप्रकाशक प्राचीन ग्रंथ जो उपयोगी हों प्रकाशित किये जांय इसी उद्देशानुसार इस विभाग ने अब तक १६निबंध प्रकाशित किये हैं जिन में ८निबंध स्व०वैद्यराज राधावल्लभजी सम्पादक आरोग्यसिंधु द्वारा लिखितहैं निबंध इतने उपयोगी लिखे गये थे कि उनकी प्रशंसा अनेक विद्वान् वैद्यों के अतिरिक्त अनेक पत्र सम्पादकों ने मुक्तकंठ से की है और युक्त प्रांतीय द्वितीय वैद्य सम्मेलन के सभापति श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल संपादक सुधानिधि ने रौप्य पदक प्रदान कियाथा इस विभाग में अपनी प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त औरभी वैद्यक की उत्तमोत्तम पुस्तकें अन्य स्थानों से मंगाकर संग्रह की गई हैं तथा जल चिकित्सा सूर्यरश्मि चिकित्सा अगदतन्त्र (विष चिकित्सा) यह पुस्तक लिखी जा चुकी हैं जो शीघ्र ही छपकर प्रकाशित होंगी। और जो महाशय अपनी लिखी पुस्तकें हमारे द्वारा प्रकाशित करना चाहें वह पुस्तक भी उत्तम होने पर प्रकाशित कीजा सकेगी आशा है कि वैद्य महानुभाव पुस्तकों का सूचीपत्र मुफ्त मंगा हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे।

३—श्री धन्वन्तरि चिकित्सालय विभाग

इस विभाग से स्थानीय और बाहर से आये हुये रोगियों की चिकित्सा की जाती है बाहर के रोगियों के लिये स्थानादि का प्रबंध अभी पूर्ववत् ही है पर आरोग्य भवन आयुर्वेदीय अस्पताल के लिये १० बीघा जमीन लेली गई है जिसकी बिलडिंग बनजाने पर बाहर के और स्थानीय रोगियोंके लिये डाक्टरी अस्पताल के समान सब प्रकारका प्रबंध होजायगा जो रोगी यहां नहीं आसकते अथवा अपने यहां वैद्य को भी

वैद्य सम्मेलन ... ... पदक भी प्रदान किया गया है हम आशा करते हैं कि आ... यदि वनौषधि की आवश्यकता होगी तो इस कार्यालय से मंगादेंगे और जो औषधियां आपके यहां पैदा होती हैं, उनका सूचीपत्र और भाव लिख भेजेंगे। ... जानने के लिये वनौषधियों का सूचीपत्र मुफ्त मंगा देखें

५–श्री धन्वन्तरि-औषधालयः—

इस विभाग में सर्व प्रकार की आयुर्वेदीय औषधि... शास्त्रोय प्रक्रिया नुसार बनती हैं। हमने जब इस विभाग ... स्थापित किया था तब ही अपने उद्देश शास्त्रोय ...

निवेदक—

...ओङ्कारनाथ गोभिल श्रीधन्वन्तरि कार्य्यालय विजय...

४–श्रीधन्वन्तरि वनौषधालय विभाग —

चिकित्सा के लिये जिस प्रकार सिद्ध औषधियों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार औषधि बनाने के लिये वनस्पतियों की आवश्यकता है। यदि यही वनस्पति नकली सड़ी गली पुरानी वीर्यहीन होगींतो उनके द्वारा बनाई हुई औषधि भी गुण हीन होंगी यही बात विचार कर हमने उत्तम नई वनस्पतियों का संग्रह किया है जो वन औषधियां संदिग्ध हैं उनका निर्णय भिन्न २ प्रान्तीय वैद्योंकी सहायता करके व्यवहार में लाते हैं इसी प्रकार हमने दशमूल की औषधियों का अन्वेषण किया है, और दशमूल पर एक निबंध भी लिखाया गया है। जिसके लेखक श्रीयुत बाबूरूपलाल जी वै० को युक्तप्रान्तीय